हिन्दी दलित कविता का समाजशास्त्रीय अध्ययन

(१९९० - २०१०)

SOCIOLOGICAL STUDY OF HINDI DALIT POETRY (1990-2010)

शोध प्रबंन्ध

(Thesis)

कालिकट विश्वविद्यालय की डॉक्टर ऑफ़ फिलोसफी उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

This is submitted to the University of Calicut for the Degree of
DOCTOR OF PHILOSOPHY IN HINDI
May 2017

निर्देशकः
डॉ. ए. अच्युतन
आचार्य (से. नि.)
हिन्दी विभाग
कालिकट विश्वविद्यालय

प्रस्तुतकर्ताः
रस्ला एस.
शोध छात्रा
हिन्दी विभाग
कालिकट विश्वविद्यालय

Supervising Teacher
Dr. **A. ACHUTHAN**
Professor (Rtd.)

Submitted by
RASLA. S
Research Scholar

DEPARTMENT OF HINDI
UNIVERSITY OF CALICUT
2017

CERTIFICATE

This is to certify that the Thesis entitled **'SOCIOLOGICAL STUDY OF HINDI DALIT POETRY (1990-2010)'** is a bonafide record of research work carried out by **Smt. Rasla S.,** under my supervision and that no part of this thesis has hitherto been submitted for a Research Degree in any other University.

Cu campus
Date

Dr. A. ACHUTHAN
(Research Guide)
Professor (Rtd.)
Department of Hindi
University of Calicut

DECLARATION

I, RASLA S., do hereby declare that this Thesis entitled **'SOCIOLOGICAL STUDY OF HINDI DALIT POETRY (1990-2010)'** is a record of bonafide research work carried out by me and this has not previously formed the basis the for the award of any Degree, Diploma, Associateship, Fellowship or other similar Title or Recognition.

This research work was supervised by **Dr. A. Achuthan**, Professor (Rtd.) Department of Hindi, University of Calicut.

Cu campus
Date

RASLA S.
Research Scholar
Department of Hindi
University of Calicut

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका

		पृ. सं.
प्राक्कथन		I - IX
अध्याय १	**साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन : नये आयाम**	1 - 52
१.१	**साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन क्यों और कैसे?**	
१.१.१.	समाज और भारतीय समाज	
१.१.२	समाज : अर्थ एवं परिभाषा	
१.१.३	समाजशास्त्र की पृष्ठभूमि	
१.१.३.१	समाजशास्त्र	
१.१.३.२	समाजशास्त्र तथा अन्य शास्त्र : अन्तर सम्बन्ध	
१.१.४	साहित्य : अर्थ एवं परिभाषा	
१.१.५	समाजशास्त्र : अर्थ एवं परिभाषा	
१.१.५.१	सामाजिक मानदण्ड और मूल्य	
१.१.५.२	सामाजिक संरचना	
१.१.५.३	सामाजिक व्यवस्था	
१.१.५.४	सामाजिक संगठन और विघटन	
१.१.५.५.	सामाजिक नियंत्रण	
१.१.५.६	सामाजिक परिवर्तन	
१.१.५.६.०	सामाजिक परिवर्तन के कारण	
१.१.५.६.१.	सांस्कृतिक कारण	
१.१.५.६.२	सामाजिक आन्दोलन के कारण	
१.१.५.६.३	प्रकृति और जनसंख्या में परिवर्तन के कारण	
१.१.५.६.४	प्रौद्योगिक और औद्योगिक के कारण	
१.१.५.६.५	वैश्वीकरण के कारण	
१.१.६	साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन की प्रविधि	
१.१.७	समाजशास्त्र और सामाजिक समस्याओं के अध्ययन की विभिन्न पद्धतियाँ	

१.१.७.१ ऐतिहासिक पद्धति
१.१.७.२ तुलनात्मक पद्धति
१.१.७.३ संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक पद्धति
१.१.८. साहित्य के समाजशास्त्र की धाराएँ
१.१.८.१ मीमांसावादी धारा
१.१.८.२ अनुभववादी धारा
१.१.९ विदेयवाद
१.१.१० आलोचनात्मक समाजशास्त्र
१.१.११ संरचनावाद
१.१.१२ उत्तर आधुनिकता और उत्तर संरचनावाद
१.१.१३ निष्कर्ष
अध्याय २ दलित कविता : भावभूमि और विचारभूमि 53 - 170
२.१ दलित कविता क्या है?
२.१.१ दलित शब्द : अर्थ एवं परिभाषा
२.१.२ दलित साहित्य
२.१.३ दलित साहित्य की परिभाषा
२.१.४ दलित साहित्य और गैर दलित साहित्य में अंतर
२.२. दलित कविता की भावभूमि
२.२.१ लोकगीत और दलित गीत
२.२.१.१ लोक : अर्थ एवं परिभाषा
२.२.१.२ लोकगीत : परिभाषा
२.२.१.३ परंपरागत दलित गीत
२.३ हिन्दी दलित कविता का ऐतिहासिक परिवेश
२.३.१ दलित कविता की परिभाषा
२.३.२ हिन्दी में दलित कविता का आंरभ और विकास
२.३.२.१ संघकालीन कृतियाँ
२.३.३ नाथ, सिद्ध एवं संत साहित्य और दलित कविता का मूल स्वर

२.३.४ दलित कविता और आधुनिक काल
२.३.४.१ हीरा डोम
२.३.४.२ स्वामी अछूतानन्द हरिहर
२.३.४.३ केवलानन्द तथा अन्य कवि
२.३.४.४ बिहारी लाल हरित
२.३.४.५ दलित कविता और गैर दलित
२.३.४.६ बाबा साहब अंबेडकर के विचार तथा दलित कविता
२.३.४.७ दलित पैंथर तथा दलित कविता
२.३.४.८ प्रकाशकों की भूमिका
२.३.४.९ दलित कविता : वैश्विक परिवेश
२.३.४.१० दलित कविता : भारतीय परिवेश
२.४ दलित कविता की विचारभूमि
२.४.१ धर्म और भारतीय समाज
२.४.२ वर्ण व्यवस्था तथा मनुस्मृति
२.४.२.१ वर्ण
२.४.२.२ दलित और जाति
२.४.२.३ अस्पृश्यता
२.४.३ लोकायती दर्शन
२.४.४ समता दर्शन और महात्मा गौतम बुद्ध
२.४.५ महात्मा फुले और सावित्री बाई फुले
२.४.६ डॉ. बाबा साहब भीमराव अंबेडकर
२.४.७. महात्मा गाँधी
२.४.८ कारल मार्क्स
२.४.९ श्री नारायण गुरु तथा अन्य
२.४.१० दलित आंदोलन
२.४.१०.१ दलित आंदोलन तथा डॉ. बाबा साहब भीमराव अंबेडकर
२.४.१०.२ दलित साहित्यिक आंदोलन

२.४.११	दलित चेतना और अस्मिता (नई दृष्टि)	
२.१२	**निष्कर्ष**	
अध्याय ३	**दलित कविता का वस्तुपक्ष : समाजशास्त्रीय अध्ययन**	171 - 274
३.१	दलित कविता का वस्तुपक्ष	
३.१.१	दलित कविता में वर्णव्यवस्था : प्रतिरोधी स्वर	
३.१.१.१	वर्ण	
३.१.१.२	जाति	
३.१.१.३.	अछूत	
३.१.२	दलित कविता का सामाजिक स्वर	
३.१.२.१	शोषण	
३.१.२.२	श्रम	
३.१.३	दलित कविता का आर्थिक स्वर	
३.१.४	दलित कविता का राजनीतिक स्वर	
३.१.५.	दलित कविता का सांस्कृतिक स्वर	
३.१.५.१	उत्तर आधुनिक संदर्भ और संस्कृति	
३.१.४.२	परंपरा और मूल्य तथा इतिहास बोध	
३.१.६.	दलित कविता में नारी	
३.१.७.	दलित कविता का अंबेडकरवादी स्वर	
३.१.८.	दलित कविता का मानवतावादी स्वर और समतावादी स्वर	
३.१.९	निष्कर्ष	
अध्याय ४	**दलित कविता का शिल्पपक्ष : समाजशास्त्रीय अध्ययन**	275 - 353
४.१	दलित कविता का शिल्पपक्ष : परिचय	
४.१.१	सौंदर्य संबंधी अवधारणा	
४.१.२	दलित कविता में भाषा	
४.१.२.१	भाषा में प्रतिरोधी स्वर	
४.१.२.२	भाषा में विद्रोही स्वर	
४.१.२.३	दलित कविता में सवाल - जवाब	

४.१.२.४ दलित कविता में प्रतीक
४.१.२.५ दलित कविता में बिंब
४.१.२.६ दलित कविता की मिथकीय आयाम
४.१.२.७ दलित कविता में व्यंग्य
४.२ निष्कर्ष
उपसंहार 354 - 362
संदर्भ ग्रन्थ सूची i - xxii

प्राक्कथन

प्राक्कथन

समाजशास्त्र समाज के विभिन्न वर्गों तथा उनके सामाजिक जीवन का सुव्यवस्थित अध्ययन है। इसका संबंध मनुष्य के समूचे सामाजिक जीवन और संपूर्ण मानव इतिहास से है। समाज, सामाजिक संबंध, सामाजिक नियंत्रण, सामाजिक समस्याएँ आदि विषयों पर चिन्तन मनन करना समाजशास्त्र का मुख्य लक्ष्य है। साहित्य की विवेचना में समाजशास्त्रीय पहलू का विशेष महत्व है। समाज के परिवर्तन के साथ साहित्य और साहित्य के परिवर्तन के साथ समाजशास्त्रीय दृष्टियों में भी परिवर्तन आ जाते हैं। प्रत्येक साहित्यिक विधा के अनुरूप ही समाजशास्त्रीय अध्ययन किया जाता है। समाजशास्त्रीय अध्ययन ही वह एकमात्र रास्ता है, जिससे साहित्य एवं समाज की वास्तविकता की जानकारी मिल सकती है। समाज पर साहित्य के व्यापक और गंभीर प्रभाव के कारण उसके अध्ययन का समाजशास्त्रीय महत्व है।

प्रस्तुत अध्ययन का शीर्षक है **'हिन्दी दलित कविता का समाजशास्त्रीय अध्ययन १९९० से लेकर २०१० तक'।** हिन्दी दलित कविता का समाजशास्त्रीय अध्ययन पर बहुत कम शोधकार्य हुआ है। डॉ. विमल थोरात का 'मराठी दलित कविता और साठोत्तरी कविता में सामाजिक और राजनीतिक चेतना', डॉ. रजतरानी मीनू का 'हिन्दी दलित कविता' (१९८०-१९९०), रमेशचन्द्र चतुर्वेदी का 'बीसवीं सदी की हिन्दी दलित कविता', जिषा एम. एन. का 'आधुनिक हिन्दी कविता : दलित आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में' आदि अध्ययन में समाजशास्त्र पर कम बल दिया गया है। इसके अलावा डॉ. हरिनारायण ठाकुर का 'दलित साहित्य का समाजशास्त्र', कंवल भारती का 'दलित कविता का संघर्ष' आदि ग्रन्थों का भी प्रकाशन हो चुका है। लेकिन विशद रूप से 'हिन्दी दलित कविता का समाजशास्त्रीय अध्ययन (१९९० -२०१०)' नामक विषय पर शोध कार्य अब तक नहीं हुआ है। अतः यह विषय सर्वथा नया एवं प्रासंगिक है।

अध्ययन की सुविधा के लिए प्रस्तुत शोध प्रबंध को चार अध्यायों में बाँटा गया है।

१. **साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन : नये आयाम**

२. **दलित कविता : भावभूमि और विचारभूमि**

३. **दलित कविता का वस्तुपक्ष : समाजशास्त्रीय अध्ययन**

४. **दलित कविता का शिल्पपक्ष : समाजशास्त्रीय अध्ययन**

अन्त में उपसंहार है।

पहला अध्याय है - **साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन : नये आयाम।** समाज से साहित्य के सम्बन्ध की व्याख्या करना साहित्य के समाजशास्त्र का मुख्य उद्देश्य है। समाजशास्त्रीय विश्लेषण पद्धति एक वैज्ञानिक पद्धति है। इस बात की सर्वसहमति है कि एक ओर समाजशास्त्र समाज के संरचनात्मक और प्रकार्यात्मक स्वरूप पर प्रयुक्त होने वाले व्यापक सामान्यीकरण को प्रस्तुत करता है तो दूसरी ओर साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन मानव के नवीन दृष्टिकोण का परिणाम है। प्रस्तुत अध्याय में साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन के नये आयामों को प्रस्तुत किया है। साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन के अंतर्गत साहित्य, समाज एवं समाजशास्त्र का अर्थ और परिभाषा, सामाजिक संरचना, सामाजिक परिवर्तन, समाजशास्त्र की धाराएँ एवं पद्धतियाँ आदि का अध्ययन प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास किया गया है। समाजशास्त्र सिर्फ साहित्य से ही नहीं अन्य शास्त्रों से भी संबंध रखता है। साहित्य के समाजशास्त्र की धाराओं में अनुभववादी धारा साहित्य के प्रयत्न को आवश्यक मानती है। वे प्रतीति और अनुभव से प्राप्त तथ्यों को महत्व देते हैं। अनुभववादी धारा इंद्रियबोध, प्रतीति और अनुभव पर ज़ोर देते हैं, यह धारा समाज में मौजूद पीड़ा, गुलामी, मूल्यों के परस्पर

विरोध, विचारधाराओं की टकराहट और वर्गों के संघर्ष में तटस्थता की वकालत करती है। अतः इस पर विशेष दृष्टि डालने का प्रयास किया गया है।

हम जानते हैं कि साहित्य का समाजशास्त्र स्वयं अपने आप में एक पद्धति है। एक सार्वभौमिक पद्धति के रूप में यह अनुसंधान को प्रेरित करती है और उन परंपराओं, मूल्यों तथा आदर्शों को खोजने का प्रयास करती है जिसमें किसी कृति का सृजन हुआ है। साहित्य में लेखक, पाठक, आलोचक, उनके परिवेश तथा प्रकाशक एवं उनकी अन्तः क्रियाएँ विशेष महत्व रखते हैं जिनका समाजशास्त्रीय पद्धति द्वारा विवेचन कृति के मूल्यांकन में सहायक होता है। उत्तर आधुनिक संदर्भ बहु-संस्कृतियों के निवास केलिए जगह देता है और सभी समूहों को बोलने का अधिकार भी देता है। उसके केंद्र में दलित, महिला, हाशिएकृत तथा अश्वेत लोग रहते हैं। भारतीय समाज और संस्कृति के इतिहास में दलितों और स्त्रियों की स्थिति का विश्लेषण करते हुए भारतीय साहित्य में उनकी उपस्थिति और अनुपस्थिति के कारणों को खोजने-परखने में साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन की आवश्यकता है। अतः प्रथम अध्याय में समाजशास्त्रीय अध्ययन के नये आयामों पर विशेष रूप से अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

दूसरे अध्याय का शीर्षक है- **दलित कविता : भावभूमि और विचारभूमि**। हिन्दी दलित कविता हमेशा गतिशील रही है। इसमें दलित व दमित समाज के जीवन का यथार्थ चित्रण है, अस्मिता का दर्शन है। प्रस्तुत अध्याय में दलित कविता की भावभूमि प्रस्तुत करके उसके उद्‌भव और विकास के ऐतिहासिक परिदृश्य पर बल दिया गया है। दलित कविता की विचारभूमि में ऐसे तथ्यों का अध्ययन प्रस्तुत किया है, जो दलित कविता को पर्याप्त मनोबल प्रदान किया है। दलित कविता की भावभूमि को सही ढंग से विवेचन करने से लोकगीत विशेषकर परंपरागत दलित गीत का महत्व सर्वाधिक है। क्योंकि दलित कविता का मूल प्रतिरोधात्मक सांस्कृतिक स्वर इन्हीं गीतों में मिलता है। अतः ऐसा माना जा सकता है कि इन्हीं दलित गीतों से दलित कविता का आरंभ हुआ

होगा। ये गीत मानव के नैसर्गिक ताल-लय और मौखिक वाणी से संपन्न हैं, जो हमेशा प्रकृति के साथ रहते हैं, खिलाफ नहीं। दलित कविता के ऐतिहासिक परिवेश के क्रमबद्ध विवेचन से यह सिद्ध होता है कि संघकालीन कृतियों, नाथ-सिद्ध, संत साहित्य से लेकर आधुनिक काल में हीरा डोम, स्वामी अछूतानन्द हरिहर, बिहारीलाल हरित आदि कवियों का योगदान दलित कविता की जड़ को मज़बूत बनाया है। इस दृष्टि से आधुनिक काल में ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, जयप्रकाश कर्दम, कंवल भारती, सूरजपाल चौहान, पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, हरिकिशन सन्तोषी, माता प्रसाद, डॉ. एन सिंह, असंगघोष, मुकेश मानस आदि की रचनाएँ महत्वपूर्ण हैं। दलित कविता के क्षेत्र में महिलाओं का योगदान भी महत्वपूर्ण रहा है, जैसे सुशीला टाकभौरे, रजनी तिलक, कुसुम मेघवाल, पूनम तुषामड़, कावेरी, कान्ता भीमराव आदि। उल्लेखनीय है कि इसकी पृष्ठभूमि में गैर दलित कवियों का योगदान भी रहा है। दलित कविता की विचारभूमि में महात्मा गौतम बुद्ध, महात्मा फुले, डॉ. बाबा साहब अंबेडकर, मार्क्स, पेरियार रामस्वामी नायकर, श्री नारायण गुरु आदि महात्माओं की विचारधाराओं का योगदान दलित समाज को नया ज़ोर एवं ताकत देने में सफल निकले हैं। दलित अस्मिता एवं चेतना के प्रचार-प्रसार में विशेष रूप से दलित पैंथर का नाम उल्लेखनीय है। दलित समाज को नया मोड देने में दलित आन्दोलन और साहित्यिक आंदोलन का महत्वपूर्ण स्थान है।

तीसरा अध्याय है - **दलित कविता का वस्तुपक्ष : समाजशास्त्रीय अध्ययन**। मोटे तौर पर दलित कविता में निहित जो विषय है, जो समाज है वही इसकी वस्तु है। जिन सामाजिक व्यवस्था में विश्वास या परंपराओं के नाम पर आदमी से आदमी होने का अधिकार छीन लिया गया है, दलित कविता उसका निषेध करती है। प्रस्तुत अध्याय में भारतीय समाज के वर्ण-जाति व्यवस्था, संस्कृति, परंपरा, राजनीति, नारी, अंबेडकरवादी विचारधारा, मानवतावाद, समतावाद आदि तथ्यों पर विशेष अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। दलित कविता का मुख्य उद्देश्य भारतीय समाज की वर्ण-जाति व्यवस्था के खिलाफ

प्रतिरोध, प्रतिशोध तथा क्रांति उत्पन्न करके उसे समाज से मिटाना है । क्योंकि वर्ण एवं जाति व्यवस्था मानवतावाद तथा समतावाद के खिलाफ है। दलित कविता के सामाजिक स्वर में समाज में दलितों के प्रति हो रहे शोषण, अन्याय, अत्याचार आदि के अध्ययन करते हुए सामाजिक परिवर्तन करने का प्रयास दलित कविता ने किया है। दलित कविता का सांस्कृतिक स्वर अधिक प्रबल है। क्योंकि दलितों का जीवन, संस्कृति एवं परंपरा से जुड़ा हुआ है। वे सदियों से इस धरती के रक्षक रहे हैं, भक्षक नहीं। समाज के वर्चस्ववादी चिंतकों ने संस्कृति को जीवन की समग्र पद्धति के रूप में माना है। इस संदर्भ में ग्राम्शी का मत प्रासंगिक हो जाता है कि साहित्य के इतिहास को संस्कृति के इतिहास के अंग के रूप में अध्ययन करना होगा। तभी हम मानव की आदिम संस्कृति या लोक संस्कृति को समझेंगे; लोक मानस को समझेंगे, क्योंकि संस्कृति जनसमूह की उपज है। इसमें ही उस जनमानस की भाषा मौजूद है। इसी प्रकार इतिहास में परंपरा को खोजते हुए उसकी पुनर्रचना भी करना है; क्योंकि परंपरा का आधार लोक भी है; शास्त्र भी है। परंपरा की खोज इसलिए है कि भारतीय परंपरा वेद-पुराण और शास्त्रों से जुडा हुआ है। भारत में ये वेद पुराण की परंपरा ही नहीं; जन-जाति या क्षेत्रीय परंपराएँ भी हैं। इस तरह की लघु परंपरा को समाज से हटाया या मिटाया गया है। इस तरह की जन-जातियों की अलग पहचान, अलग इतिहास, अलग संस्कृति तथा अलग भाषा भी हैं जो दलित कविता का प्रमुख आधार है। परंपरा, संस्कृति, मूल्य, जातीय भावना आदि एक तरह से मानसिक पुनर्रचनाएँ होती हैं। इस पुनर्रचना की प्रक्रिया ज्ञान, सामाजिक तथ्यों और ऐतिहासिक यथार्थ से कटकर नये मिथक, बिंब तथा प्रतीकों को अपना लेती हैं। विशेषकर आधुनिक संदर्भ में ऐसी एक दृष्टि दलित कविता की विषय वस्तु और शिल्प में देख सकती है। भारतीय समाज व्यवस्था की असमानता पर आधारित जीवन की विसंगतियों एवं विषमताओं के बीज से दलित कविता का जन्म हुआ है जो सामाजिक बदलाव तथा जीवन मूल्यों का पक्षधर हैं। इसलिए दलित कविता की वस्तु स्वानुभूति

पर आधारित है। आज हमें दलित स्मृति के शक्ति-दर्शन को रूपायित करना है। 'अप्प दीपो भव' - दलित अपने दीपक को जलाने लगे हैं। स्वत्व बोध को पहचान लिया है। अतः हिन्दी दलित कविता दलित स्वत्व बोध के निर्माण में अपना सर्जनात्मक योगदान दे रही है। प्रस्तुत अध्याय में उपर्युक्त विचार को ध्यान में रखते हुए दलित कविता का वस्तुपक्ष का समाजशास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया है।

चैथा अध्याय का शीर्षक है - **दलित कविता का शिल्पपक्ष : समाजशास्त्रीय अध्ययन**। दलित कवि समाज के यथार्थ को जिस भाषा में अभिव्यक्त करते हैं वही शिल्प का आधार है। प्रस्तुत अध्याय में दलित कविता की भाषा के प्रतिरोधी एवं विद्रोही स्वर, बिंब, प्रतीक, मिथक आदि का समाजशास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। दलित कविता सीधे-सीधे सामंती-वर्णवादी मानसिकता को झकझोर देने वाली भाषा में बात करती है। मानव समाज के विकास क्रम के संदर्भ में भाषा और संस्कृति के बीच कारण- कार्य का संबंध है। लगता है कि भाषा पहले विकसित हुई और ज्ञान - रूप संस्कृति उसकी अनुगामी रही, वस्तुतः दोनों में साहचर्य है। भाषा विकास के साथ-साथ संस्कृति भी विकासोन्मुख होती रहती है। भाषा किस प्रकार अपने सामाजिक- सांस्कृतिक परिवेश से निर्मित और विकसित होती है, यह प्रत्येक भाषा के शब्द और अर्थ के परस्पर संबंध से समझा जा सकता है। शब्द का अर्थ उसके भाषागत परिवेश में ही समझा जा सकता है। दलित कविता की भाषा में इस परिवेश का विशेष महत्व है।

वर्ण-जाति विहीन समाज की स्थापना ही दलित कविता का उद्देश्य है। उसको प्रेरणा देनेवाले साहित्य में दलित भाषा का सौंदर्य देख सकते हैं। दलित कविता का सौन्दर्य प्रतिरोध, नकार और विद्रोही प्रवृत्ति में है। क्योंकि वह तथाकथित 'सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्' में विश्वास नहीं करते थे। उनके लिए 'मनुष्य सर्वप्रथम मनुष्य है, यही सत्य है, मनुष्य की स्वतंत्रता शिव है, मनुष्य की मनुष्यता ही सौन्दर्य है'। स्पष्ट है कि दलित कविता के सौन्दर्य की अवधारणा के मूल में आदमी और आदमियत है।

दलित कविता की भाषा दलित संस्कृति की उपज है। इसकी भाषा अन्य कविता की भाषा से भिन्न, भाषा का पुनर्पाठ या पुनर्निर्माण ही है। दलित कविता का प्रतिरोधी स्वर समाज में मानवीय मूल्यों को प्रतिष्ठित करना चाहता है। दलित कविता सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ सवाल-जवाब करती है। अतः सवाल-जवाब की प्रक्रिया को दलित कविता के शिल्पपक्ष का एक तत्व के रूप में लिया गया है। इसी तरह भाषा में व्यंग्य के प्रयोग का भी ऐतिहासिक महत्व है। समाज में विदूषकीय प्रक्रिया परंपरानुसार मिलता है। अतः दलित भाषा के अध्ययन में व्यंग्य को एक प्रमुख तत्व के रूप में लिया गया है। दलित कविता का प्रतीक जीवन यथार्थ को व्यक्त करनेवाला है। वह अपनी बात को व्यक्त करने केलिए नये प्रतीकों को अपनाया है। दलित कविता का बिंब अभिजन कविता के बिबं सम्बन्धी विचार से बिलकुल अलग है। बिंब की जो चित्रात्मकता है उसमें मानवीय और अमानवीय के बीच में जो संघर्ष है, उसका बिंबात्मक प्रस्तुतीकरण मिलता है। दलित कविता पुराने मिथकों को नयी परिभाषाएँ दे रही हैं। साथ में नये मिथकों को ढूँढ़ती भी हैं, जो दलित कविता में छिपी हुई सच्चाई को वाणी दे सकें। अंत में अध्ययन के उपसंहार प्रस्तुत किया गया है। जिसमें समाजशास्त्रीय अध्ययन की प्रमुखता को रेखांकित कर दलित कविता के (१९९०-२०१०) विभिन्न पहलुओं का अध्ययन प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध कालिकट- विश्वविद्यालय के आचार्य डॉ. ए अच्युतन जी के निर्देशन में संपन्न हुआ है।

मेरे गुरुवर आचार्य डॉ. ए. अच्युतन जी का आशिर्वाद मुझे हमेशा प्रोत्साहित करता रहा । मेरी हर शंकाओं का समाधान करते हुए समय-समय पर दिशा- निर्देश देने की उनकी दिलचस्पी ने इस शोध प्रबन्ध को पूरा करने की प्रेरणा दी और उनके सामने मैं नतमस्त हूँ और हृदय से आभारी हूँ। मेरे गुरुवर ने लेखक डॉ. नामदेव, डॉ.

चमनलाल लेखिका डॉ. सुशीला टाकभौरे से मिलने और साक्षात्कार करने के लिए भी अवसर प्रदान किया।

हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डॉ. प्रमोद कोव्वप्रत जी अन्य गुरुजन - डॉ. सेतुनाथ जी, डॉ. सुब्रमण्यन जी, डॉ. हेरमन जी, डॉ. फात्तिमा जीम जी, डॉ. मार्ग्रट जी, तथा कर्मचारियों के प्रति मैं अभार प्रकट करती हूँ।

शोध कार्य केलिए सामग्री चयन करने में कालिकट विश्वविद्यालय के केन्द्रीय पुस्तकालय, हिन्दी विभाग, अंग्रेज़ी विभाग, संस्कृत विभाग, मलयालम विभाग आदि पुस्तकालयों के कर्मचारियों के प्रति भी मैं आभारी हूँ।

जब मैं एम. ए कालिकट विश्वविद्यालय में कर रही थी तब दलित साहित्य पढ़ने का अवसर मिला। हमारे कक्षा संचालन में अच्युतन सर का दलित साहित्य के प्रति जो लगाव है, उससे मैं बहुत प्रभावित हो गई थी। मैं ने मन में तय किया कि जब कभी शोध करुँगी तो दलित साहित्य में करूँगी। मुझे वह सुवर्ण अवसर मिला, मेरे निर्देशक के रूप में अच्युतन सर ही मिला, ये मेरे लिए सौभाग्य की बात है।

आभारी हूँ मोहनदास नैमिशराय जी मुकेश मानस जी, रजनी तिलक जी, और डि. के गुप्ता जी जिन्होंने टेलिफोण तथा ई-मेल के माध्यम से मेरी शंकाओं का निवारण तथा सामग्री संकलन में बहुत मदद किया। उन समस्त लेखकों, संपादकों, अध्यापकों, मित्रों, बन्धुजनों, हितैषियों के प्रति मैं शुक्र गुज़ार हूँ, जिन्होंने किसी न किसी प्रकार मेरी मदद की है।

मेरे आदरणीय माता-पिता, बहन से भी मैं आभार व्यक्त करती हूँ। मेरे जीवन साथी श्री रियाकतअली, बच्चें एवं परिवारवालों का पूर्ण सहयोग तथा प्रोत्साहन सदा समय मुझे मिलते रहे। उन सब के प्रति मैं हृदय से आभारी हूँ।

शोध कार्य के लिए सामग्री चयन करते समय मुझे हैदराबाद केंद्रीय विश्विद्यालय जाने का अवसर मिला। वहाँ के अध्यापक डॉ. वी कृष्णा जी ने मेरी बहुत सहायता की, उनके प्रति मैं विशेष रूप से आभारी हूँ। वहाँ से हिन्दी के साहित्यकारों से मिलने का अवसर मिला। उन सब को मैं हृदय से आभार प्रकट करती हूँ। अंत में सभी हितैषियों को और एक बार फिर आभार प्रकट करती हूँ।

रसला एस.
शोध छात्रा
हिन्दी विभाग

पहला अध्याय

साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन : नये आयाम

साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन : नये आयाम

हम जानते हैं कि, समाजशास्त्र वह विज्ञान है जो समाज के संरचनात्मक तथा प्रकार्यात्मक रूप पर विशेष अध्ययन प्रस्तुत करता है। साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन क्यों करना है? कैसे करना है? इन्हीं प्रश्नों के उत्तर ढूँढते-ढूँढते सबसे पहले हम साहित्य और समाज की अवधारणा पर पहुँचते हैं। साहित्य और साहित्यकार समाज का एक अंग होने के कारण अपना संपर्क जनता से रखता है। साहित्य, जगत और जीवन की व्याख्या है। जो वृत्तियाँ जीवन की समस्त क्रियाओं का मूलस्रोत है वे ही साहित्य को जन्म देती हैं। समाज पर साहित्य के व्यापक एवं गंभीर प्रभाव के कारण उसके अध्ययन का समाजशास्त्रीय महत्व है।

१.१ साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन क्यों और कैसे?

साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन नवीन दृष्टिकोण का फल है। अध्ययन की एक सामान्य पद्धति के अनुरूप साहित्य के समाजशास्त्र के अतीत में झाँक लेने की ज़रूरत है। उसका आविर्भाव १७-१८ शती में बताया गया है। पर इस सन्दर्भ में विशेष उल्लेख्य नाम है मैडम दि स्टैले (१७६६-१८१७) । इसके पहले विको अपनी पुस्तक 'नया विज्ञान' में (१७२५) तथा हर्डर (जर्मन दार्शनिक) समाज और साहित्य के संबन्धों की चर्चा कर चुके थे। दूसरा महत्वपूर्ण नाम है फ्रांसीसी इतिहासकार तेन का। तेन के पहले एडम स्मिथ, हीगेल, स्पेंसर भी साहित्य और समाज के सम्बन्धों पर अपना विचार व्यक्त कर चुके थे। इसके अलावा सैद्धान्तिक दृष्टि से कई प्रकार के चिंतन, मनन हुआ है। हबर्ट स्पेंसर का सन् १८७८ में इंग्लैण्ड में 'Principal of Sociology' नामक पुस्तक प्रकाशित हुआ, जिसमें उन्होंने समाजशास्त्र के ऑर्गेनिक विकास की बात कही तथा सामाजिक सिद्धान्त को विकसित किया। अमेरिका में लेस्टर वार्ड का 'गतिशील

समाजशास्त्र' १८८३ में, मोरिस गिनस्बर्ग का 'समाजशास्त्र' १९६३ में, टी.बी. बॉटमोर का समाजशास्त्र (समस्याओं और साहित्य का अध्ययन) १९७२ में, रामकृष्ण मुखर्जी का 'sociology of Indian society' १९७९ में, वि.टी गुप्ता का 'साहित्य का समाजशास्त्र' अवधारणा सिद्धान्त एवं पद्धति' १९८२ में, मैनेजर पाण्डेय का 'साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका' १९८९ में, केन्स बरोन का 'Introducing sociology' १९९५ में, सजेट्रन के शर्मा का 'Fundamental of sociology' १९९६ में, एस.एल दोषी का 'आधुनिकता उत्तर आधुनिकता एवं नव-समाजशास्त्रीय सिद्धान्त २००२ में, आन्द्रे बेतेइ का 'समाजशस्त्र उपागम और विधि' (अनु.डॉ. विप्र कुमार शर्मा) २००५ में, राम अहूजा और मुकेश अहूजा का 'समाजशास्त्र विवेचना एवं परिप्रेक्ष्य' २००८ में, डॉ. हरिनारायण ठाकुर का 'दलित साहित्य का समाजशास्त्र' २००९ आदि किताबें प्रकाशित हो चुकी हैं। इसके अतिरिक्त इस विषय पर डंकन, हैरी, लेनिन, एस्कारपिट, हाको, माल्कम ब्रेडबेरी, जोसेफ रुचेक, डाइना लारेन्सन एवं एलम स्विंगउड आदि की पुस्तकें दृष्टव्य हैं। इन लेखकों की केन्द्रीय विषय-वस्तु साहित्य को संस्था के रूप में प्रस्तुत करना है। जिस प्रकार समाज की अन्य संस्थाओं का निर्माण समाज करता है और समाज का निर्माण ये संस्थाएँ करती हैं, उसी प्रकार साहित्य का निर्माण समाज करता है और समाज का निर्माण साहित्य करता है। साहित्य के समाजशास्त्र का मुख्य संबन्ध साहित्यिक उत्पादन के साधनों, वितरण और एक खास समाज में विनिमय से है। भारतीय विचारकों में राधाकमल मुखर्जी, श्रीराम मनहोत्रा और हिन्दी में मैनेजर पाण्डेय, डॉ. नगेन्द्र, रांगेय राघव बि.टि. गुप्ता, डॉ. निर्मला जैन आदि ने समाजशास्त्र के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्षों पर विचार किया है।

साहित्य के समाजशास्त्र में समाज, सामाजिक स्थिति, जीविका, आश्रय इन सबसे प्रभावित होने वाली मानसिकता का अध्ययन होता है। इमाइन दुर्खीम के अनुसार "The

aim of sociology is to treat social facts as things"[१]। वे सामाजिक तथ्यों को वस्तुनिष्ठ तथ्यों पर केन्द्रित करके देखने के पक्षधर हैं। जिस साहित्यिक कृति में सामाजिक पक्ष की जितनी ही प्रमुखता होती है वही कृति समाज केलिए उतना ही उपयोगी सिद्ध होती है। सामाजिक परिवर्तन बढ़ने के साथ-साथ समाजशास्त्रीय अध्ययन की प्रासंगिकता भी बढ़ती जा रही है। अर्थात समाज का दायरा जितना बढ़ता है उतना ही समाजशास्त्रीय आलोचना का क्षेत्र भी। प्रत्येक युग की अपनी-अपनी विशेषताएँ और समस्याएँ होतीं हैं। समाज की जटिलता के साथ-साथ विभिन्न समस्याएँ भी आ जाती हैं। जैसे राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक...आदि। इन समस्याओं के अध्ययन हेतु अलग अलग शास्त्रों का भी निर्माण किया गया है। परन्तु ये सभी शास्त्र समाज के हर पहलू का समग्र रूप से अध्ययन करने में पर्याप्त नहीं है। इसलिए सबको एकत्रित करके समाजशास्त्र रूपी छत के नीचे ला खडा किया गया है। अध्ययन केलिए क्रमबद्ध समाजशास्त्र की आवश्यकता है इसलिए समाजशास्त्र के स्वरूप पर प्रकाश डालना प्रसंगानुकूल होगा। मनुष्य के सामाजिक व्यवहारों, रीतिरिवाज़ों तथा संस्थाओं पर समाजशास्त्र पूरा प्रभाव डालता है। उपर्युक्त विद्वानों ने साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन को विभिन्न दृष्टिकोण के आधार पर देखने, परखने और अध्ययन करने का कोशिश किया है।

इससे स्पष्ट है कि साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन साहित्य के सभी विधाओं में हो रहा है। आज भी समकालीन साहित्यकारों ने इसका स्वागत किया है। साहित्य के समाजशास्त्र की मुख्य प्रवृत्ति समग्रतावादी है। वह साहित्य के सभी रूपों और पक्षों को समग्रता में समझने पर जोर देता है। इसका लक्ष्य साहित्यिक कृति की सामाजिक अस्मिता की व्याख्या है। अतः संक्षेप में कह सकते हैं कि साहित्यिक कृति की सामाजिक

---

१ Brown Ken, *An Introduction to Sociology*, p.2.

अस्मिता रचना के सामाजिक संदर्भ और सामाजिक अस्तित्व में निहित होती है। इसलिए साहित्य के समाजशास्त्र में उस पूरी प्रक्रिया को समझने की कोशिश होती है जिसमें कोई रचना साहित्यिक कृति बनती है। केवल साहित्य के समाजशास्त्र में ही साहित्यिक-प्रक्रिया के अनुभवों और तथ्यों का व्यावहारिक विवेचन होता है, जिसमें साहित्य के लेखन, प्रकाशन, वितरण और उपभोग की पूरी व्यवस्था की भूमिका स्पष्ट होती है। समाजशास्त्र के अनेक रूप और शाखाएँ हैं। एक ओर ग्रामीण, शहरी और औद्योगिक समाजशास्त्र जैसे पुराने रूप चल रहे हैं। इनके साथ ही धर्म, जाति, परंपरा, राजनीति, अर्थव्यवस्था, सामाजिक संरचना, शिक्षा, विकास और पेशा आदि के समाजशास्त्र का भी विकास हो रहा है। इसके अतिरिक्त नारी और दलित अध्ययन की दिशा में भी समाजशास्त्र की कई परिकल्पनाओं का उदय और विकास भी हो रहा है। आगे हम साहित्य के समाजशास्त्र का नये आयाम पर विस्तार से अध्ययन करेंगे। सब से पहले समाज और भारतीय समाज की विशिष्टताओं पर अध्ययन प्रस्तुत करना ही उचित है।

१.१.१ समाज और भारतीय समाज

व्यक्ति समाज की न्यूनतम परन्तु महत्वपूर्ण इकाई है। व्यक्ति किसी जाति, जनजाति, प्रजाति, लिंग, समुदाय या संप्रदाय का संरचनात्मक और जन्मजात सदस्य होता है। वह अपनी सामाजिक अंतः क्रिया और संबन्धों को सुचारु रूप से चलाने के लिए वर्ग, समूह, संस्थानों, एवं समितियों की रचना स्वयं करता है। जो विशेष प्रकार के रीति रिवाज़ों, मूल्यों तथा नियमों से संचालित होता है। हर एक समुदाय के अपना एक समाज होता है। जो एक दूसरे से भिन्न हैं। व्यक्ति इस तरह के समाज का अभिन्न अंग है। समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है। इसके निर्माण के लिए पारस्परिक जागरूकता और सहयोग की आवश्यकता है।

विविधता भारतीय समाज की प्रमुख विशेषता है। इसमें कई सांस्कृतिक क्षेत्र, भाषाएँ, बोलियाँ, धर्म, परंपराएँ, आचार-विचार, वेश-भूषाएँ, रीति, रहन-सहन, खान-पान आदि विविधताओं में एक एकता के कारण यह समाज सभ्यता का समाज है। भारतीय समाज परंपराओं से भरा हुआ है। परम्परा में निरंतरता होने के कारण ये अतीत को वर्तमान से जोड़ती है। परंपरा में नैतिकता और धर्म विधियाँ होती हैं, समाज के हर एक व्यक्ति की इसका पालन करना पड़ता है। इस धर्म विधि को नकारना बहुत कठिन है। हम जानते हैं कि भारत अनेक धर्मी है। जैसे हिन्दु धर्म, इस्लाम धर्म, ईसाई, बौद्ध, जैन आदि। योगेन्द्र सिंह ने भारतीय समाज के चार बड़े लक्षण बताये हैं- 'सोपानिकता, (Hierarchy) एकीकृतता (Holism), निरन्तरता (Continuity) और अनुभवातीतता'[१] (Transcendence) इससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय समाज श्रेणी बद्ध है, समाज में व्यक्ति की पहचान संघ द्वारा है; यहाँ परंपरा का बहुत बडा स्थान है। ये परंपराएँ मूल्यों पर आधारित हैं। भारतीय समाज में हर एक धर्म, संस्कृति, परंपरा आदि का अपना अपना महत्व और पहचान है। भारतीय समाज में इस्लाम धर्म का बड़ा स्थान है। इस्लाम धर्म के लोगों को 'मुसलमान' कहते हैं। ये एकेश्वर पर विश्वास रखते हैं। इसका एकीकरण मुस्लिम जनता का एकीकरण है। इसका आधार ग्रन्थ कुरान तथा नियम शरीयत है। ये समतावादी, भाईचारे का धर्म है। इहलोक से ज़्यादा परलोक पर विश्वास रखता है। ईसाई धर्म भी मरियम और ईसा पर विश्वास रखते हैं। इसका आधार ग्रन्थ बइबिल है। बौद्ध धर्म महात्मा बौद्ध के दार्शनिक विचारों से प्रभावित धर्म है। ये मानवता, समता, भाईचारे पर विश्वास रखता है। ये परलोक, पुर्नजन्म, आडंभर विश्वास आदि को नहीं मानते। समाज में 'वसुधैव कुडुम्भंकम्' की स्थापना करना इसका लक्ष्य है। भारतीय समाज का हिन्दू धर्म अपनी, विश्वास, परंपरा, संरचना आदि के कारण समाज में एक अलग पहचान रखता है। हिन्दू धर्म अनेकेश्वरवादी है तथा अनेक धार्मिक ग्रन्थों पर

---

१ एस. एल दोषी, *आधुनिकता उत्तर आधुनिकता एवं नव समाजशास्त्रीय सिद्धान्त*, पृ. ७९.

विश्वास रखता है। भारतीय समाज में हिन्दु धर्म ऐसा धर्म है, जिसमें कई जातियाँ और उप-जातियाँ हैं जो एक प्रत्येक सामाजिक संरचना में बाँधा हुआ है। भारतीय समाज का सबसे बड़ा अभिशाप जाति व्यवस्था है। सामाजिक संरचना में बाँधे हुए श्रेणी को वर्णव्यवस्था कहते हैं। इस वर्णव्यवस्था में पहला स्थान ब्राह्मणों का हैं, इनका कार्य है, वेद तथा शास्त्रों का अध्ययन और अध्यापन करना, यज्ञ करना और कराना, दान देना-लेना, ईश्वर में विश्वास रखना, दयावान होना, सत्य वचन कहना आदि। सभ्यता, धैर्य, पवित्रता आदि इनके गुण हैं। दूसरा स्थान क्षत्रियों का हैं, इनका कार्य है, प्रजा की रक्षा करना, शूर-वीर होना, यज्ञ करना, उदारता, प्रभाव, साहस, बल, शासन-शक्ति, आत्म-संयम आदि इनके गुण हैं। तीसरा स्थान वैश्यों का हैं, इनका कार्य है, गाय आदि पशुओं की रक्षा करना, खेती, वाणिज्य-व्यवसाय करना, यज्ञ करना, देश की उन्नति करना, धर्म, अर्थ तथा काम इस त्रिवर्ग का सदुपयोग करना, परिश्रम, सावधानता, दूरदर्शित, विवेक, दान आदि इनके गुण हैं। चौथा स्थान शूद्रों का है, इनका कर्तव्य उक्त तीन वर्णों की सेवा करना है। विनम्र बने रहना, आज्ञा पालन, स्वामीभक्त, आदर, परिश्रम आदि इनके गुण है। इसी दलित शूद्रों को उच्च वर्ग के लोगों ने सदियों से सताकर गुलाम बना दिया। भारतीय समाज व्यवस्था में व्यक्ति की योग्यता तथा श्रेष्ठता जन्म के आधार पर तय हो जाती है। डॉ. बाबा साहब अंबेडकर स्पष्ट रूप में बताते हैं कि "भारतीय समाज का ताना-बाना अभी भी जाति व्यवस्था पर आधारित है और भारतीय समाज के विभिन्न स्तरों में परिवर्तन का निर्धारण भी जाति के आधार पर होता है। प्रत्येक हिन्दु (यहाँ इसका प्रयोग व्यापक अर्थ में किया जा रहा है) जिस जाति में जन्म लेता है, उसकी वह जाति ही उसके धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और पारिवारिक जीवन का निर्धारण करती है। यह स्थिति माँ की गोद से लेकर मृत्यु की गोद तक रहती है"[१]।

---

१ सं. श्याम सिंह शशि, *डॉ. अंबेडकर वाङमय खंड* ९, पृ-२१-२२.

भारतीय समाज का महत्वपूर्ण भाग दलित समाज है, ये समूह जनसंख्या के अस्सी प्रतिशत है। दलित वर्ग के जीवन यापन, संस्कृति, दूसरे समाज से अलग है। सदियों से दलित वर्ग उच्च जातियों द्वारा फेंकी हुई कपड़े, रोटी और अपमान झेलकर जीते थे। अब वे ये अत्याचार सहने के लिए तैयार नहीं हैं। पश्चिमी सभ्यता, और भारत की उत्तर-आधुनिक समाज ने जो संदेश दिया है, उनके अनुरूप दलित वर्ग आज जाग उठे हैं, और समाज की मुख्य धारा बनने की कोशीश में है। इसके अलावा भारतीय समाज में जंगल और पहाड़ों में रहने वालों को आदिवासी कहते हैं। भारत के लोग रिपोर्ट के अनुसार आदिवासी वर्गव्यवस्था में नहीं आते। इनकी परंपरा हिन्दू परंपराओं से जुडा है। इन समूहों की संस्कृति, संस्कार, भाषा, जीवन-यापन, विश्वास आदि अन्य समाजों से अलग है। इस तरह भारतीय समाज विशाल एवं वैविध्य पूर्ण समाज है। इसी विविधता भारत को अन्य देशों से अलग कराते हैं।

१.१.२ समाज : अर्थ एवं परिभाषा

'समाज' शब्द का पर्यायवाची शब्द 'Society' है, यह शब्द 'Socius'[१] लैटिन शब्द से बना है, जिसका अर्थ संगी-साथी, मित्र है। जबकि संस्कृत में 'सम् + अज् + धत्र'[२] से समाज शब्द की व्युत्पत्ति बतायी गयी है। जिसका अर्थ सभा, मिलन, मण्डल, गोष्ठी, समिति, परिषद, संख्या, समुच्चय, संग्रह तथा दल है। 'समाज' के लिए 'Societus' तथा 'socio' शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है।''[३] अनेक विद्वानों ने अपने ढंग से समाज को परिभाषित किया है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री मैकआइवर आर.एम और पेज चार्लस एच. ने अपने ग्रंथ 'सोसाईटीः एक इन्टरॉडयुक्टरी अनालिसिस' में समाज को ''सामाजिक

---

१ सुकुमारन नायर, *हिन्दी- हिन्दी- अंग्रेज़ी- मलयालम शब्दकोश* -पृ. ८२०

२ डॉ. नामेदव उत्कर, *साहित्य शास्त्र*- -पृ. ४८ (से उद्धृत)

३ वहीं

सम्बन्धों का जाल कहा है''।[१] प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तु ने ''मनुष्य सामाजिक प्राणी है''[२]। है''[२]। ऐसा कहकर मनुष्य की एक बहुत महत्वपूर्ण विशेषता की ओर संकेत किया है।

अनेक व्यक्तियों के संबन्ध को समाज कहते हैं। समाज सामाजिक संबन्धों का समूह है चूँकि सामाजिक संबंन्ध अमूर्त है, अदृश्य है, अगोचर है। अतः समाज भी अमूर्त है। यह अनुभव का ही विषय है। ''मनुष्यों के समूह को समाज नहीं कहा जाता अपितु समूह के अन्तर्गत व्यक्तियों के संबंन्धों की व्यवस्था का नाम समाज है''[३]।

स्पेन्सर का मत है - ''समाज कुछ व्यक्तियों का संघटित नाम नहीं है मगर एक विशिष्ट 'सत्ता' है जो उससे संबन्धित व्यक्तियों की व्यवस्था करती है''[४]। अतः समाज स्थिर और जड़ व्यवस्था नहीं अपितु निरन्तर प्रगतिशील और विकासशील प्रक्रिया है। यह मानव की सामूहिक प्रज्ञा का विकसित भौतिक स्वरूप है। गिड़िंग्स का कहना है कि- ''समाज एक संघ है, एक संगठन है, औपचारिक संबन्धों का योग है जिसमें सहयोगी व्यक्ति परस्पर संबद्ध है''[५]।

समाज के प्रत्येक सदस्य के स्वार्थ जहाँ एक होते हैं वहाँ उसकी ऐसी कुछ विशेषताएँ होती हैं जो उसे अन्य समाजों से अलग करती हैं। ये विशेषताएँ उसकी अपनी निजी और व्यक्तिगत न होकर उसकी समाज की देन होती है। इसी तत्व को ध्यान में रखकर पाश्चात्य सामाजशास्त्री जिन्सवर्ग कहते हैं- ''समाज व्यक्तियों का वह समूह है जो

---

१ डॉ. नामदेव उत्कर, *साहित्यशास्त्र-* , पृ. ४८ (से उद्धृत)

२ वहीं

३ Coroll, D.Wright, *Outline of practical sociology*, It is not a group of people, it is the system of the relationship that exist between the individuals of the group. p.5.

४ Spenser, H. *Principles of Society*, The society is not merely a collective name for a number of individual but is a distinctive entity transcending the individuals belongs to. p. 435.

५ Gidding, F.H. *Principles of sociology*, Society is the union itself, the organisation the sum of formal relations in which associating individuals one sound together. p. 3.

किन्ही संबन्धों या तरीकों द्वारा संगठित है और जो उन्हें उन दूसरों से अलग करता है जो इन संबन्धों में शामिल नहीं होते अथवा जो उनसे व्यवहार में भिन्न है''[१]। विख्यात विचारक पारसन्स मानव संबन्धों की जटिलता के रूप में समाज को परिभाषित करते हैं। ''समाज को उन मानव संबन्धों की पूर्ण जटिलता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो क्रियाओं के करने से उत्पन्न हुए हैं और वे कार्य साधन व साध्य के संबन्धों के रूप में किये गये हो चाहे वे यथार्थ हो या चिन्तित''[२]। लिन्टन ने 'समाज' की परिभाषा इस प्रकार दी है - ''एक समाज ऐसे व्यक्तियों का समूह है जो पर्याप्त समय तक साथ-साथ रहकर कार्य कर चुके हैं या स्वयं को सुपरिभाषित सीमाओं में आबद्ध करके एक सामाजिक इकाई के रूप में विचार करते हैं''।[३]

सामुअल कोरनिंग के अनुसार - ''समाज ऐसे मनुष्यों का समूह है जिसमें परस्पर सामाजिक परंपराओं, रीति रिवाज़ों और जीवन यापन के प्रकार या समान संस्कृति तथा उसके सदस्यों के अन्दर समाज से संबन्धित होने की भावना विद्यमान हो।''[४] गिंसबर्ग ने 'समाज' को इस प्रकार प्रस्तुत किया - ''ऐसे व्यक्तियों के समवाय को समाज कहा जाता है जो कि कतिपय संबन्धों या बरताव की विधियों द्वारा परस्पर एकीभूत हुए हैं, जो व्यक्ति

---

१ Morries Ginsberg, *Sociology*, A society is a collection of individuals united by certain relations or modes of behaviour which mark them off from others, who do not enter into these relations or who differ from them in behaviour. p. 4.

२ *Pentagon Press Vol. XIV,* Society may be defined as the total compled of human relationship in so far as they grow out of action in terms of means and relationship intrinsic as system policy. p. 231.

३ Linton, R, *The study of Man*, Any group of people who lived and worked together long enough to get themselves organised or to think of themselves as a social unit them well defined limits p.91.

४ सामुअलल कोरनिंग, *समाजशास्त्र* (अनु.) डॉ. एस. पि. जैन, पृ. १९-२०.

इन संबन्धों द्वारा संबन्ध नहीं होते या जिनके बरताव भिन्न होते हैं वे इस समाज से पृथक होते हैं।''[१]

आर.ई.पार्क एवं इ. डब्ल्यू बर्गस ने समाज को यों परिभाषित किया है - ''समाज मानव के समूहिक व्यवहार के लिए आवश्यक घटनाओं, रूढ़ियों, परंपराओं और मनोभावों, आदतों एवं संस्कृति की सामाजिक विरासत है।''[२]

उपर्युक्त अर्थ एवं परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि व्यक्तियों का समूह ही समाज है इसमें अनौपचारिक संबन्धों का योग रहता है। भिन्न-भिन्न धर्म, भाषा, संस्कार के लोग यहाँ होते हैं। समाज में उपसमूह भी होते हैं। अतः समाज अनेकरूपी है।

१.१.३ समाजशास्त्र की पृष्ठभूमि

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसकी सबसे बड़ी विशेषता मिलनशीलता या सामाजिकता है। मनुष्य में अन्तर्निहित इस मिलनशीलता के कारण वह एक दूसरे के संपर्क में आता है। उसका समाज से कटकर अकेला रहना संभव नहीं। मनुष्य के आपसी संबन्ध, उनकी पारस्परिक प्रतीति, सामाजिक क्रिया प्रतिक्रिया आदि उसमें निहित सामाजिकता के कारण ही संभव होता है। ये सब मनुष्य के समाज में ही रहने की मनोवृत्ति के सबसे महत्वपूर्ण तत्व है। मानव जीवन के विभिन्न सामाजिक पहलुओं का आकलन करनेवाले सामान्य सामाजिक विज्ञान को, पाश्चात्य एवं भारतीय मनीषियों ने

---

१ Ginsberg, *Sociology*, A Society is the collection of individuals united by certain relations of modes of behaviour which mark them from others, who do not enter into those relations or who differ from them in behaviour. p.8.

२ Park, P.E & Burgress, E.W. *Introduction to the Science of Sociology*, The sociology heritage of habit and sentiment folkways and morals which are incident or necessary to collective human behaviour, p. 161.

समाजशास्त्र नाम से अभिहित किया है। समाजशास्त्रीय अध्ययन में मानव चरित्र का सूक्ष्म अध्ययन और विश्लेषण होता है। समाजशास्त्र का काम समाज के सिर्फ एक पहलू पर विचार करना नहीं अपितु समाज की हर समस्या का समुचित अध्ययन करना है।

समाजशास्त्र एक विशिष्ट विषय के रूप में सन् १८३८ में प्रारंभ हुआ। समाजशास्त्र का वर्तमान रूप आधुनिक समाजशास्त्र के पिता फ्रेंच दार्शनिक 'अगस्ट कोंटे' ने मानव समाज के अध्ययन के संदर्भ में किया। अगस्ट कॉटे के अतिरिक्त और भी समाजशास्त्री है जो समाजशास्त्र के प्रवर्तकों की मुख्य धारा में आते हैं वे हैं, फ्रांस के दुर्खिम, रेमंड विलियम्स, इंगलैंड के स्पेन्सर, जर्मन निवासी मेक्स बेवर आदि। अध्ययन के क्षेत्र में १८७९ ईं में अमेरिका में पहली बार समाजशास्त्र को स्थान दिया गया। उसके पश्चात् १८३९ ईं में फ्रांस में, १९०७ ईं में ब्रिटेन में, प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात पोलैण्ड और भारत में १९२५ ईं में ईजिप्त और मैक्सिको में तथा १९७४ ई में स्वीडन में इस शास्त्र का अध्ययन कार्य आंरभ हुआ। इस प्रकार अध्ययन एवं अध्यापन के क्षेत्र में समाजशास्त्र का विकास धीरे-धीरे होने लगा। अतः हम कह सकते हैं कि समाजशास्त्र एक ऐसा सशक्त माध्यम माना जाता है जो समाज का खण्ड-खण्ड परीक्षण करके उसकी प्रवृत्तियों की असली चित्र खींचता है।

१.१.३.१ समाजशास्त्र

समाजशास्त्र समाज के विभिन्न वर्गों तथा उनके सामाजिक जीवन का सुव्यवस्थित अध्ययन है। इसका उद्‌भव ज्ञान के प्रत्यक्ष स्तर-विश्लेषण की भावना से हुआ। समाजशास्त्रीय विश्लेषण पद्धति एक वैज्ञानिक पद्धति है। इसका संबंध मनुष्य के समूचे सामाजिक जीवन और संपूर्ण मानव इतिहास से है। समाज, सामाजिक संबन्ध, सामाजिक नियंत्रण, सामाजिक समस्याओं आदि विषयों पर चिन्तन मनन करना समाजशास्त्र का मुख्य ध्येय है। वह तथ्यों के अवलोकन, परीक्षण एवं विश्लेषण की प्रणाली है जो वस्तुनिष्ठ अध्ययन में आस्था रखती है। वस्तुनिष्ठता व्यक्ति के विश्वासों, आशाओं या

भय से स्वतंत्र रहनेवाली वास्तविकता है। समाज के विभिन्न संप्रदाय मानव चिन्तन के अजस्त्र स्रोतों का दोहन कर व्यक्ति और समाज के संबन्धों के विश्लेषण में प्रयत्नशील रहे हैं। यही कारण है कि समाजशास्त्रीय अध्ययन का स्वागत समकालीन साहित्य प्रेमियों ने भी किया है। इस बात की सर्व सहमति है कि एक ओर समाजशास्त्र समाज के संरचनात्मक और प्रकार्यात्मक स्वरूप पर प्रयुक्त होने वाले व्यापक सामान्यीकरण को प्रस्तुत करता है तो दूसरी ओर साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन मानव के नवीन दृष्टिकोण का परिणाम है। साहित्य विभिन्न वर्गों की इच्छाओं आकांक्षाओं को व्यक्त करते हैं। भारतीय साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन में भारतीय परंपराओं, रूढ़ियों एवं विश्वासों के वैज्ञानिक विश्लेषण की प्रवृत्ति बढ़ी है। साहित्य की विवेचना में समाजशास्त्रीय पहलू का विशेष महत्व होता है। जहाँ समाजशास्त्र मानवीय संबन्धों, उनकी परिस्थितियों और परिणामों का अध्ययन माना जाता है वहाँ साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन समाज के सदस्य के रूप में मनुष्य के क्रिया-कलापों, क्षमताओं और आपदों का साहित्य के आधार पर विश्लेषण है।

मनुष्य के सामाजिक व्यवहारों, रीति-रिवाज़ों तथा संस्थाओं पर समाजशास्त्र पूरा प्रभाव डालता है। अपने तमाम रूप-रस-भाव-सौंदर्य के बावजूद जब तक लेखक समाज के हित में, समाज के विकास में, समाज में वर्तमान स्थितियों के अध्ययन में समाज के समस्याओं से जूझने के काम में नहीं आएगा, तब तक साहित्य नहीं कहला जाएगा। साहित्य के इसी सरोकार का अध्ययन साहित्य का समाजशास्त्र करता है। समाजशास्त्र का उद्देश्य समाज की वास्तविकता को जानना है।

१.१.३.२ समाजशास्त्र तथा अन्य शास्त्र : अन्तर संबन्ध

विज्ञान को समाज और प्रकृति के अध्ययन हेतु मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया गया है एक सामाजिक अथवा मानवीय विज्ञान और दूसरा प्राकृतिक विज्ञान।

भौतिक विज्ञान, रसायन शास्त्र, ज्योतिष शास्त्र, जीवशास्त्र आदि प्रकृति की भौतिक व जैविक शक्तियों या घटनाओं का अध्ययन करता है, इसलिए ये सभी प्राकृतिक विज्ञान के अन्तर्गत आते हैं। व्यक्ति, समाज, सामाजिक संबन्ध और इनके विभिन्न पहलुओं के अध्ययन करनेवाले विज्ञान को सामाजिक विज्ञान या मानव विज्ञान के नाम से अभिहित किया गया है। इसके अर्न्तगत समाजशास्त्र, मानवशास्त्र, मनोविज्ञान, इतिहास, अर्थशास्त्र आदि आते हैं।

सामाजिक आवश्यकताओं को निश्चित करने में अर्थ का विशेष महत्व होता है। अर्थशास्त्र मनुष्य के आर्थिक कार्यों तथा तत्संबन्धी आर्थिक संस्थाओं के संघटनकार्य और परिवर्तन के अध्ययन का विज्ञान है। आर्थिक कार्यों के आधार पर समाज में व्यक्ति तथा संस्थाओं का एक आर्थिक संबन्ध निश्चित हो जाता है। पूँजीवाद, समाजवाद तथा साम्यवाद आदि जितनी ही आर्थिक व्यवस्थाएँ हैं वे सभी मनुष्य के सामाजिक दृष्टिकोण तथा उसकी सामाजिक व्यवहार प्रणाली को प्रभावित करती है। सामाजिक संस्थाओं पर आर्थिक व्यवस्था का प्रभाव पड़ता है। समाजशास्त्र में सामाजिक समस्याओं को आर्थिक दृष्टिकोण से अध्ययन करता है तो अर्थशास्त्र में आर्थिक समस्या के सामाजिक आधार को ढूँढ़ने का प्रयास है। समाजशास्त्र और इतिहास दोनों का मूलभूत उद्देश्य मानव समाज का अध्ययन करना है। इतिहास मानव के सामाजिक जीवन, सामाजिक परिवर्तन, सामाजिक प्रगति के बाधक एवं उत्प्रेरक घटनाओं का अध्ययन करता है। महत्वपूर्ण घटनाओं का अध्ययन इतिहास का कार्य होता है। जबकि समाजशास्त्र का कार्य किन किन सामाजिक कारणों से यह घटनाएँ घटित हुई है इसका अध्ययन करना है । अर्थात् ऐतिहासिक घटनाओं का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से विश्लेषण समाजशास्त्र करता है। अंग्रेज़ी शब्द 'Anthropology' केलिए हिन्दी में नृतत्वशास्त्र शब्द का प्रयोग होता है। 'Anthropology' दो ग्रीक शाब्दिक अर्थ है। 'Anthropo' का अर्थ 'मानव' विषयक तथा 'logy' का अर्थ है 'अध्ययन'। इस प्रकार 'Anthropology' का शाब्दिक अर्थ है

'मानव का विज्ञान'। नृतत्वशास्त्री ऐसे छोटे समाजों का अध्ययन करते हैं जिनका चरित्र उनके अपने समाज से काफी कुछ भिन्न हो। विकसित समाजों में भी नृतत्वशास्त्रीय अध्ययन बढ़ चले हैं; 'लघु समुदाय' नातेदारी समूह इत्यादि का अध्ययन इसके प्रमाण है। नृतत्वशास्त्री आदिवासियों की स्थिति उनकी सभ्यता, संस्कृति आदि का अध्ययन करता है, तो समाजशास्त्री मानव के सामाजिक संबन्धों एवं व्यवहारों जैसे मानव समाज के सभी पहलुओं का विवेचन विश्लेषण करता है और समस्याओं को सुधारने का प्रयास करता है। नृतत्वशास्त्री आदिम समाजों में अपने अध्ययन को सीमित रखता है, वह केवल उनकी समस्याओं का अध्ययन करता है, न कि समस्याओं को सुलझाने का। समाजशास्त्र वर्तमान सामाजिक जीवन (सभ्य समाज) पर प्रकाश डालता है तो नृतत्वशास्त्री भूतकाल (आदिम समाज) की ओर उन्मुख होता है। अर्थात् मानव के उद्‌भव, विकास, संस्कृति आदि ही उनका विषय होता है। कानून कायदे आदि सिद्धान्तों के अध्ययन को न्यायशास्त्र कहते हैं। न्याय व्यवस्था का प्रमुख लक्ष्य समाज में सुशासन स्थापित करना है। न्याय संहिता मुख्य रूप से समाज एवं सामाजिकों से संबन्धित होने के कारण उसका मूलाधार समाज के आदर्श, सामाजिक परंपराएँ आदि पर टिकी रहती है। राजनीति शास्त्र और समाजशास्त्र दोनों का घनिष्ठ संबन्ध है। समाज के बिना राजनीति का कोई अस्तित्व नहीं है। राज्य तथा सरकार के स्वरूप और सिद्धान्त का अध्ययन राजनीतिशास्त्र का विषय है। इसका कार्य सामाजिक जीवन की रक्षा तथा कल्याण है। राजनीति शास्त्र का क्षेत्र संकुचित है, उसमें मनुष्य के राजनैतिक जीवन और उससे संबन्धित समूह तथा संस्थाओं का अध्ययन होता है। समाजशास्त्र और नीतिशास्त्र का आपसी संबन्ध है। नीतिशास्त्र मूल्यों और आदर्शों का अध्ययन करके समाज में उचित-अनुचित एवं नैतिक-अनैतिक व्यवहार का विवेचन करता है। नैतिकता की धारणा या अच्छाई -बुराई की धारणा प्रत्येक देश या काल में सामाजिक संगठन, समाज की प्रकृति आदि पर निर्भर होता है। समाजशास्त्र और मनोविज्ञान दोनों अन्योन्याश्रित है। मनोविज्ञान

मनुष्य की आन्तरिक मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है। इसके दो प्रमुख भाग है- वैयक्तिक मनोविज्ञान और सामाजिक मनोविज्ञान। वैयक्तिक मनोविज्ञान का विषय उन मानसिक क्रियाओं का अध्ययन तथा विवेचन है जिनका उद्‌गम तथा स्रोत मनुष्य के व्यक्तित्व तक ही सीमित रहता है। मनुष्य की व्यक्तिगत, मानसिक प्रक्रियाओं, भावनाओं तथा दृष्टिकोणों का संबन्ध उसके व्यवहार से समझा जाता है। सामाजिक मनोविज्ञान का क्षेत्र अपेक्षाकृत विस्तृत है। इसके अन्तर्गत उन सभी मानवीय समस्याओं का अध्ययन होता है, जो सामाजिक रूप में प्रकट होता है। मनोविज्ञान में व्यक्ति के मन एवं व्यवहारों का सूक्ष्म विश्लेषण किया जाता है। जटिल मानव मन को सरल करके समझाना मनोविज्ञान का कार्य है। मनुष्य के सभी सामाजिक कार्यों के पीछे उसकी व्यक्तिगत भावनाएँ प्रेरणा प्रदान करती है जो मनोविज्ञान का विषय है। इसलिए मनोविज्ञान तथा समाजशास्त्र दोनों का पारस्परिक संबंध अत्यंत महत्वपूर्ण है। समाजशास्त्र मूलतः बहुत हद तक एक दर्शनशास्त्रीय महत्वाकांक्षा के साथ पैदा हुआ था। इसका उद्देश्य मानव इतिहास के क्रम का लेखाजोखा लेना, यूरोपीय उन्नीसवीं सदी के सामाजिक संकट की व्याख्या करना और सामाजिक सिद्धांत प्रस्तुत करना है; जो सामाजिक नीति को निर्देशित करें। समाजशास्त्र और दर्शनशास्त्र कम से कम तीन मामलों में एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। जैसे, विज्ञान के दर्शन की तरह समाजशास्त्र का भी दर्शन हो सकता है। समाजशास्त्र और नैतिक तथा सामाजिक दर्शन में एक घनिष्ठ संबंध है । समाजशास्त्र सीधे दार्शनिक चिंतन की ओर ले जाता है। प्राणी के चारों ओर जो कुछ विद्यमान है वहीं उसका पर्यावरण है। पर्यावरण का संबन्ध मनुष्य के साथ ही नहीं बल्कि जड़-चेतन के साथ भी जुडा हुआ है। समाजशास्त्र पर्यावरण में सामाजिक घटना का अध्ययन करता है। अर्थात् सामाजिक जीवन का अध्ययन भूगोल के सिद्धान्तों पर आधारित है। प्रत्येक व्यक्ति पर प्रकृति तथा भौगोलिक प्रभाव ज़रूर पड़ता है। जनता के निवास, स्थान, सामाजिक संपर्क, रीति रिवाज़, मान्यताएँ, सामाजिक परंपराएँ आदि प्राकृतिक कारणों से प्रभावित

होते हैं। अनुकूल पर्यावरण में मनुष्य का विकास होता है। इससे स्पष्ट होता है कि पर्यावरण में जो अन्तर आता है, उसकी छाप सामाजिक जीवन में भी पड़ती है। ग्रामीण समाजशास्त्र एवं नगरीय समाजशास्त्र दोनों मानव समाज से संबन्धित अध्ययन करता है। अन्तर इतना है कि दोनों का क्षेत्र अलग-अलग है। एक तो ग्रामीण परिवेश में सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करता है तो दूसरा नगरीय परिवेश में। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि इन सब शास्त्रों के साथ समाजशास्त्र का अटूट संबन्ध है ।

१.१.४ साहित्य : अर्थ एवं परिभाषा

साहित्य जीवन की अभिव्यक्ति है। हम जानते हैं कि वह किसी देश के जातीय संस्कारों एवं विचारों का प्रतिबिंब है और मानव जीवन की व्याख्या भी है। ''साहित्य शब्द की व्युत्पत्ति 'साहित्य' + 'यत्' प्रत्यय के संयोग से हुई है। जिसका आशय है - 'सहितस्य भावः साहित्य' अर्थात सहित होने के भाव''[१] सहित शब्द की व्याख्या दो प्रकार से की जाती है - ''सह अर्थात साथ होना। अर्थात् शब्द और अर्थ का यथावत संभाव''[२]। साहित्य का यह अर्थ अत्यधिक व्यापक है जिसके अन्तर्गत मानवीय बोध एवं भाव समाहित हो जाते हैं। ''सहित का दूसरा आर्थ 'हितेन सह सहितं' अर्थात् हित के साथ होना। साहित्य वह है जिससे मानव हित का संपादन हो।''[३] डॉ. रवीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार ''साहित्य का सहित शब्द मिलन भाव का सूचक है। वह (मिलन) भाव और भाव का, भाषा और भाषा का ग्रन्थ और ग्रन्थ का ही मिलन नहीं है अपितु मनुष्य के साथ मनुष्य का, अतीत के साथ वर्तमान का, दूर के साथ निकट का अत्यन्त अंतरंग मिलन भी है जो कि साहित्य के अतिरिक्त किसी अन्य में संभव नहीं है।''[४] आचार्य

---

१ गुलाब राय- *काव्य के रूप*, पृ. ३

२ *हिन्दी के साहित्य कोश*, पृ.९२०

३ गुलाब राय, *काव्य के रूप*, पृ.३.

४ डॉ. विजयपाल सिंह, *भारतीय काव्यशास्त्र*, पृ. १६. (से उद्धृत)

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने ''ज्ञान राशि के संचित कोश को साहित्य बतलाया है''।[१] डॉ. नगेन्द्र का कहना है कि ''साहित्य आत्माभिव्यक्ति है, आत्माभिव्यक्ति ही अनन्द है, रस है और रस जीवन का सबसे बड़ा पोषक है''।[२] साहित्य शब्द की व्याख्या आदिकाल से होती आ रही है। हडसन, साहित्य को भाषा के माध्यम से जीवन की अभिव्यक्ति मानते हैं। उनका कहना है कि - ''साहित्य उन सबका सजीव लेखा है जो कुछ मानव ने जीवन में देखा है जो कुछ उसके बारे में अनुभव किया है और जो कुछ उन पहलुओं के बारे में सोचा है जिसका हम सभी से तात्कालिक व स्थायी संबन्ध है। इस प्रकार वह भाषा के माध्यम से जीवन की अभिव्यक्ति है।''[३] उपन्यास साम्राट मुंशी प्रेमचन्द की दृष्टि में - ''साहित्य जीवन की आलोचना है।''[४] स्पष्ट ही यह उक्ति मैथ्यू अर्नाल्ड की कविता की परिभाषा का पुनः कथन है, जो मूलतः इस प्रकार है- 'Poetry is the criticism of Life.'

अतः साहित्य का संबंध मानव जीवन से है। मुक्तिबोध के अनुसार साहित्य जीवन की पुनर्रचना है। इस प्रकार साहित्य का कथ्य सामाजिक घटना है जो कि स्वयं में बहुत विस्तृत है। जब साहित्य भाषा जैसे सामाजिक माध्यम को अपनाता है और सामाजिक पूर्वानुभव से संबद्ध रहता है तो अवश्य ही सामाजिक वस्तु अथवा घटना उसके विषय का निर्धारण करती है। साहित्य का संपूर्ण कथ्य सामाजिक घटना है, चाहे वह क्रौंच दंपति के अचानक वियोग को आधार बनाकर रचा गया हो या आज के प्रत्यक्ष सामाजिक जीवन पर आधारित किसी घटना का प्रतिफल न हो। सबके पीछे एक सामाजिक पूर्वानुभव या घटना काम करती है जो मनुष्य के स्वयं के जीवन के लिए दूसरों को भी

---

१ डॉ. विजयपाल सिंह, *भारतीय काव्यशास्त्र*,

२ डॉ. रामनिवास गुप्त, *काव्यशास्त्र के मानदण्ड*, पृ. १६.

३ वि.टी. गुप्ता, *साहित्य का समाजशास्त्र अवधारण सिद्धान्त एवं पद्धति*, पृ.४९.

४ प्रेमचन्द, *कुछ विचार*, पृ. ९३.

जीवित देखने के भाव का मूल है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कहना है - ''जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है''[१]। साहित्य के सम्बन्ध में जैनेन्द्र कुमार का कथन है - ''अब वह कुछ ऐसी वस्तु है, जो समाज को प्रतिबिंबित तो करे पर चाटुता से अधिक उसे चोट दे, और इस भांति समाज को आगे बढ़ाने का काम भी करें। साहित्य अब प्रेरक भी है। वह देता ही नहीं अब वह करता भी है। हमारी बीती ही उसमें नहीं है, हमारे संक्लप और हमारे मनोरथ भी आज उसमें भरे हैं''[२]। प्रो. रघुपति सहाय 'फिराक' ने साहित्य को जीवन और जीवन को साहित्य माना है।[३]

साहित्य जीवन, समाज और व्यक्ति का पथप्रदर्शक है। ''जैसे हमारे भावों और विचारों को एकत्रित रखकर मानव जाति में एक सूत्रता उत्पन्न कर अथवा जो काव्य के शरीर स्वरूप शब्द और अर्थ को परस्परानुकूल द्वारा सप्रमाण बनाकर मानव जाति का हित सम्पादन करे वही साहित्य है''[४]। कविवर रवीन्द्र ने अपनी संगीतमयी भाषा में साहित्य का सानिध्य मानव चरित्र से स्पष्ट करते हुए लिखा है किः- ''वहीः प्रकृति एवं मानव चरित्र मनुष्य के भीतर प्रतिक्षण जो आकार धारण करते रहते हैं, जिस संगीत को ध्वनित करते रहते हैं, भाषा चरित वही चित्र एवं गीत साहित्य है''[५]। साहित्य तब पूर्ण होता है जब उसमें जीवन की पूर्णता होती है।

---

१ डॉ. नामदेव उत्कर, *साहित्यशास्त्र,* पृ. ६४ (से उद्‌घृत)

२ वही, पृ. ६५

३ वहीं

४ डॉ. सतीश दूबे, *समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में प्रेमचन्द साहित्य*, पृ.११.

५ वही, पृ. १२.

महात्मा गाँधी के शब्दों में ''साहित्य वह है जिस तरह खींचता हुआ किसान भी समझ सके और साक्षर भी समझ सके''[१]। उपर्युक्त अर्थ एवं परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि साहित्य मानव की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है, साथ ही साहित्य और समाजशास्त्र का अटूट सांस्कृतिक संबंध है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हर एक काल और समय के अनुसार साहित्य की अवधारणा में परिवर्तन आया है।

१.१.५ समाजशास्त्र : अर्थ एवं परिभाषा

'समाजशास्त्र' शब्द अंग्रेज़ी के 'सेशियोलॉजी' का हिन्दी रूप है। 'सोशियोलॉजी' शब्द 'सोशियो' (Socio) और लॉजी (logy) के सहयोग से बना है। 'सोशियो' समाज के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है तो 'लॉजी' शास्त्र, ज्ञान अथवा विज्ञान के रूप में। आजकल प्रत्येक क्षेत्र में 'लॉजी' शब्द विज्ञान के अर्थ में प्रयुक्त हो रहा है''[२]। अतः यह सपष्ट होता है कि समाजशास्त्र की विषयवस्तु समाज ही है, तथा समाज का प्रतिफलन साहित्य में मिलता है। इस सभ्यता ने ही साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन की ओर प्रेरित किया है। विभिन्न लेखकों ने 'समाजशास्त्र' को अपनी-अपनी दृष्टि से परिभाषित किया है।

समाजशास्त्र के जनक 'अगस्त काँमते' ने समाजशास्त्र को ''Science of human association''[३] अर्थात मानवीय संबन्धों का विज्ञान कहा है। सोरोकिन समाजशास्त्र को सामाजिक सांस्कृतिक घटनाओं के सामान्य स्वरूपों, प्रारूपों और विभिन्न प्रकार के अन्तः संबन्धों के सामान्य विज्ञान के रूप में परिभाषित करते हैं।[४] इमाइल दुर्खीम ने

---

१ डॉ. नामदेव उत्कर, *साहित्यशास्त्र,* पृ. ४५ (से उद्धृत)

२ डॉ. टी. मीना कुमारी, *शिवप्रसाद सिंह के कथा-साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन*, पृ. १५ (से उद्धृत)

३ Brown Ken, *An introduction to sociology*, p.2

४ P.A. Sorokin, *Cultural and personality,* "Sociology is generalising science of socio-cultural phenomena viewed in their generic forms, types and manifield interactions", p.6.

तथ्यों को वस्तुनिष्ठ तथ्यों पर केन्द्रित करके देखने के पक्षधर हैं''[१]। केन ब्रौन ने ''समाजशास्त्र आधुनिक समाजों के मानवसमूहों और सामाजिक जीवन का सुनियोजित तथा अध्ययन के रूप में मान लिया है।[२]'' गिलन और गिलन ने ''विस्तृत रूप में समाज शास्त्र को जीवित प्राणियों के एक दूसरे के संपर्क में आने के फलस्वरूप उत्पन्न होनेवाली अन्तः क्रियाओं का अध्ययन माना है।''[३] 'आर्थर फेयर बेंक्स' ने समाजशास्त्र को अपने ढंग से परिभाषित करने का प्रयास किया है- ''समाज शास्त्र (एक ऐसा) नाम है जिसका प्रयोग (कुछ अंशों में) किंचित पदार्थों के अपरिपक्व ढेर केलिए किया जाता है, जिसमें समाज के ज्ञान का समावेश होता है।''[४]

आपसी संबन्ध समाज के सदस्यों को निकट लाती है। उनमें आत्मीयता उत्पन्न करती है, तथा एक दूसरे के सुख-दुःख में सहभागी बनाती है। सीमित को विस्तृत करती है। समाज सह अस्तित्व की विकासमान प्रक्रिया है परन्तु समाज एक अखण्ड व्यवस्था नहीं है क्यों कि उसके कई उपखण्ड होते हैं जो मिलकर समाज की रचना करते हैं। डॉ. सूर्यप्रसाद चौबे ने लिखा है - ''समाजशास्त्र समाज के गतिशील तथा स्थिर दोनों दशाओं में इसके संगठनों की संरचना और कार्य का अध्ययन करता है।''[५] एस. एम जोन्सन का कहना है कि ''समाजशास्त्र वह विज्ञान है जो सामाजिक समूहों का अध्ययन करता है जो उनके आंतरिक स्वरूपों व संगठन के प्रकरणों का अध्ययन करता है जो इन स्वरूपों में

---

१ Brown Ken, *An introduction to sociology* , "The aim of sociology is to treat social facts as things".p 2.

२ Brown Ken, *An introduction to sociology*, "Sociology is the systematic (or planned and organised) study of human grups and social life in modern societies. It concenerd with the study of social institutions", p.4.

३ Gilling And Guillin, *Cultural Sociology*,"Sociology in its broadcast sense may be said to be the study of ineractions arising from the association of living beings", p.5

४ Arthur Fair Back, *An introduction to sociology*, Sociology is the name applied to a some what inmate mas of materials which embodies our knowledge of society", p.1.

५ डॉ. सूर्यनारायण चौबे, *समाजशास्त्र के तत्व,* पृ. ४.

होने वाले परिवर्तनों की प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है तथा जो समूहों के मध्य संबंधों का अध्ययन करता है।''[१]

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि समाजशास्त्र मानव और मानव की सामाजिक दिशा और दशा का विस्तृत अध्ययन है।

१.१.५.१ सामाजिक मानदण्ड और मूल्य

विद्वानों का कहना है कि सामाजिक मानदण्ड और मूल्य व्यक्ति के व्यवहार के मार्गदर्शक है। समाज में सामाजिक संबंध व्यक्तियों को एक साँचे में ढालते हैं। समाजशास्त्र के साहित्य में एक बहुत बड़ा भाग सामाजिक मानदण्ड और नियंत्रण का है। समाज की इस व्यवस्था का निरन्तर संगठित एवं नियंत्रित बने रहने का एकमात्र कारण सामाजिक संबंधों का नियंत्रण और संचालन है। सामाजिक मानदण्डों द्वारा समाज अपने सदस्यों के व्यवहार और कामकाज को व्यवस्थित और नियंत्रित रखते हैं। 'समाजशास्त्र-नई दिशाएँ' में लिखा गया है..... ''संस्कृति ही मानदण्ड और मूल्यों को निर्धारित करती है। मनुष्य अपने दिन प्रतिदिन की गति-विधियों में कई स्थितियों (situation) में काम करता है । उसका एक व्यवहार राजनीतिक स्थिति में भी है। सामाजिक मानदण्ड किसी स्थिति में कैसा व्यवहार होता है, उसे निर्धारित करते हैं। ऐसी एक स्थिति जो विवाह की है, दुल्हन को मण्डप में बैठना है, सामाजिक मानदण्ड उसे एक विशेष प्रकार की पोशाक पहनने का सुझाव देते हैं। विवाह की स्थिति में उसे लाल साड़ी पहननी है, जूड़ा बाँधना है, अधिकतम सोने के आभूषण पहनते हैं और अपने चेहरे पर मेकप का भार ढोना है। वस्तु स्थिति यह है कि प्रत्येक स्थिति में समाज द्वारा निर्धारित मानदण्डों और मूल्यों का अनुपालन व्यक्ति को करना पड़ता है''।[२] मानव जीवन में प्रत्येक आचार,

---

१ डॉ. सुधीष दूबे, *समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में प्रेमचन्द साहित्य*, पृ. १७.

२ दोषी, एस. एल, जैन, पी.सी, *समाजशास्त्र नई दिशाएँ*, पृ. ९०५

व्यवहार, रीतियाँ, एवं रूढियाँ प्रचलित हैं। बाद में इन व्यवहारों का सामाजिक मूल्य निर्धारित करते हैं। समाज व्यक्ति से बनता है, अतः इन्हीं व्यवहारों का पालन व्यक्ति को करना पड़ता है। जीवन की प्रत्येक स्थिति में समाज द्वारा निर्धारित मानदण्डों और मूल्यों का पालन व्यक्ति को करना पड़ता है। यह भी सर्वमान्य है कि जनरीतियाँ, रूढियाँ समाज को प्रभावित करते हैं। समाज के सदस्यों का मानदण्ड जनरीतियाँ हैं। इसके माध्यम से सामाजिक और सांस्कृतिक निरन्तरता को बनाये रखती है। जब नवीन समाजिक शक्तियाँ उभरकर आती है, समाज में बदलाव आता है, तब नई जनरीतियाँ धीरे- धीरे समाज का अंग बन जाता है। जनरीतियाँ सामाजिक संरचना का मानदण्ड है जो समाज की व्यवस्था को सुचारु ढंग से चलाते हैं। यद्यपि ये समाज के लिए अनिवार्य नहीं है फिर भी अलिखित नियम जैसे समाज के सभी सदस्यों को इसका पालन करना पड़ता है। अतः सामाजिक मानदण्ड और मूल्य का महत्व समाज में सुस्थिर रहता है।

१.१.५.२ सामाजिक संरचना

समाजशास्त्र में दो आधारभूत धारणाएँ हैं- सामाजिक संरचना और सामाजिक व्यवस्था। सामाजिक संरचना से हमें समाज की बाहरी रूपरेखा के बारे में पता चलता है। भारतीय समाज में नातेदारी या बन्धुत्व है, धर्म है, अर्थव्यवस्था है, राजनीति है, कला और साहित्य है, इन सबके अर्न्तसंबन्धों का अध्ययन संरचना करती है। सामाजिक संरचना बहुआयामी है। मेक्स वेबर ने सामाजिक संरचना की व्याख्या परिस्थिति, धन और शक्ति के आधार पर की थी। १९८० के बाद यही उपागम भारतीय संरचना के अध्ययन में लागू किया गया है। संरचना शब्द की परिभाषा एस. नडेल ने अपनी पुस्तक 'दि थ्योरी आँफ सोश्यल स्ट्रक्चर' (१९५७) में उठाया था। ''संरचना का तात्पर्य है - भागों (parts) का व्यवस्थित रूप से जमा होना। यह संरचना सामान्यतया

अपरिवर्तनशील होती है। जबकि इसके भाग साधारण रूप से परिवर्तनशील होते हैं।''[१] दूसरे शब्दों में 'व्यक्ति के व्यवहार पर समाज का नियंत्रण है। लेकिन समाज बहुत विशाल है। इस समाज के विभिन्न नियम-उपनियम संस्था का रूप ले लेते हैं। इस भाँति देखें तो सामाजिक संरचना सामाजिक संबंधों की एक बनावट है और यह बनावट ही व्यक्तियों के व्यवहार को निर्धारित करती है और नडेल इन्हीं को सामाजिक संरचना कहते हैं''[२]। संरचनात्मक अध्ययन में समाज के विभिन्न अंगों के परस्पर संबंधों को समझने का प्रयास किया जाता है।

१.१.५.३ सामाजिक व्यवस्था

सामाजिक व्यवस्था से समाज की आन्तरिक प्रक्रियाओं का बोध होता है। समाज के विभिन्न अंगों का अतः संबन्ध सामाजिक व्यवस्था को जन्म देता है। सामाजिक व्यवस्था का विश्लेषण सबसे पहले पारसन्स ने अपनी पुस्तक 'दि स्ट्रक्चर आँफ सोश्यल एकशन' में किया था। उन्होंने 'दि सोश्यल सिस्टम' (१९५९) नामक किताब में व्यवस्था को विस्तृत रूप में प्रस्तुत किया है। सामाजिक व्यवस्था समाज के विभिन्न अंगों को संतुलित करती है। इसके माध्यम से ही समाज की अंतः क्रियाओं को जाना जा सकता है।

१.१.५.४ सामाजिक संगठन और विघटन

सभी समाजों में किसी न किसी रूप में सामाजिक संगठन पाये जाते हैं। इसके अन्तर्गत मनुष्य की आवश्यकताएँ उसकी अनुभूतियाँ और प्रस्तुतियाँ होती हैं। सामाजिक संगठन का मुख्य ध्येय सामाजिक कार्य को सुचारु ढंग से करना है। संरचना में पायी जाने वाली सभी परिस्थितियों की भूमिकाएँ इसमें आती हैं। जब सामाजिक संबन्ध टूट

---

१ एस. एल दोषी, *आधुनिकता उत्तर आधुनिकता एवं नव समाजशास्त्रीय सिद्धान्त*, पृ. ३६७.

२ वही

जाता है तब सामाजिक विघटन की स्थिति उत्पन्न होती है। जैसे भूकंप, अतिवृष्टि और प्राकृतिक प्रकोपों से बचने के लिए व्यक्ति एक स्थान को छोटकर कहीं अन्य स्थान की ओर चला जाता है। इस प्रकार की परिवर्तित संस्कृति, प्रकृति और पर्यावरण भी सामाजिक विघटन का कारण बन जाता है।

१.१.५.५ सामाजिक नियंत्रण

सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक संगठन को बनाये रखने के लिए समाज में व्यक्तियों को कुछ नियमों का पालन करना पड़ता है। समाज में व्यक्तियों को नियन्त्रित करने की इस प्रक्रिया को सामाजिक नियन्त्रण कहते हैं। गिलन और गिलन के अनुसार ''सामाजिक नियंत्रण सुझाव, अनुनय, प्रतिरोध, उत्पीड़न तथा प्रयोग आदि साधनों की उस व्यवस्था को कहते हैं जिसके द्वारा समाज किसी उप-समूह के व्यवहार की मान्यता प्राप्त प्रतिमानों के अनुरूप बनाता है अथवा जिसके द्वारा समूह सभी सदस्यों को अपने अनुरूप ढालता हैं ।''[१]

सामाजिक नियंत्रण की यह प्रक्रिया हमेशा चलती रहती है। अतः व्यक्तियों और समूहों को सामाजिक मूल्यों और आदर्शों के अनुरूप व्यवहार करना पड़ता है । भारतीय समाज धार्मिक समाज होने के कारण धार्मिक भावनाएँ और ईश्वर का भय व्यक्ति में सदैव होता रहता है। इसलिए सामाजिक नियंत्रण में धर्म का महत्वपूर्ण स्थान है। विधियाँ, कानून, पुलिस, दंण्ड आदि की अवधारणाएँ समाज में व्यक्ति के अनुचित कार्यों पर नियन्त्रण रखने हेतु बनाया गया है। तत्कालीन संदर्भ में इस तरह की अवधाणाएँ और नियंत्रण समाज और व्यक्ति के हित के लिए है या अहित केलिए, यह विचारणीय विषय है।

---

१ गिलन और गिलन, *कलचरल सोशियोलजी*, पृ. ५६९

१.१.५.६ सामाजिक परिवर्तन

परिवर्तन समाज की एक सहज प्रवृत्ति है। जब मनुष्य की आर्थिक स्थिति, रहन-सहन, शिक्षा-दीक्षा, शासन-प्रणाली आदि में बदलाव आते हैं, तब समाज में भी उसका प्रतिफलन पड़ता है। सामाजिक परिवर्तन के सम्बन्ध में प्रसिद्ध समाजशास्त्री गिलन और गिलन की राय उल्लेखनीय है कि ''जीवन के स्वीकृत ढंग में जब अन्तर आने लगें, तो सामाजिक परिवर्तन हो जाता है, चाहे ये अन्तर भौगोलिक दशाओं में परिवर्तन के कारण आएँ, चाहे सांस्कृतिक साधनों, आबादी की रचना या विचार धाराओं में परिवर्तन के कारण आएँ जिनका सूत्रपात उसी जनसमूह ने स्वयं किया हो या कहीं अन्य से लिया हो''[१]। अतः हम कह सकते हैं कि सामाजिक परिवर्तन एक व्यापक प्रक्रिया ही नहीं बल्कि एक सार्वभौमिक घटना है। आधुनिक समाज एवं आदिम समाज दोनों में परिवर्तन की गति भिन्न प्रकार की होती है। काल और समय के अनुसार सामाजिक परिवर्तन होता रहता है। समाज की अप्रत्याशित घटना भी सामाजिक परिवर्तन का कारण हो सकता है।

भारत में स्वतंत्रता से पहले सामाजिक परिवर्तन में तीव्रता नहीं थी। क्योंकि सामाजिक, सांस्कृतिक प्रक्रियाएँ राजनीति पर निर्भर नहीं बल्कि वे स्वयं थी। व्यक्ति स्वयं अपनी पहचान में नहीं आया था। वह किसी परिवार, गाँव, मोहल्ले या जाति के थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सामाजिक, सांस्कृतिक प्रक्रियाएँ राजनीति पर निर्भर हुए, तब से भारत में परिवर्तन की गति तेज़ हो गई। आंतरिक तथा बाह्य प्रक्रियाएँ जैसे-आधुनिकता, उत्तरआधुनिकता, वैश्वीकरण आदि इसकी तीव्रता के कारक बने। आज समाज पूँजीवाद, औद्योगिक और तकनीकी-तंत्र के समाज बन गया है। सारी दुनिया आदमी की मुट्ठी में सामाई हुई है। समाज के एक तरफ पूँजी के स्वामी है, और दूसरी तरफ पूँजीहीन जो दिहाडी पर अपना जीवनयापन करते हैं। साथ ही साथ शोषित वर्ग भी अपने समाज और

---

१ गिलन और गिलन, *कलचरल सोशियोलजी*, पृ. ५६९, ५६२.

संरचना में परिवर्तन लाना चाहते हैं। वे व्यक्तिगत पहचान के लिए अपनी कुशलता, प्रतिभा, और योग्यता, के आधार पर समान अवसर के हकदार बन गये हैं। आज व्यक्तियों की चिंता में बदलाव आयी है, वे सोचने लगे हैं। नए-नए अनुसंधान और आविष्कार हो रहे हैं। समाज शिक्षित होने लगे हैं। समाज के निचले स्तर के व्यक्ति भी 'स्व' की खोज करते हुए अपनी स्वतंत्रता में जो बाधाएँ हैं उससे प्रतिरोध करता है, यह सब सामाजिक परिवर्तन के कारण ही हैं । ग्रामीण समाज में परिवर्तन धीमी गति से है बल्कि नगरों में तीव्र गति से हो रहा है। सामाजिक परिवर्तन के मूल में अनेक तत्व विद्यमान है जैसे प्राकृतिक विनाशा, जनसंख्या, आंदोलन, संस्कृति, वैश्वीकरण आदि। आगे इन्हीं तत्वों का विश्लेषण करना संगत लगता है।

१.१.५.६.० सामाजिक परिवर्तन के कारण

सामाजिक परिवर्तन के कई कारण है।

१.१.५.६.१ सांस्कृतिक कारण

संस्कृति मनुष्य के सामाजिक जीवन का प्रमाण है। एक व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में जो कुछ भी सहायक है वही संस्कृति है। हमारी मानसिक संरचना के कलुष भाव को निकालने का प्रयास ही हमें संस्कारवान बनाते हैं। इन संस्कारों से हमारी सांस्कृतिक चेतना का निर्माण होता है। यह चेतना वैयक्तिक होते हुए भी सामूहिक भी है। इस चेतना से मिली ऊर्जा से हम अपने जीवन के प्रति जो संक्लप है, अवधारणा है, दृष्टिकोण है उनमें अस्मिता का निर्माण करते हैं। ये अस्मिता ही हमारी आत्मा है। इस अर्थ में देखे तो राष्ट्र की आत्मा संस्कृति को माना जाता है। रामधारी सिंह 'दिनकर' का कथन है कि- ''संस्कृति ज़िन्दगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है, जिसमें हम जन्म लेते हैं। संस्कृति सभ्यता की

अपेक्षा महीन चीज़ होती है। यह सभ्यता के भीतर उसी तरह व्याप्त रही है जैसे दूध में मक्खन या फलों में सुगन्धि''[१]।

जीवन के संपूर्ण कार्य व्यापार से संस्कृति नाता जोड़ती है। परंपरा से अर्जित आदतें, मूल्य, कला, साहित्य, सुख-सुविधाएँ, भाषा, धर्म आदि संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। अतः इसमें परिवर्तन हुआ तो सामाजिक संबन्धों में भी परिवर्तन होगा। जब मानव समूह कृषि करते हैं, वहाँ एक नई संस्कृति, भाषा और समाज का निर्माण होता है। संस्कृतीकरण में गतिशीलता आती है, तो वह सामाजिक परिवर्तन है। इस परिवर्तन की दो विशेषताएँ हैं, एक तो परिवर्तन धीमि गति से आता है और दूसरी परिवर्तन जातियों की सोपानिक व्यवस्था में दिखाई देता है, विशाल सामाजिक व्यव्सथा में नहीं। इस तरह के अर्न्तजात परिवर्तन हिन्दू परम्पराओं में आते हैं। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि सांस्कृतिक कारण से भी सामाजिक परिवर्तन हो जाता है।

१.१.५.६.२ सामाजिक आंदोलन के कारण

सामाजिक आंदोलन सामाजिक परिवर्तन का एक कारण है। ये सामाजिक व्यवस्था को कभी आंशिक या संपूर्ण रूप से परिवर्तित करता है। बाह्य परिस्थितियों के कारण समाज अपने आप परिवर्तित हो जाते हैं । जैसे बाढ़, भूक्मप आदि। आंतरिक परिस्थितियों में समाज के सदस्य स्वयं परिवर्तन लाना चाहते हैं। वे संगठित होकर आंदोलन शुरु करते हैं, यह आंदोलन समाज की आंतरिक व्यवस्था से जुड़ी हुई है। उदाहरण के लिए दलित आंदोलन अपने अनुभवों से अर्जित आत्म पहचान से रूपायित होता है। जब समाज में दूसरों को अपने से अलग करके देखने से (ब्राहमण) पृथकता संबंधी परिक्लपनाओं को जगह मिलता है।

---

१ रामधारी सिंह दिनकर, *संस्कृति के चार अध्याय,* पृ. ६५२.

१.१.५.६.३ प्रकृति और जनसंख्या में परिवर्तन के कारण

प्रकृति के संचालन बिगडने से समाज में परिवर्तन आ जाता है। जैसे मौसम का परिवर्तन, आकस्मिक घटनाएँ जैसे भूकम्प, बाढ़ आदि से सामाजिक संबंन्ध तितर-बितर हो जाते हैं। मनुष्य सामाजिक संबन्धों का मुख्य आधार है। अतः जनसंख्या में वृद्धि और कमी का प्रभाव सामाजिक संबन्धों पर पड़ता है। उदाहरण के लिए समाज की जनसंख्या की क्रमातीत वृद्धि से अनेक सामाजिक समस्याएँ जैसे भोजन, आवास, शिक्षा, दीक्षा आदि उठ खड़ी होती हैं और उनका सामाजिक संबन्धों पर प्रभाव पड़ता है।

१.१.५.६.४ प्रौद्योगिक और औद्योगिक के कारण

आज मानव नयी वस्तुओं के खोज कार्य में हमेशा क्रियारत है। समाज के हर क्षेत्र में वह पदोन्नति चाहता है। यान्त्रिक क्रियाओं ने मानव संबन्धों पर इतना प्रभाव डाला है कि उसके पास दूसरों से मिलने के लिए समय नहीं है । आधुनिक व्यक्ति के दृष्टिकोण बदलने से सामाजिक संगठन में भी परिवर्तन का आभास देखने को मिलते हैं। जब संसार में औद्योगिक क्रांति आती थी तब औद्योगिक पूँजीवाद ने बाज़ार को केन्द्र बनाया। ये राष्ट्रीय बाज़ार अंतर्राष्ट्रीय तक पहुँच गये। आज बाज़ारवाद भी समाज को परिवर्तित करते हैं। नये-नये यंत्रों के आविष्कार एवं विकास के कारण मनुष्य के आर्थिक स्तर में भी परिवर्तन आया है। सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में इलेक्ट्रोनिक मीडिया के कारण भी सामाजिक परिवर्तन तीव्र गति से हो रहा है।

१.१.५.६.५ वैश्वीकरण के कारण

''वैश्वीकरण सामाजिक जीवन के विविध क्षेत्रों में परम्परात्मक, स्थानीय व राजकीय प्रतिबंधों के शिथिलीकरण के माध्यम से वैशिक एकरूपीकरण की प्रक्रिया

है।''[१] अतः वैश्वीकरण बहुआयामी आर्थिक प्रक्रिया है। आज कोई भी समाज या देश इसके प्रभाव से अछूता नहीं। वैश्वीकरण समाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक होते हुए भी उसका केन्द्र 'अर्थ' है। अधिकाधिक राज्यों के बीच का आर्थिक संबन्ध आर्थिक अंतर्राष्ट्रीकरण की ओर ले चलता है। अतः हम कह सकते हैं कि वैश्वीकरण अर्थ एवं वाणिज्य को स्वतंत्र बाज़ार में छोड़ना चाहता है। ये धर्म, संस्कृति, परंपराओं आदि से व्यक्ति व समाज को मुक्त कराकर उन्हें विकास के बेहतर अवसर प्रदान करती है। मेलकॉम की वैश्वीकरण की परिभाषा इस प्रकार है- ''वैश्वीकरण एक सामाजिक प्रक्रिया है जिस में सामाजिक तथा सांस्कृतिक व्यवस्था पर जो भौगोलिक दबाव होते हैं; पीछे हट जाते हैं, और लोग भी इस तथ्य से अवगत हो जाते हैं कि अब भूगोल की सीमाएँ बेमतलब हैं''[२]।

आज वैश्वीकरण ने लोगों की सोच और जीवन पद्धति के मूल्यों के बीच लड़ाई शुरु की है। आर्थिक आधिपत्य के माध्यम से राजनैतिक आधिपत्य को कायम रखा है। फलस्वरूप गरीब समाज व देश को आर्थिक, सांस्कृतिक, तथा राजनैतिक रूप से अमीर देशों का गुलाम होना पडता है। इस तरह के शोषण में वैश्वीकरण विकसित राष्ट्रों का सुरक्षित हथियार है। अतः यह एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है। इसका माध्यम विकसित प्रौद्योगिक तकनीक है, साथ में इसका आर्थिक आधार उदारवाद, उपभोक्तवाद एवं बाज़ारवाद है। समाजशास्त्र के अध्ययन में सूपर बाज़ार का बडा महत्त्व है। आज स्थानीय और वैश्वीय लोग एक कड़ी में बाँध गये हैं। औद्योगिक क्रांति, सूचना तकनीकी, संचार साधनों में वृद्धि आदि सब प्रक्रियाएँ दुनिया भर के सामाजिक संबन्धों को गहरा और घनिष्ठ कर रही है, इस प्रक्रिया को समाजशास्त्रीय वैश्वीकरण कहते हैं। वैश्वीकरण दुनिया को जोड़ने वाला, अंतराष्ट्रीय सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक सूत्र में बाँधने

---

१ रामगोपाल सिंह, *वैश्वीकरण मीडिया और समाज*, पृ. ६.

२ एस. एल. दोषी, *आधुनिकता उत्तर-आधुनिकता एवं नव समाजशास्त्रीय सिद्धान्त*, पृ. ३२२.

वाला नेटवर्क है। इससे आगे हमारे दिन-प्रतिदिन के जीवन को भी प्रभावित करता है। एक दूसरे को निकट लाने के साथ-साथ उनमें तनाव भी पैदा करते हैं। 'मेलकॉम वाटर्स' का बहुचर्चित ग्रन्थ है, 'ग्लोबेलाइजेशन' (१९९८)। इन्होंने पहली बार वैश्वीकरण को समाजशास्त्र में स्थापित किया।

उत्तर आधुनिक समाज को वैश्वीकरण ने पूँजीवादी विश्व समाज की ओर ले जा रहे हैं। पूँजीवादी विश्व का समाज पूर्ण रूप से एक प्रतियोगी समाज बन जाने की संभावना है। कुल मिलाकर वैश्वीकरण ने आर्थिक उदारीकरण का सूत्रपात किया है, पूंजीवादी विश्व व्यवस्था को स्थापित किया और अपनी प्रगति के लिए संस्थाओं के जाल को बनाया। उपभोग और प्रजातंत्रीकरण को विकसित किया। संस्कृति के क्षेत्र में जन संस्कृति को विकसित किया। वैश्वीकरण बाज़ार को उत्पादन से भर दिया है। इन सब में तकनीकी ज्ञान और पूँजी निवेश निर्णायक कारक है। जिन देशों के पास इनका अभाव है, वे संगठित या असंगठित रूप से इसका विरोध करता है। बेलेस्टेन और जेमेसन कहते हैं; ''वैश्वीकरण पूंजीवाद का मेनीफेस्टो है''[१]। हमें ऐसा अनुमान करना चाहिए कि बहुत जल्दी ही उत्तर-वैश्वीकरण की संभावनाएँ हैं। आगे हम साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन की प्रविधि पर विस्तार से विश्लेषण करने की कोशिश करेंगे।

१.१.६ साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन की प्रविधि

जैसे हम ने पहले कहा कि साहित्यकार समाजशास्त्रीय अध्ययन कैसे करें। आज कल पूरे विश्व में समाजशास्त्रीय अध्ययन की अनेक प्रविधियाँ प्रचलित हैं। हम जानते हैं कि मनुष्य की आवश्यकताओं के अनुसार उनके जीवनानुभवों में भी समय-समय पर परिवर्तन आते हैं। साहित्य का क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं है। साहित्यकार साहित्य के ऐसे पक्षों की ओर भी ध्यान देने लगा है जो मानवीय संबन्धों और समाज की संरचना के

---

१ एस. एल. दोषी, *आधुनिकता उत्तर-आधुनिकता एवं नव समाजशास्त्रीय सिद्धान्त*, पृ. ३५२.

विश्लेषण से भी संबंधित है। साहित्य की इन्हीं सामाजिक स्रोतों से साहित्य के समाजशास्त्र का जन्म हुआ है। वैश्विक स्तर पर समाजशास्त्रीय अध्ययन को एक व्यवस्थित रूप देने की प्रक्रिया में अनेक विद्वानों का योगदान है। जैसे मैडम दि स्टैले, तेन, मार्क्स, एंगल्स, लुकाच, गोल्डमान आदि विद्वानों के विशेष महत्व है। अगस्त कॉम्ते (१७९८-१८५७) को समाजशास्त्र का जनक माना जाता है, जिन्होंने समाजशास्त्र से संबन्धित कुछ नियम बनाकर उन्हें व्यवस्थित दिशा प्रदान करने का प्रयत्न किया । वे एक प्रगतिशील समाज की कल्पना करते थे। फलस्वरूप उनके समाजशास्त्र से संबंधित दो दृष्टियाँ सामने आती हैं जैसे- सामाजिक स्थितिशास्त्र (social statics), तथा सामाजिक गतिशास्त्र (social dynamics) । सामाजिक स्थितिशास्त्र में वे समाज के संगठन एवं स्थिर संबंधी नियमों की खोज करते हैं, वहीं सामाजिक गतिशास्त्र में समाज की उन्नति एवं प्रगति की बात करते हैं। दोनों ही नियमों के तहत कॉम्ते समाज को व्यवस्थित बनाकर उसका विकास एवं प्रगति चाहते हैं। वे समाजशास्त्र को समाजिक नियोजन एवं सामाजिक पुनर्निर्माण के विज्ञान के रूप में देखते हैं। कॉम्ते इस महान कार्य के संपादन हेतु वैज्ञानिक, कलाकार, कवि, चिकित्सक, गायक, नर्तक आदि विविध वर्गों की सेवाओं को महत्वपूर्ण एवं उपयोगी मानते हैं। इन्हीं के दृष्टिकोण से प्रभावित होकर कुछ अन्य विद्वानों ने भी समाजशास्त्र की ओर ध्यान दिया। परंतु कॉम्ते से पहले अठारहवीं सदी में ही फ्रांस के साहित्यालोचक मेडम दि स्टैले (१७६६-१८१७) थीं, जिनको प्रो. रेनेवेलेक ने प्रथम महिला आलोचक कहा है। फ्रांस में साहित्य के समाजशास्त्रीय चिन्तन की परंपरा व्यवस्थित रूप में मेडम दि स्टैले की पुस्तक- 'Literature considered in its relation with Social institution' (सामाजिक संरचनाओं से साहित्य के संबंध पर विचार) से शुरु हुई। मेडम दि स्टैले ने समाज और साहित्य के संबंधों का अध्ययन प्रस्तुत करते हुए स्पष्ट किया कि साहित्य पर धार्मिक एवं राजनीतिक धारणाओं का अनिवार्य प्रभाव पड़ता है। उनकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण पुस्तक 'डी.ला. लिटरेचर' में वे हर्डर (१७४४-१८३०)

की तरह भूगोल, जलवायु एवं तदनुसार सामाजिक मनोवैज्ञानिक स्थितियों के साथ साहित्य रचना का संबंध जोड़ती हैं। मैडम दि स्टैले के बाद सामाजिक स्थितियों की गहराई को उद्‌घाटित करने एवं उसे आत्मसात् कर साहित्य के समाजशास्त्र को एक व्यवस्थित रूप देने का श्रेय १९ वीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध के फ्रेंच विद्वान 'इप्पोलाईत तेन' (१८२८-१८९३) को है। वे साहित्य को समाज का दर्पण मानते हैं। वे साहित्य के मूल्यांकन हेतु प्रजाति, काल और पर्यावरण (Race, Moment and Melieu) का त्रिक सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं। साहित्य सर्जन में इन तीनों की भूमिका को उन्होंने महत्वपूर्ण माना है। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रमुख विचारकों में तेन के पश्चात् कारल मार्क्स (१८१८-१८८३) एवं फेडरिक एंगेल्स (१८२०-१८६५) ने कला को भौतिक एवं आर्थिक कारणों से संबंधित कर चिंतन को नई दिशा प्रदान की। मार्क्स से पूर्व एडमस्मिथ, फरग्युसन, बेलिंस्की, चर्नेवेस्की, द्रोबोल्युवोव जैसे विचारकों ने अपने कला संबंधी विचारों में भौतिकवादी चिंतन को स्थान दिया।

समाजशास्त्र पर द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दृष्टि से विचार करते हुए एक नवीन रूप प्रदान करने का श्रेय जार्ज लुकाच एवं लुसिए गोल्डमान जैसे मार्क्सवादी चिन्तकों को दिया जाता है। लुकाच के अनुसार साहित्य का रूप तथा नियम यथार्थतः वस्तुपरक जीवन की मूल गतियों से निर्धारित होता है। उनकी दृष्टि में समस्त साहित्य वर्ग संघर्ष की दृष्टि से लिखा जाता है। साहित्य की समाजशास्त्रीय पद्धति को वैज्ञानिक रूप प्रदान करने हेतु हंगेरियन विद्वान लूसिए गोल्डमान ने 'उत्पत्तिमूलक संरचनावाद' की अवधारणा को प्रस्तुत किया। उनकी मान्यता है कि, किसी भी कृति को अकेले कृतिकार के संदर्भ में देखने की अपेक्षा एक सामाजिक वर्ग की विश्वदृष्टि या समग्रता में देखना चाहिए जो कि कृतिकार के दृष्टिकोण एवं मानव संरचनाओं के निर्माण में सहायक होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन हेतु विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोण को अपनाया और उसे पद्धति के रूप में विकसित किया।

समाजशास्त्रीय पद्धति के निरूपण हेतु इन सभी विचारधाराओं को 'एलनस्विंगुड' ने दो भागों में विभाजित किया है। प्रथम विचारधारा को वे प्रत्यक्षवादी विचारधारा की संज्ञा प्रदान करते हैं जो साहित्य को समाज का दर्पण मानकर उसे बाह्य कारकों यथा भौगोलिक, जलवायु, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक कारकों का परिणाम व प्रतिबिंब मानता है। मैडम दि स्टैले, एच.तेन की विचाराधारा में इसका प्रारंभिक रूप तथा मार्क्सवादी विचारधारा में इसका परिष्कृत रूप लक्षित होता है। इसके अतंर्गत अन्य विचारक भी हैं जैसे डी.बोनाल्ड, जेम्सराइट, वीसो, हर्डर, मार्क्स और एंगेल्स, प्लेखानोव, लेनिन, माओत्सेतुंग, मैक्सिम गोर्की, लूनार्चसर्की आदि।

द्वितीय विचारधारा साहित्य विश्लेषण को बाह्य कारकों की अपेक्षा कृति को अध्ययन बिन्दु मानकर उसकी आंतरिक संरचना एवं उसको निर्मित करने वाली विभिन्न इकाईयों की संरचना एवं प्रकार्यात्मक संबंध के अध्ययन पर बल देती है। उसमें कृति के माध्यम से समाज, साहित्य सृजन की प्रक्रिया के निर्धारक आर्थिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक कारकों का अध्ययन तथा उसके उत्पादन, उपभोग एवं विचरण की प्रक्रिया को बोधगम्य बनाया जाता है। ऐसे विचारकों में कॉडवेल, जार्ज लुकाच, लुसिए गोल्डमान, एच.डी. डंकन, एल. शूकिंग, एस.सी.ब्रोख्त, रेनेवेलेक, जिम्स, एच.बर्नेट, रावर्ट एस्कारपिट, रूचेक, एनलस्विंगवुड, डायना लारन्स आदि प्रमुख हैं।

साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन में एक नयी देन बीसवीं शताब्दी के प्रसिद्ध विद्वान 'रेमण्ड विलियम्स' (१९२१-१९८८) की है जिन्होंने आधार-अधिरचना (Base-Superstrucutre) सिद्धांत को मार्क्सवादी सांस्कृतिक विश्लेषण की कुंजी के रूप में रेखांकित किया है। उन्होंने साहित्य और समाज के संबंध को आधार और अधिरचना के रूप में विश्लेषित किया। क्योंकि जिस प्रकार समाज से साहित्य प्रभावित होता है उसी प्रकार साहित्य भी समाज को प्रभावित करता है। यद्यपि भारतीय संदर्भ में इस विषय पर बहुत अधिक काम नहीं हुआ है तथापि कुछ विद्वानों द्वारा किया गया प्रयास

विचारणीय है। सबसे प्रथम डॉ.डी.पी.मुखर्जी एवं राधाकमल मुखर्जी के नाम विशेष उल्लेखनीय है। डी.पी.मुखर्जी ने अपने पुस्तक 'भारतीय साहित्य का समाजशास्त्र' (Sociology of Indian Literature) में इस तथ्य को स्वीकार किया है कि संचार का माध्यम होने के कारण साहित्य से संपूर्ण सामाजिक प्रक्रिया का बोध संभव हो सकता है। राधाकमल मुखर्जी कला के समाजशास्त्र और कला के समाजशास्त्रीय उपागम तथा कला के सामाजिक कार्यों का विश्लेषण अपना ग्रंथ 'द सोशल फंक्शन ऑफ आर्ट' में करते हैं। मुक्तिबोध के अनुसार "किसी साहित्य को हमें तीन दृष्टियों से देखना चाहिए। एक तो यह कि वह किन सामाजिक और मनोवैज्ञानिक शक्तियों से उत्पन्न है, अर्थात् वह किन शक्तियों के कार्यों का परिणाम है, किन सामाजिक, सांस्कृतिक प्रक्रियाओं का अंग है? दूसरे यह कि उसका अन्तः स्वरूप क्या है? किन प्रेरणाओं और भावनाओं ने उसके आंतरिक तत्व को रूपायित किया है? तीसरे, उसका प्रभाव क्या है? किन सामाजिक शक्तियों ने उसका उपयोग या दुरुपयोग किया है और क्यों? साधारण जन के किन मानसिक तत्वों को उसने विकसित या नष्ट किया है?"[१] इन सभी विद्वानों के मतों के विश्लेषण के बाद यह तथ्य सामने आता है कि संपूर्ण विचार विमर्श के केन्द्र में मुख्यतः तीन पक्ष हैं, जो संपूर्ण साहित्य प्रक्रिया को निर्धारित करते हैं। वे हैं - लेखक, कृति और पाठक। साहित्य की प्रक्रिया को समग्रता से समझने के लिए इन तीनों के आपसी संबंधों का बोध आवश्यक है। अतः साहित्य के समाजशास्त्र के स्वरूप को समझने के लिए उसके भीतर समाज से साहित्य के संबंध की व्याख्या में सक्रिय मुख्य तीन दृष्टियाँ हैं- साहित्य में समाज की खोज, समाज में साहित्यकार और साहित्य, साहित्य और पाठक के संबंध का विश्लेषण। इन मुख्य तीन दृष्टियों को लेकर भिन्न समाजशास्त्रियों ने अपने समाजशास्त्रीय अध्ययन को अलग-अलग नाम दिये। सभी ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप

---

१ नेमीचन्त्र जैन, *मुक्तिबोध रचनावली*, पृ. २९३

से साहित्य और समाज के संबंधों को इन्हीं तीनों तत्वों के आधार पर विश्लेषित कर पद्धति के रूप में एक नया नाम दिया है।

१.१.७. समाजशास्त्र और सामाजिक समस्याओं के अध्ययन की विभिन्न पद्धतियाँ

समाजशास्त्रीय अध्ययन में निम्नांकित पद्धति से समाज का अध्ययन किया जाता है।

१.१.७.१ ऐतिहासिक पद्धति

साहित्य के ऐतिहासिक संदर्भ को समझने का अर्थ है समाज की इतिहास-प्रक्रिया और संस्कृति के दूसरे रूपों से परिवर्तनशील संबंध को समझना। इसके लिए परंपरा की धारणा का विशेष महत्व है। साहित्य की ऐतिहासिक दृष्टि के विकास का एक माध्यम समाज का इतिहास लेखन भी है। जैसे अतीत की महत्वपूर्ण घटनाओं, सामाजिक संबंधों, समाज एवं संस्कृति के सूक्ष्म एवं विस्तृत अध्ययन में जिस पद्धति का प्रयोग होता है उसे ऐतिहासिक पद्धति कहते हैं। काम्ते, स्पेन्सर, हॉब्हाउस, कार्ल मार्क्स एवं उनके अनुयायियों की विचारधारा में इस पद्धति को महत्व मिला है। साहित्य का समाजशास्त्री अतीत के आधार पर वर्तमान को समझने तथा भविष्य की दिशा-निर्धारण हेतु महत्वपूर्ण तथ्यों की उपलब्धि कर सत्य की खोज में कार्यरत रह सकता है। मैक्सवेबर ने पूंजीवाद की उत्पत्ति और विकास, आधुनिक नौकरशाही का विकास आदि में ऐतिहासिक पद्धति का सार्थक प्रयोग किया है। संक्षेप में इस पद्धति का प्रयोग साहित्य का समाजशास्त्री निम्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु कर सकता है। साहित्य के क्रमिक विकास को ऐतिहासिक दस्तावेज के रूप में ग्रहण कर साहित्य में वर्णित उसकी उत्पत्ति एवं विकास तथा वर्तमान स्वरूप के निरूपण हेतु तथ्यात्मक अध्ययन, साहित्य संस्था की उत्पत्ति एवं विकास तथा उसके ऐतिहासिक परिवर्तनों का विश्लेषण, साहित्य संरचना की निर्णायक इकाईयों, उनके पारस्परिक संबंधों, तथा उनके स्वरूपों व संबंधों में होनेवाले परिवर्तनों एवं साहित्य सृजन

में उनकी स्थिति एवं भूमिका का क्रमिक अध्ययन केलिए भी इस पद्धति का प्रयोग कर सकता है।

१.१.७.२ तुलनात्मक पद्धति

समाजशास्त्रीय अध्ययन-पद्धति के रूप में तुलनात्मक पद्धति को काफी महत्व मिला है। सबसे पहले 'दुर्खीम' ने 'दि रूल्स ऑफ सोशियोलजिकल मेथड' में स्पष्ट रूप से इस पद्धति के महत्व को स्थापित किया। तुलनात्मक विधि के प्रारंभिक प्रयोगों का अधिकतर आकर्षक, खासतौर पर सामाजिक मानवशास्त्रियों द्वारा, गैर-पश्चिमी समाजों के अध्ययन को समर्पित था। उन्नीसवीं शताब्दी में तुलनात्मक विधि का मुख्य आकर्षण इस विश्वास में था कि इसका प्रयोग मानव समाज और संस्कृति के बारे में वैज्ञानिक नियमों को खोजने केलिए किया जा सकता है। ई.ए. फ्रीमैन का कहना था कि - ''अध्ययन की तुलनात्मक पद्धति की स्थापना हमारे युग की सर्वश्रेष्ठ बैद्धिक उपलब्धि है।''[१]

मानवशास्त्रियों द्वारा प्रयुक्त इस पद्धति का प्रयोग काम्ते, स्पेन्सर, दुर्खीम, मैक्सवेबर, पारसन्स आदि के अध्ययनों में व्यापक रूप से हुआ है। प्रमुख संस्थाओं के पारस्परिक संबंध, परिवर्तनों एवं उनके प्रभावों के व्यवस्थित अध्ययन में पद्धति उपयोगी होती है। हाबहाउस, ब्हीलर तथा जिन्सबर्ग ने आदिम समाजों की प्रमुख संस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया है। दुर्खीम की 'आत्महत्या' तथा वेबर का 'धर्म संबन्धी अध्ययन' तुलनात्मक अध्ययन का ही परिणाम है। इस पद्धति की सार्थकता इस प्रकार है- मौखिक साहित्य में स्थापित विचारों तथा लिखित साहित्य में स्थापित विचारों का तुलनात्मक अध्ययन, ताकि साहित्यिक निरन्तरताओं की खोज संभव हो सके । समकालीन विविध साहित्य विधाओं के स्रोत, पारस्परिक संबंध, लोकप्रियता एवं प्रभाव के कारकों का

---

१ टी. बी. बॉटमोर, (अनु) गोपाल प्रधान, *समाजशास्त्र समस्याओं और साहित्य का अध्ययन*, पृ. ३.

अध्ययन, विभिन्न भाषायी, क्षेत्रीय एवं युगीन साहित्य से तुलनात्मक अध्ययन द्वारा सामान्य प्रवृत्तियों की खोज, लेखक, प्रकाशक, पाठक, आलोचक की सामाजिक स्थिति, युगीन मान्यताएं एवं उतार-चढाव, पारस्परिक सहयोग एवं संघर्ष का अध्ययन, साहित्यिक मानदंडों व अन्तर्वस्तु के आधार पर विश्वसाहित्य के आधारों की खोज आदि केलिए भी यह पद्धति उपयुक्त है।

१.१.७.३ संरचनात्मक - प्रकार्यात्मक पद्धति

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक पद्धति की दो आधारभूत अवधारणाएँ हैं; संरचना एवं प्रकार्य। जो समाजशास्त्रीय अध्ययन को किसी भी सामाजिक इकाई की पारस्परिक अन्तः संबंधों, उसकी स्थिति तथा भूमिका द्वारा समाज को दिये जाने वाले योगदान तथा उनके अंतः संबंधित प्रतिमानों की क्रमबद्धता के अध्ययन पर केन्द्रित करती है । संरचना की परिभाषा का मसला सबसे पहले एस. एफ. नडेल ने अपनी पुस्तक 'दि थियोरी ऑफ सोश्यल स्ट्रक्चर' में उठाया था। संरचना का प्रयोग, समाजशास्त्र, दर्शनशास्त्र, सामाजिक सिद्धान्त, भाषा-विज्ञान, साहित्यिक आलोचना, संस्कृति विश्लेषण, मनोविश्लेषण, इतिहास, ज्ञान का दर्शन, मानवशास्त्र आदि में प्रयुक्त होने के कारण इसकी परिभाषा देना कठिन है। नडेल के अनुसार ''सामाजिक संरचना को हम समाज में व्यक्तियों की भूमिकाओं तथा परिस्थिति से उत्पन्न अन्तर संबंधों के नेटवर्क के रूप में परिभाषित कर सकते हैं।''[१] 'प्रकार्य' किसी विशिष्ट सामाजिक प्रचलन का वह योगदान है जो कि वह सामाजिक व्यवस्था की क्रियाशीलता के रूप में सामाजिक जीवन को प्रदान करता है। मर्टन के अनुसार ''प्रकार्य वे निरीक्षित परिणाम है जो किसी समाज के अनुकूलन या सामंजस्य में सहायक होते हैं।''[२] समाजशास्त्र में संरचना के साथ प्रकार्य को जोड़ते हैं। प्रकार्यवाद एक तटस्थ विचार, सिद्धान्त और पद्धति है, जिसका प्रयोग सामाजिक

---

१ हरिनारायण ठाकूर, *दलित साहित्य का समाजशास्त्र,* पृ. ३६३ (से उद्धृत)

२ वि. टी. गुप्ता, *साहित्य का समाजशास्त्र, अवधारण, सिद्धान्त एवं पद्धति*, पृ. ७४.

संरचनाओं और उनकी स्थिति व भूमिका, परिणाम व कारण को समझने में सहायक होता है। साहित्य संस्था की संरचना एवं प्रकार्य के विश्लेषण हेतु इस पद्धति की ओर साहित्य के समाजशास्त्रियों का ध्यान आकर्षित हुआ है। साहित्य के समाजशास्त्रीय विश्लेषण हेतु एच.डी. डंकन ने सर्वप्रथम साहित्य रूपी संस्था की संरचनात्मक इकाइयों एवं उनकी अंतः क्रियाओं के अध्ययन का आधार प्रस्तुत किया। लुसिए गोल्डमान भी अपने 'उत्पत्तिमूलक संरचनावाद' की अवधारणा को कृति की आन्तरिक संरचनाओं के विश्लेषण पर ही केन्द्रित करते हैं। एम.सी. अलब्रेख्त अपने 'आर्ट एज एन इंन्स्टीट्यूशन' निबंध में साहित्य की संरचना एवं प्रकार्य विश्लेषण का सैद्धान्तिक आधार प्रस्तुत कर संरचनात्मक-प्रकार्यवाद अध्ययन की ओर प्रेरित करते हैं। "सैद्धान्तिक परिवर्तन की चुनौती ने आधुनिक सिद्धान्त में प्रकार्यवाद को नव-प्रकार्यात्मक सिद्धान्त का विकास किया। ये प्रकार्यवादी परम्परा का एक नया समाजशास्त्रीय पुनर्निर्माण है। आज ये निर्माण के स्तर पर हैं। इस सिद्धान्त के क्षेत्र में अलेक्जेंडर, मंच, तथा लूहमान के अतिरिक्त पॉल-सोलोमी, डिन, गेरस्टेन, मार्क गुल्ड, नैल स्मेलसर आदि ने भी उल्लेखनीय काम किया है"[१]। उपर्युक्त समाजशास्त्रीय पद्धतियाँ साहित्य को समग्र रूप में विश्लेषित करने में सक्षम प्रतीत होती हैं। साहित्य अध्येता इन पद्धतियों की आधारभूत मान्यताओं के आधार पर वस्तुनिष्ठ निष्कर्षों की प्राप्ति तथा साहित्य सृजन की प्रक्रिया को समझने में सफल हो सकता है।

वैसे अगर कहा जाय तो साहित्य का समाजशास्त्र स्वयं अपने आप में एक पद्धति है। एक सार्वभौम पद्धति के रूप में यह अनुसंधान को प्रेरित करती है कि वह उन परंपराओं, मूल्यों और आदर्शों को खोजने का प्रयास करते हैं जिसमें किसी कृति का सृजन हुआ है। निष्कर्ष यह है कि साहित्य में लेखक, पाठक, आलोचक, व प्रकाशक एवं

---

१ एस. एल.दोषी, *आधुनिकता उत्तरआधुनिकता एवं नव समाजशास्त्रीय सिद्धान्त*, पृ. ३९२.

उनकी अन्तः क्रियाएँ विशेष महत्व रखती है जिनका समाजशास्त्रीय पद्धति द्वारा विवेचन कृति के मूल्यांकन में सहायक होता है।

१.१.८ साहित्य के समाजशास्त्र की धाराएँ

विभिन्न समाजशास्त्रियों ने अपने दृष्टिकोण के आधार पर अपनी पद्धतियों का निर्माण किया जिनके विवेचन में इन तीनों लेखक,कृति और पाठक में से कोई एक केन्द्र में रहता है। परंतु आगे चलकर इन भिन्न धाराओं में से कुछ धाराओं को साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन के क्षेत्र में मान्यता मिली, जिन्हें अध्ययन हेतु परवर्ती समाजशास्त्रियों ने अपनाया। इस प्रकार साहित्य के समाजशास्त्र के क्षेत्र में विभिन्न निकायों की स्थापना हुई।

डॉ. मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है कि - "आजकल साहित्य के समाजशास्त्र के विकास की दो धाराएँ हैं। एक धारा में, साहित्य में समाज की अभिव्यक्ति की खोज होती है। उसे हम मीमांसावादी धारा कह सकते हैं। दूसरी में, साहित्य का सामाजिक स्थिति का विवेचन होता है। वह अनुभाववादी धारा है। मीमांसावादी धारा के अन्तर्गत मार्क्सवादी, आलोचनात्मक समाजशास्त्री और संरचनावादी दृष्टियाँ सक्रिय हैं तो अनुभववादी पद्धति में पुरानी विधेयवादी दृष्टि के साथ-साथ संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टियाँ सक्रिय दिखाई देती हैं।"[१]

१.१.८.१ मीमांसावादी धारा

साहित्य के समाजशास्त्र की मीमांसावादी धारा के अंतर्गत कृति विवेचन के केन्द्र में होती है। मीमांसावादी साहित्यिक कृति के विशिष्ट स्वरूप को महत्व देते हैं, इसलिए उनके सामने कृतियों के चुनाव की समस्या होती है। वे गंभीर और सतही साहित्य में

---

१ मैनेजर पाण्डेय, *साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका,* पृ.३२.

फर्क करते हैं। मीमांसावादी समाजशास्त्री के सामने कृति में समाज की अभिव्यक्ति की विवेचना की समस्या होती है। कृति में समाज सामाजिक चेतना के रूप में तथा यथार्थ चित्रण के रूप में व्यक्त होता है। कुछ समाजशास्त्री यथार्थ-चित्रण पर बल देते हैं कुछ सामाजिक चेतना के विश्लेषण पर। सामाजिक चेतना विचारधारा या विश्वदृष्टि के रूप में व्यक्त होती है। यहाँ सवाल उठता है कि विश्वदृष्टि की अभिव्यक्ति किस रूप में और किस स्तर पर होती है। गोल्डमान किसी साहित्यिक कृति की संरचना में विश्वदृष्टि की खोज करते हैं। मीमांसावादी समाजशास्त्र के अन्तर्गत साहित्यिक कृतियों के पाठकीय अभिग्रहण और पाठकीय प्रतिक्रियाओं का भी विवेचन होता है। लियो लावेंथल ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया है। इसके साथ मीमांसावादी प्रकृति, समाज और चेतना के विकासशील संबंध की व्याख्या के लिए सैद्धान्तिक ढाँचे का निर्माण आवश्यक मानते हैं।

१.१.८.२ अनुभववादी धारा

मीमांसावादियों के विपरीत साहित्य के प्रयत्न को आवश्यक मानते हैं। वे प्रतीति और अनुभव से प्राप्त तथ्यों को महत्व देते हैं। अनुभववादी इंद्रियबोध, प्रतीति और अनुभव पर जोर देते हैं, जिससे व्याख्यात्मक समझदारी की उपेक्षा होती है। ऐसी स्थिति में यथार्थ का अधूरा बोध होता है। इस संबंध में मार्क्स ने लिखा है कि- ''अगर वस्तुओं की प्रतीति और यथार्थ में हमेशा तात्कालिक समरूपता होती तो विज्ञान अनावश्यक होता।''[१] अनुभववादी दृष्टिकोण समाज में मौजूद पीड़ा, गुलामी, मूल्यों के परस्पर विरोध, विचारधाराओं की टकराहट और वर्गों के संघर्ष में तटस्थता की वकालत करता है। उपर्युक्त विवेचन-विश्लेषण के आलोक में निम्नलिखित तीन बिन्दुओं पर हम विचार करेंगे- विधेयवाद, आलोचनात्मक समाजशास्त्र, संरचनावाद।

१.१.९ विधेयवाद

---

१ मैनेजर पाण्डेय, *साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका,* पृ. ३३.

१८ वीं शती के प्रथम चरण में साहित्य, दर्शन, कला और अन्य क्षेत्रों में जो आलोचना-दृष्टि अपनायी गयी और जो आलोचना-सिद्धांत रूपायित किये गए, वे सरासर प्राकृतिक विज्ञानों के कारण-कार्य सिद्धांत के अनुसार निर्मित थे। एक नयी आलोचना दृष्टि थी 'विधेयवाद' (Positivism) । साहित्य के समाजशास्त्र का व्यवस्थित रूपायन फ्रेंच समीक्षक इप्पोलाइत तेन ने उन्नीसवीं शती में प्रथमार्द्ध में किया। तेन से पूर्व जोहान गाटफ्रेड हर्डर (सन् १७४४-१८०३) और मेडम दि स्टैले (सन् १७६६-१८१७) ने इस क्षेत्र में कार्य किया था। साहित्य के समाजशास्त्रीय आधार के निर्माण में, प्रथम महिला आलोचक है मेडम दि स्टैले उनकी पुस्तक है 'डि.ला.लिटरेचर'। विधेयवाद को प्रत्ययवाद भी कहते हैं अर्थात जिसके लिए प्रत्यक्ष प्रमाण व साक्ष्य की जरूरत हो, जैसे कि प्राकृतिक विज्ञान। अर्थात् सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में किसी मुद्दे पर बातचीत करते समय प्रकृति विज्ञानों के सूत्रों का उपयोग किया जाना विधेयवादी पद्धति है। इत्पोलाइत तेन ने साहित्य के समाजशास्त्र का व्यवस्थित स्वरूप-निर्माण किया। अपने साहित्यिक इतिहास 'स्टडी ऑफ इंगलिश लिटरेचर' में साहित्य को सामाजिक और भौगोलिक परिस्थितियों से जोड़ने के लिए प्रजाति (रेस), परिवेश (मिल्यू) और युग (मोमण्ट) का त्रिक-सिद्धांत दिया। वे 'प्रजाति' के अन्तर्गत व्यक्ति की सहज तथा वंशानुगत, मानसिक बनावट और शारीरिक संरचना आदि की चर्चा करते हैं। उन्होंने आर्यों का उदाहरण देते हुए लिखा है कि -''एक प्रजाति यद्यपि देश-काल की दृष्टि से दूर-दूर तक फैल जाती है, फिर भी उसमें कुछ समान विशेषताएँ मिलती हैं। फांतेन पर अपने निबंध में उन्होंने लिखा है कि किसी प्रजाति की चरित्रगत विशेषताएँ जलवायु, मिट्टी और इतीहास की महान घटनाओं की उपज होती है।.... १७ वीं सदी के फ्रांस में फांतेन, पुनर्जागरण कालीन इंग्लैंड में शेक्सपीयर और हमारे समय के जर्मनी में गेटे इसी प्रक्रिया की देन हैं।''[१] परिवेश से तेन का आशय मुख्यतः प्राकृतिक परिवेश से है। लेकिन उसके अन्तर्गत

---

१ मैनेजर पाण्डेय, *साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका*, पृ. १२४.

वे सामाजिक परिवेश को भी शामिल करते हैं। उन्होंने लिखा है कि - ''दुनिया में मनुष्य अकेला नहीं होता, उसके चारों ओर प्रकृति होती है, समाज होता है। उसकी आदिम प्रवृत्तियाँ तथा प्रजातिगत विशेषताएँ भौतिक-सामाजिक परिस्थितियों, घटनाओं आदि से प्रभावित होती हैं, कभी पुष्ट होती हैं कभी बदलती हैं।''[१] इस प्रकार वे मानव स्वभाव और प्रकृति परिवेश के बीच कार्य-कारण संबंध बिठाने की कोशिश करते हैं और इसके आधार पर साहित्य की विशेषताओं की व्याख्या करते हैं। उदाहरणस्वरूप यूनान तथा रोम के विशिष्ट प्राकृतिक परिवेश से वहाँ के निवासियों का स्वभाव बना है और उसकी अभिव्यक्ति उनकी संस्कृति, कला तथा साहित्य में हुई है। तेन के अनुसार एक युग में कुछ प्रधान विचार होते हैं। उनका एक बौद्धिक सांचा होता है जो पूरे समाज के चिंतन को प्रभावित करता है। ''युग के प्रधान विचार का प्रसार जीवन के सभी क्षेत्रों में होता है, व्यवहार में, चितंन में। एक लंबे समय के बाद ऐसे विचार का धीरे-धीरे ह्रास होता है और कोई नया विचार विकसित होकर प्रधान विचार बन जाता है। यह दूसरा विचार पहले से जुड़ा होता है। साथ ही वह राष्ट्रीय प्रतिभा और समकालीन परिवेश से जुड़कर नये प्रकार के चिंतन और सृजन को प्रेरणा देता है।''[२] उदाहरण के लिए - मध्यकालीन यूरोप में वीर और पुजारी तथा आधुनिक काल में दरबारी और वाकपटु। इस प्रकार भौगोलिक कारणों के साथ मानवीय स्वभाव और रचनात्मकता का यह कार्य-कारण-संबंध तेन के ही नहीं समूचे विधेयवादी दृष्टिकोण की सीमा को स्पष्ट करता है। तेन ने श्रेष्ठ रचनाओं को उदाहरण रूप में चुनकर उनका विश्लेषण किया, आगे चलकर इसी का पालन लुकाच और गोल्डमान ने किया।

१.१.१० आलोचनात्मक समाजशास्त्र

---

१ मैनेजर पाण्डेय, *साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका*,, पृ. ९२६

२ वही, पृ. १२४.

साहित्य के समाजशास्त्र के विकास में आलोचनात्मक समाजशास्त्रियों का महत्वपूर्ण योगदान है। फ्रैंकफुर्त समुदाय के समाजशास्त्रीय चिंतन को ही आलोचनात्मक समाजशास्त्र कहा जाता है। जर्मनी के फ्रैंकफुर्त विश्वविद्यालय में १९२३ में एक सामाजिक शोध संस्थान की स्थापना हुई थी, उसी से जुड़े हुए विचारकों के समाजशास्त्रीय चिंतन से आलोचनात्मक समाजशास्त्र का विकास हुआ।

पूँजीवादी समाजव्यवस्था में मनुष्य की दशा और उसकी चेतना को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों पर विचार ही आलोचनात्मक समाजशास्त्र का मुख्य उद्देश्य था। इसके लिए उसमें विचारधारा और उसकी अभिव्यक्ति के विभिन्न रूपों का गंभीर विश्लेषण हुआ। आलोचनात्मक समाजशास्त्रियों की मुख्य देन है संस्कृति के समाजशास्त्र का विकास। यह काम मुख्य रूप से अडोर्ने, हवर्ट मार्कुस और लियोलावेंथल ने किया। परंतु इस समुदाय में केवल लावेंथल ने ही सचेत और व्यवस्थित रूप में साहित्य के समाजशास्त्र का विकास किया। उन्होंने निरंतर साहित्य के समाजशास्त्र की सैद्धांतिक समस्याओं को सुलझाने और व्यावहारिक विवेचन में समाजशास्त्रीय दृष्टि को विकसित करने का प्रयास किया। लावेंथल के लेखन का लक्ष्य है साहित्य की सामाजिकता का विश्लेषण। लेकिन वे सामाजिकता की खोज साहित्य के विशिष्ट स्वरूप की पहचान के साथ करते हैं। उन्होंने लिखा है कि - ''समाज से साहित्य के संबंध की खोज के लिए सामूहिक चेतना और व्यक्ति चेतना के बीच संबंधों की समझ जरूरी है। ऐसी समझ मनोविज्ञान से मिलती है, इसलिए मनोविज्ञान साहित्य का सहायक हैं ।''[१] आलोचनात्मक समाजशास्त्र के अनुसार - ''विचारधारा अनिवार्यतः छद्म सामाजिक चेतना या सामाजिक दृष्टि से अनिवार्य भ्रम है।''[२] लावेंथल विचारधारा का यही अर्थ मानते हैं और इसे अपने साहित्य विश्लेषण में लागू करते हैं। वे लिखते हैं कि - ''विचारधारा सामाजिक यथार्थ

---

१ मैनेजर पाण्डेय, *साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका*, पृ. १३५.

२ वहीं, पृ. १३६

को रहस्य के आवरण में ढकती है, उसको रूपांतरित करती है, जिससे पूंजीवादी समाज के अन्तर्विरोधों को समझना कठिन हो जाता है।....विचारधारा की मीमांसा का लक्ष्य है सामाजिक अंतर्विरोधों और वास्तविकताओं पर पड़े रहस्य के परदों को हटाकर उनके यथार्थ रूप को सामने लाना और रचना में व्यक्त सामाजिक चेतना के वास्तविक रूप की पहचान कराना।''[१] साहित्य के समाजशास्त्र के अध्ययन में 'रूप' और 'अंर्तवस्तु' का संबंध महत्वपूर्ण है। लावेंथल अंर्तवस्तु का ही अधिक विश्लेषण करते हैं, लेकिन रूप की भी उपेक्षा नहीं करते। साहित्य के पाठकीय अभिग्रहण के संबंध में अन्य समाजशास्त्रियों की तुलना में उनका अध्ययन अधिक गंभीर और व्यवस्थित है। इसकेलिए उन्होंने दास्तोवस्की और हमसून की रचनाओं के पाठकों पर विचारधारात्मक प्रभाव का विस्तार से विश्लेषण किया है। इस पद्धति से रूढ़िवादी और प्रगतिशील रचनाओं का अंतर स्पष्ट किया जा सकता है। लावेंथल लोकप्रिय साहित्य को आधुनिक समाज में मनुष्य की चेतना और सामाजिक मूल्यव्यवस्था को जानने का तक महत्वपूर्ण स्रोत समझते हैं और उसके अंर्तगत सस्ते जीवनियाँ, समाचार-पत्र, पारिवारिक पत्रिकाएं और पुस्तक-समीक्षाओं का अध्ययन करते हैं। उनके यहाँ लोकप्रिय संस्कृति मुख्य रूप से लोकप्रिय साहित्य तक सीमित है। उनके अनुसार - ''लोकप्रिय संस्कृति की वस्तुपरक स्थिति का तथ्यात्मक ज्ञान जरूरी है जो अनुभववादी पद्धति से प्राप्त किया जा सकता है। लेकिन उसके मूल्यांकन केलिए नैतिक और सौन्दर्य-बोधीय दृष्टि भी आवश्यक है।''[२] इसके साथ वे ऐतिहासिक संदर्भ को भी आवश्यक मानते हैं।

कोई भी विचारधारा अपने आप में पूर्ण नहीं होती। सभी में कुछ कमियाँ अवश्य रह जाती हैं। इसी संदर्भ में एलेनस्विंगवुड ने लिखा है कि - ''फ्रैंकफुर्त समुदाय के समाजशास्त्रियों ने भीड़ को एक सर्वव्यापी मिथक बना दिया, और उसके आधार पर

---

१ नमैनेजर पाण्डेय, *साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका*, पृ. १३६-१३७.

२ वही, पृ. १४२.

समाज, संस्कृति, कला और मनुष्य की दिशा की व्याख्या कर दी।''[१] तथापि-''तेन के बाद और गोल्डमान से पहले के काल में लावेंथल सर्वाधिक महत्वपूर्ण साहित्य के समाजशास्त्री है। उनके चिंतन की एक बड़ी विशेषता है कि उसमें साहित्य के इतिहास और समाजशास्त्र की वह एक एकता है जो तेन के यहाँ भी मिलती। ''पूंजीवादी उपभोक्ता समाज में संस्कृति और कला की दुर्गति को पहचानने में आज भी उनकी दृष्टि दिशा दे सकती है।''[२]

१.१.११ संरचनावाद

संरचनावाद का अध्ययन हम दो स्तरों पर कर सकते हैं। एक, लुसिए गोल्डमान का 'उत्पत्तिमूलक संरचनावाद' और दूसरा है रेमण्ड विलियम्स का 'अनुभूति की संरचनाएँ'। बीसवीं सदी के समाजशास्त्रियों में लुसिए गोल्डमान (१९१३-७१) का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है। साहित्य के समाजशास्त्री के रूप में उनको विशेष ख्याति फ्रांसीसी भाषा में प्रकाशित मुख्यतः दो कृतियों से मिली : 'अव्यक्त ईश्वर' (१९५६) और 'उपन्यास के समाजशास्त्र की एक दिशा' (१९६४)। गोल्डमान की मान्यताओं के तीन स्रोत हैं - जार्ज लुकाच का आरंभिक चिंतन, पिजे का मनोविज्ञान और संरचनावाद। लुकाच के चिंतन से समग्रता, विश्वदृष्टि, रूप, पराव्यैक्तिक चेतना, संभावित चेतना और वस्तुपरक संभावना आदि धारणाएँ ली। पिजे के चिंतन से उन्होंने संरचना, प्रकार्य, संरचनाओं के विकास और ह्रास की प्रक्रिया, चेतना और वस्तु के बीच संबंध तथा संतुलन आदि धारणाओं को अपनाया। उनकी समानधर्मिता की धारणाओं पर संरचनावाद का प्रभाव है। इन सब विशेषताओं को समेटते हुए उनकी पद्धति 'उत्पत्तिमूलक संरचनावाद' कहलायी। उनकी पद्धति जितनी नयी है उतनी जटिल भी है। गोल्डमान साहित्य के समाजशास्त्र के इतिहास में साहित्य और समाज के संबंध की खोज में कृति में व्यक्त चेतना के सामाजिक

---

१ वही पृ. १४३

२ मैनेजर पाण्डेय, *साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका*, पृ. १४४

उद्‌गम की खोज करते हैं। इसके लिए वे कृति की विश्वदृष्टि और वर्ग की विश्वदृष्टि की संरचनाओं के बीच समानधर्मिता को ढूँढते हैं। जिनमें उनकी 'उत्पत्तिमूलक संरचनावाद' पद्धति उपयोगी सिद्ध होती है। विश्वदृष्टि की धारणा गोल्डमान के साहित्य के समाजशास्त्र की बुनियाद है। गोल्डमान के अनुसार - ''किसी वर्ग की विश्वदृष्टि की संरचनाओं से कृति के भीतर रचित संसार की संरचनाओं की समानधर्मिता होती हैं । समाजशास्त्री उसी समानधर्मिता की खोज करता है।''[१] वे यह भी मानते हैं कि परस्पर भिन्न अन्तर्वस्तु वाली रचनाओं में भी चेतना की संरचना के स्तर पर समानधर्मिता हो सकती है। रेमण्ड विलियम्स के लेखन में समाज से संस्कृति के जीवंत और सर्जनात्मक संबंध की व्याख्या में मदद करने वाली केन्द्रीय धारणा है 'अनुभूति की संरचना।' १९५४ के अपने एक लेख 'प्रिफेस टु फिल्म एण्ड ड्रामेटिक ट्रेडिशंस' में पहली बार उन्होंने इस धारणा को रखा था। उन्होंने लिखा था - ''हम एक काल के अध्ययन में उस काल के भौतिक जीवन, सामाजिक संगठन और एक सीमा तक प्रधान विचारों को भी कमोबेश सही ढंग से पुनर्निर्मित कर सकते हैं। इन तत्वों से निर्मित समग्रता के किसी एक हिस्सा किसी कलाकृति को जोड़कर देखना उपयोगी हो सकता है। लेकिन अनुभव यही बताता है कि विश्लेषण के दौरान इस समग्रता के सभी तत्वों से कला का संबंध खोज लेने पर भी उसमें ऐसा कुछ बच जाता है जिसका बाहर की किसी चीज से संबंध जोड़ पाना मुश्किल होता है। उसी को मैं एक काल की अनुभूति की संरचना कहता हूँ जिसे किसी कलाकृति को समग्रता में अनुभव करके जी जाना जा सकता है।''[२] यहाँ अनुभूति की संरचना के सहारे वे काल विशेष की जानी-पहचानी विचारधारा से वास्तविक जीवन के अनुभवों में उस विचारधारा की परिणतियों को अलग करना चाहते हैं। रमेण्ड विलियम्स अनुभूति की संरचना के सहारे रचना के वैयक्तिक जीवंत और आत्मपरक पक्षों की ओर संकेत

---

१ मैनेजर पाण्डेय, *साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका*, पृ. १५०.

२ वही, पृ. १७९.

करता है। यहाँ यह प्रसंग महत्वपूर्ण है कि किसी रचना में अनुभव और अनुभूति के स्तर पर ही वैयक्तिकता अधिक प्रकट होती है, विचार के स्तर पर नहीं। इसलिए वे विचार से अधिक अनुभूति की बात करते हैं। मार्क्सवादी आलोचना में रचना के आत्मपरक और वैयक्तिक पक्षों की उपेक्षा की प्रवृत्ति की भी उन्होंने आलोचना की है। उन्होंने लिखा है कि-"जब विश्वदृष्टि, विचारधारा अथवा वर्ग दृष्टि की बात की जाती है तब रचना के जीवंत अनुभव पक्ष की उपेक्षा हो जाती है। कहीं-कहीं रचना में सचेत विचारधारा और नये अनुभवों के बीच तनाव भी मिला है। अनुभूति की संरचना के सहारे इस तनाव की व्याख्या की जा सकती है।"[१] इस तरह साहित्य के समाजशास्त्र की धाराओं को सामने रखते हुए साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन किया जाता है। आगे हम उत्तर-आधुनिकता पर विस्तार से विश्लेषण करने की कोशिश करेंगे।

१.१.१२ उत्तर आधुनिकता और उत्तर संरचनावाद

उत्तर आधुनिकता का प्रवेश यूरोप-अमेरिका में हुआ था। इस शब्द का प्रयोग पहली बार अरनाल्ड टोयन्बी ने किया था। १९७९ में ल्योतार ने अपनी पुस्तक 'दि पोस्ट मोडर्न कन्डीशन' में सबसे पहली बार इस अवधारण को सामने रखा। ल्योतार, फूको, दरिदा, बोड्रिलार्ड और जेमेसन मुख्य उत्तर आधुनिकतावादी विचारक हैं। महिलाओं में नेन्सी फ्रेसर, और लिंडा निकोलसन का नाम मशहूर है। उत्तरआधुनिकता वाद आधुनिकता के भीतर से फूट-फूट पडी एक अवस्था है। उत्तर आधुनिकतावाद इस तथ्य पर ज़ोर देता है कि एक समूह दूसरे समूहों से अपनी-अपनी संस्कृति-सामाजिक संरचनाओं में भिन्न होता है। ये केन्द्रीय वर्चस्ववाद के बदले स्थानीयता तथा उसकी भिन्नताओं पर बल देता है। उत्तर आधुनिकतावाद किसी शास्वत मूल्यांकन के प्रतिमान को स्वीकार नहीं करता। ये अभिजात्यवादी साजिश को तोड़ना चाहता है। इसलिए वह

---

१ मैनेजर पाण्डेय, *साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका*, पृ. ९७१.

इस उपेक्षित दमित साहित्य का एक सौंदर्यशास्त्र, समाजशास्त्र, काव्यशास्त्र निर्मित करना चाहता है। उत्तर आधुनिकतावाद में साहित्यिक-चिन्तन की कई नई वैचारिक पद्धतियाँ, प्रविधियाँ, शैलियाँ विकसित की है इन वैचारिक पद्धतियों में सांस्कृतिक अध्ययन क्षेत्र, नव इतिहासवाद, नव मिथकवाद, सबालर्न स्टडी (अधीनस्थों का अध्ययन), नारीवाद, अश्वेत पीड़ा का अध्ययन, दलित-दमित साहित्य का अध्ययन आदि को जगह मिली है। उत्तरआधुनिकता का कोई एक परिभाषा नहीं दे सकता। यह एक आन्दोलन है, जिसे दर्शनशास्त्र, कला, वास्तुकला, साहित्य, कविता, नृत्य, नाटक, फिल्म आदि में देखा जा सकता है। उत्तर आधुनिकता के अर्थ को जिम मेक्गुगन इस प्रकार व्यक्त करता है "उत्तर आधुनिकता एक सांस्कृतिक और ज्ञान-मीमांसा की दशा है जिसके परिणामस्वरूप आधुनिक सामाजिक संस्थाएँ दब जाती है। और भूमण्डलीय समाज की दिशा की ओर ले जाने वाले एक युगान्तर आता है।"[१] रिचार्ड गोट का राय है "उत्तरआधुनिकता आधुनिकता से मुक्ति दिलाने वाला एक स्वरूप है। यह एक विखण्डित आन्दोलन है जिसमें सैकडों फूल खिल सकते हैं। उत्तरआधुनिक में बहु संस्कृतियों का निवास हो सकता है।"[२] इन अर्थों से यह व्यक्त होता है कि उत्तरवादियों के अनुसार सभी समूहों को बोलने का अधिकार है। ये सभी महा आख्यानों को अस्वीकार करते हैं। अनेकरूपता और अंतंरों को प्रमुखता देती है। उत्तर आधुनिकता की प्रमुख विशेषता मानव संसार की अजेय बहुलता है। उत्तरआधुनिकता के केन्द्र में उपेक्षित महिला, हाशिये तथा अश्वेत लोगा आदि वर्ग माने जाते हैं। हमारे देश में इतिहासकारों ने जिसे अछूता नहीं या मुख्य धारा से हटाया था, वही आज उत्तरआधुनिकता का केन्द्रीय विषय है। साथ में संस्कृति को भी प्रधानता देती है। यथार्थता की खोज है संरचनावाद, बाहरी तौर पर हमें दिखाई देता है वह यथार्थता नहीं है, गहराई में जो छिपा है, वही संरचना है। पाश्चात्य ब्रिटीश

---

१ एस. एल. दोषी, *आधुनिकता उत्तर आधुनिकता एवं नव समाजशास्त्रीय सिद्धान्त*. पृ. १५३.

२ वहीं

समाजशास्त्री गिडेन्स ने अपनी पुस्तक 'दि कोन्स्टीट्यूशन ऑफ सोसाईटी, १९८४ में संरचनाकरण के सिद्धान्त को प्रस्तुत किया है। उनका कहना है- "यह एक गंभीर भूल है कि हम समाज को समझने के लिए या तो व्यक्ति को आधार बनाते हैं या संरचना को। इसके बजाय हमें व्यक्ति और संरचना दोनों को अपनाना चाहिए। द्विवीधा (Duality) समाज का सही विश्लेषण है"[१]। संरचनावाद के विश्लेषण में दो धाराएँ हैं, एक मानवशास्त्रीय संरचनावाद, दूसरा संरचनात्मक मार्क्सवाद। इन दो धाराओं से उत्तर-आधुनिक संरचनावाद का अविर्भाव हुआ। ऐसा माना जाता है कि उत्तर संरचनावाद के जनक दरिदा से १९६६ में इसका प्रारंभ हुआ। उत्तर आधुनिकता को स्वर देनेवाले विचारकों एवं समाजशास्त्रीयों में प्रमुख हैं दरिदा और मिशल फूको। दरिदा विखण्डन को तथा फूको ज्ञान और शक्ति के संबन्धों को संरचनात्मक संबन्ध मानते हैं । आगे हम इन्हीं विचारकों के विचार का विश्लेषण करेंगे।

अंग्रेज़ी में जिसे 'डिकंस्ट्रक्शन' कहा जाता है, उसे हिन्दी में 'विखण्डन' कहा है। विखण्डन की यह विशेषता है कि वह किसी भी टैक्स्ट या पाठ में मौजूद अर्थ को सत्य या पूरा नहीं मानता। ये विखण्डन सार्थक संरचनाओं, संस्थानिक संरचनाओं, शिक्षणात्मक या अलंकारशास्त्रीय नियमों, कानून, सत्ता और उनके बाज़ार की प्रतिनिधित्व से संबन्धित है। विखण्डन की व्याख्या करते हुए दरिदा कहते हैं- "विखण्डन का मतलब होता है मूल पाठ को उसके निर्देश, संकेत, अनिश्चितता आदि के सन्दर्भ में पढ़ना। ऐसा करते हुए यह देखना कि इनमें कौन से अर्थ स्पष्ट है और कौन से अस्पष्ट। अस्पष्ट अर्थ को निकालना और तर्क की कसौटी पर खरा नहीं उतरने पर उसे अस्वीकार करना ही विखण्डन है"[२]। विखण्डन की अवधारण का सीधा संबन्ध भाषा से है। दरिदा कहते हैं- "मनुष्य को चेतना के लिए माध्यम की आवश्यकता होती है। यह आवश्यकता भाषा के

---

१ एस. एल. दोषी, *आधुनिकता उत्तर आधुनिकता एवं नव समाजशास्त्रीय सिद्धान्त,* पृ. ४११.

२ वही, पृ. २९६.

आइने से पूरी की जाती है''[१]। वे भाषा में वाणी को पहला स्थान देते हैं बाद में लेखन को। कुलमिलाकर कहा सकते हैं कि मनुष्य के स्व की पहचान समाज से होती है। जैसे समाज होता है वैसे 'स्व' की चेतना आती है। फूको ने ज्ञान एवं शक्ति में पूर्ण तादाम्य देखा है, वे व्यक्ति की स्वतन्त्रता के पक्षधर थे। फूको की सबसे बड़ी उपलब्धि उन्होंने जिन सिद्धान्तों को रखा है, वो लोगों के विचारों में क्रान्ति ला दी है । फूको का कहना है कि ''सत्य शक्ति की परिधि से बाहर नहीं है। हर समाज में सत्य की अपनी एक व्यवस्था है, अपनी एक सामान्य नीति है''[२]। फूको के चिन्तन की एक विशेषता है कि किसी भी किस्म के सार्वभौमिक विमर्शों को शक की नज़र से देखता है। दूसरी विशेषता यह है कि वह एक साथ सामाजिक- ऐतिहासिक है, फिर भी इतिहासवाद के विपरीत है। वे मनुष्य प्रकृति को हर बार नये ढंग से देखने में यकीन करता है, इसलिए वे तर्क की बहुलता में विश्वास करते हैं। 'आरक्योलोजी आफ नोलेज' नामक किताब में उन्होंने यह स्पष्टता से बताया है कि हमारे विश्वास, धारणाओं और मान्यताओं में जो अदृश्य है उसे अतीत में खोजकर दृश्य बनाना है। सामाजिक नियन्त्रण के क्षेत्र में शक्ति, ज्ञान और विमर्श की बहुत बड़ी भूमिका है और इसी पर उत्तर-आधुनिक समाज का निर्माण किया जाता है। इस तरह फूको की सभी कृतियों में एक त्रिकोण देखाई देता है। वे है, ज्ञान (knowledge) शक्ति (power) और व्यक्ति (Subject) ।

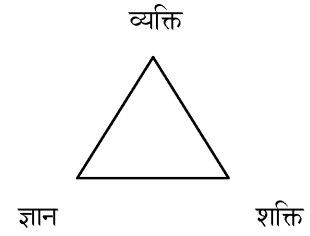

''ज्ञान और आदमी दोनों में एक ऐसी प्रक्रिया चलती है जिसमें ज्ञान व्यक्ति को समृद्ध करता है और व्यक्ति ज्ञान के भण्डार को और आगे बढाता है। इसका मतलब है

---

१ वहीं

२ देव शंकर नवीन (सं), सुशांत कुमार मिश्र, *उत्तर आधुनिकता कुछ विचार* पृ. ४६.

कि व्यक्ति को ज्ञान से लाभ होता है और फिर अपने स्तर पर वह नये ज्ञान का उत्पादन करता है। ज्ञान से ज्ञान पैदा होता है और यह ज्ञान पैदा करने वाला व्यक्ति ही है। इस तरह ज्ञान की प्रक्रिया में व्यक्ति ज्ञान-प्राप्त भी करता है, और पैदा भी करता है। अब फूको व्यक्ति और ज्ञान के इस पारस्परिक संबंध को आगे बढाते हैं। ज्ञान सामाजिक क्षेत्र में आता है। यानी ज्ञान को परिवार, वर्ग, जाति और समुदाय प्राप्त करते हैं और ज्ञान इन्हीं सामाजिक समूहों द्वारा पेश किया जाता है। शक्ति और ज्ञान वस्तुतः एक दूसरे से जुडे हैं, इन्हें कदापि पृथक नहीं किया जा सकता। शक्ति है तो ज्ञान होगा, ज्ञान है तो शक्ति होगी''[१]। अतः हम कह सकते हैं कि व्यक्ति की परिभाषा ऐसे ज्ञान और शक्ति के मेल से होती है जो इतिहास के मोड़ पर हमेशा नया है।

१.१.१३. निष्कर्ष

साहित्य समाज का रचयिता है तथा समाज साहित्य को प्रतिबिम्बित तथा परिभाषित करता है । समाज के परिवर्तन के साथ साहित्य और साहित्य के परिवर्तन के साथ समाजशास्त्रीय दृष्टियों में भी परिवर्तन आजाना स्वाभाविक है। समाज से साहित्य के संबंध की व्याख्या करना साहित्य के समाजशास्त्र का मुख्य उद्देश्य है। साहित्य के समाजशास्त्र को समाजशास्त्री समाजशास्त्र की एक शाखा मानते हैं। तो साहित्य-चिन्तक उसे स्वतन्त्र साहित्य विधा मानते हैं। अब साहित्य का समाजशास्त्र समाजशास्त्र से स्वतंत्र एक साहित्य विधा के रूप में विकसित हो रहा है। साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन के अंतर्गत, साहित्य, समाज एवं समाजशास्त्र के अर्थ और परिभाषा, सामाजिक संरचना, सामाजिक परिवर्तन, समाजशास्त्र की धाराएँ एवं पद्धतियाँ आदि का अध्ययन किया जाता है। समाजशास्त्र सिर्फ साहित्य से ही नहीं अन्य शास्त्रों से भी संबन्ध रखते हैं । समाज

---

१ एस. एल. दोषी, *आधुनिकता उत्तर आधुनिकता एवं नव-समाजशास्त्रीय सिद्धान्त*, पृ. २६९

का खण्ड-खण्ड परीक्षण करके उसकी असलियत को समाजशास्त्रीय अध्ययन से सामने ला सकता है।

संरचनावाद के विश्लेषण में दो धाराएँ हैं, एक मानवशास्त्रीय संरचनावाद दूसरा संरचनात्मक मार्क्सवाद। उल्लेखनीय बात यह है कि इन दो धाराओं से उत्तर आधुनिक संरचनावाद का आविर्भाव हुआ। उत्तर आधुनिक संदर्भ में बहु-संस्कृतियों का निवास रहता है और सभी समूहों को बोलने का अधिकार मिलता है। अतः उत्तरआधुनिकता की सबसे बड़ी विशेषता मानव संसार की अजय बहुलता है। उसके केंद्र में दलित, महिला, हाशिएकृत तथा अश्वेत लोग रहते हैं। दरिदा, फूको जैसे विचारकों ने 'विघटन' 'ज्ञान' और 'शक्ति' के संबन्धों को संरचनात्मक संबन्ध मानता है। इसलिए ज्ञान को परिवार, वर्ग, जाति और समुदाय प्राप्त करते हैं और ज्ञान इन्हीं सामाजिक समूहों द्वारा पेश किए जाते हैं।

समाजशास्त्रीय अध्ययन ही वह एक मात्र रास्ता है, जिससे साहित्य एवं समाज की वास्तविकता की जानकारी मिल सकती है। इसलिए हम कह सकते हैं कि किसी भी रचना के समाजशास्त्रीय अध्ययन का महत्व है। प्रत्येक साहित्यिक विधा के स्वरूप के अनुरूप ही समाजशास्त्रीय अध्ययन किया जाता है। भारतीय समाज और संस्कृति के इतिहास में दलितों और स्त्रियों की स्थिति का विश्लेषण करते हुए, भारतीय साहित्य में उनकी उपस्थिति और अनुपस्थिति के कारणों को खोजने-परखने में साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन की आवश्यकता है। प्रस्तुत अध्ययन में साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन का नये आयाम पर विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है।

दूसरा अध्याय

दलित कविता : भावभूमि और विचारभूमि

दलित कविता : भावभूमि और विचारभूमि

दलित कविता क्या है? कब से शुरु हुआ है? दलित कविता की परिभाषा क्या है? दलित कौन है? दलित साहित्य क्या है? आदि प्रश्नों को लेकर विद्वानों में मत भेद हैं। मत भेद होते हुए भी दलित कविता की अलग पहचान और अस्तित्व को बहुत विद्वान मानते हैं, वस्तु एवं शिल्प की दृष्टि से, भाव एवं विचार की दृष्टि से।

२.१ दलित कविता क्या है?

दलित कविता वह कविता है जो दलितों के जीवन संघर्ष की सच्चाई को व्यक्त करती है साथ में वर्ण, वर्ग, जाति विहीन समता मूलक समाज की स्थापना करना चाहती है। भारतीय समाज व्यवस्था में दलितों की स्थिति, अस्मिता, मुख्यधारा से इसका मेल और पहचान आदि चेतना की अभिव्यक्ति को दलित कविता के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। यह मुख्यधारा के समान्तर कविता है। दलित कविता की भावभूमि और विचारभूमि को सही ढंग से पहचानने के लिए दलित शब्द के अर्थ को परिभाषित करना संगत लगता है, विशेषकर आधुनिक सन्दर्भ में।

२.१.१ दलित शब्द : अर्थ एवं परिभाषा

दलित शब्द व्यापक अर्थबोध की अभिव्यंजना देती है। दलित विशेष तौर पर सामाजिक विषमता का शिकार है। दलित शब्द उस व्यक्ति के लिए प्रयोग होता है जो समाज-व्यवस्था के तहत सबसे निचली पायदान पर है। वर्ण-व्यवस्था ने उसे अछूत या अन्त्यज की श्रेणी में रखा। दलित शब्द के अन्तर्गत कुचले गए, दबाए गए लोगों के जीवन की कहानी उतनी ही पुरानी है जितनी भारतीय हिन्दू संस्कृति की। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों पर आधारित चातुर्वर्ण्य व्यवस्था ऋग्वैदिक काल से लेकर अद्यतन जातियों की श्रेष्ठता क्रम में विद्यमान है। वेदों, स्मृतियों, पुराणों में व्यक्त जीवन

पद्धति वर्णव्यवस्था पर टिकी हुई है। लगभग २००ई पू. से २००ई सन के बीच शूद्रों की स्थिति का ज्ञान मनु के विधि ग्रंथ 'मनुस्मृति' से प्राप्त होता है। मनु ने अपने ग्रंथ में शूद्रों के प्रति घोर अमानवीयता का परिचय दिया है। मनुस्मृति के अष्टमोध्याय में इसका उदाहरण मिलते हैं-

''शतं ब्राह्मणकाक्रुश्य क्षत्रियो दण्डमर्हति।
वैश्येf प्यर्धशतं द्वे वा शूद्रस्तु वधमर्हति''[१]।। (२६७)

अर्थातः ब्राह्मण को गाली देने पर क्षत्रिय पर सौ पणों का और वैश्य पर डेढ़ सौ पणों का दण्ड लगाना चाहिए। शूद्र को तो प्राणदण्ड ही देना चाहिए।

धर्मोंपदेशं दर्पण विप्राणामस्य कुर्वतः।
तत्तमासेचयेत्तैलं वक्रे श्रोत्रे च पार्थिवः''[२]।। (२७१)

अर्थातः शूद्र द्वारा अहंकारवश ब्राह्मणों को धर्मोपदेश देने का दुस्साहस करने पर राजा को उसके मुँह और कान में गरम तेल डलवा देना चाहिए।

भारत में लगभग पचास-साठ साल से 'दलित' शब्द का प्रयोग हो रहा है। दलित शब्द आधुनिक है पर'दलितप्पन' प्राचीन है। विभिन्न समय पर डिप्रेस्ड क्लासेज़, अस्पृश्य, शूद्र, अन्त्यज दलित आदि शब्दों का प्रयोग किया गया, लेकिन ये सभी शब्द दलित शब्द के ही पर्याय है। 'दलित' शब्द किसी जाति या वर्ण का परिचायक नहीं, अपितु इसका अर्थ है पीड़ित, शोषित, वंचित या उपेक्षित मनुष्य। महाराष्ट्र प्रान्त के औरंगबाद में २४ से २७ फरवरी, १९८४ ई. को पहला अखिल भारतीय दलित नाट्य सम्मेलन हुआ, जिसके अध्यक्ष पद में बोलते हुए प्रसिद्ध दलित नाटककार श्री.भि. शिन्दे

---

१ डॉ. रामचन्द्र वर्मा शास्त्री (टीकाकार), *मनुस्मृति,* पृ. ३११.

२ वहीं, पृ. ३१२.

ने 'दलित' शब्द की व्याख्या करते हुए कहा था वह उल्लेखनीय है। दलित के अन्तर्गत ''भारतीय समाज का वह भाग जिसे अस्पृश्य या अछूत समझा जाता है, बहुत ही कम वेतन या मज़दूरी में जो चौबीसों घण्टे खेतों में श्रम करने के लिए मज़दूर हैं और शोषित है, दुर्गम पहाड़ों, जनों, जंगलों में जीने के लिए मज़बूर जन-जातियाँ, आदिवासी समाज, पूँजीवादी व्यवस्था के कारण आर्थिक दृष्टि से जो दुर्बल है वह बहुजन समाज, राष्ट्रीय कहकर जिन्हें हमने नकारा है, वह अल्पसंख्यक (मुस्लिम, ईसाई) समाज।''[१]

''दलित- शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की 'दल' धातु से हुई है। जिसका अर्थ तोड़ना, हिस्से करना, कुचलना है। इसके विभिन्न अर्थ है- दलित-दल-त, टूटा हुआ, कटा हुआ, पिसा हुआ, खुला हुआ, फैला हुआ है।''[२] आजकल दलित वर्ग का प्रयोग, हिन्दू समाज व्यवस्था के अन्तर्गत परम्परागत रूप से शूद्र मानी जाने वाली जातियों के लिए रूढ़ हो गया है। सबसे पहले श्रीमती एनीबेसेण्ट ने इस वर्ग के लिए 'डिप्रेस्ड कास्ट' शब्द का प्रयोग किया। बाद में स्वामी विवेकानन्द और रानाडे ने इनकेलिए 'दलित' शब्द का प्रयोग किया। महात्मा गांधीजी ने इनके लिए 'हरिजन' शब्द का प्रयोग किया, जिसे आज निषिद्ध कर दिया गया है। भारतीय संविधान में इस वर्ग को अनुसूचित कहा गया है। डॉ. बाबा अम्बेडकर ने अंग्रेज़ी में डिप्रेस्ड व मराठी में 'बहिष्कृत' तथा 'अस्पृश्य' शब्द जिन लोगों या जिन जातियों के लिए इस्तेमाल किये, मराठी व हिन्दी साहित्य में उन्हें 'दलित' कहा जाता है। इस दायरे में व्यावहारिक रूप से यही लोग अधिक आते हैं जिन्हें, भारतीय संविधान में अनुसूचित जाति का दर्जा दिया गया है।

---

१ डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, *दलित साहित्य रचना और विचार*- पृ.८४ (से उद्धृत)

२ डॉ. भरतद्वाज, *संस्कृत- अंग्रेज़ी- हिन्दी शब्दकोश*, पृ. १२६.

'दलित' शब्द कोशकारों की दृष्टि में

विभिन्न शब्द कोशों में 'दलित' शब्द का अर्थ इस प्रकार है-

१. "दल (अक) विकसना, फटना, खण्डित होना, द्विधा होना।

दल-(सक) चर्ष करना, टुकड़े करना, विराटना।

दल-(नपृ) सैन्य, लश्कर, पत्र, पत्ती।

२. दल- (दलति, दलित) दलित- टू वर्स्ट्, ओपन स्प्लिट क्लेब, क्रंक

दलित-हृदयं गाठो द्वेगं द्विधा तू न विद्यते। (वेदनाओं के कारण हृदय के टुकड़े होते है, नाश नहीं)। दलित-पी.पी. ब्रोकन, टार्च, बर्स्ट, रेण्ट, स्लिट।"[१]

हिन्दी शब्दकोशों में भी दलित शब्द का अर्थ- विनष्ट किया हुआ ऐसा ही दिया हुआ है। जैसे-

"दलित –(वि.सं.) स्त्री दलिता

१. मसला हुआ, मर्दित

२. दबाया, रौंदा या कुचला हुआ।

३. खण्डित, दरिद्र और पीडित

४. विनष्ट किया हुआ।

दलित वर्ग पुं (सं) समाज का वह वर्ग है जो सबसे नीचा माना गया हो या दुःखी या दरिद्र हो और जिसे उच्च वर्ग के लोग उठने न देते हो, जैसे भारत की छोटी या अछूत मानी जाने वाली जातियों का वर्ग।"[२]

---

१ विल्यम्स मोनीर, *संस्कृत अग्रेज़ी शब्दकोश,* पृ. ४७१.

२ आचार्य रामचन्द्र वर्मा, *प्रामाणिक हिन्दी कोश*, पृ. ३८३.

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने दलित शब्द का अर्थ इस प्रकार किया है-

१. ''दलित-कुचला हुआ, मर्दित, मसला हुआ, रौंदा हुआ।

२. पस्त हिम्मत, हतोत्साह

३. अछूत, जनजाति, डिप्रेस्ड क्लास''[१]

संस्कृत- शब्दकोश में दलित शब्द का आशयः-

''दलित- दब + कत

१. टूटा हुआ, चीरा हुआ, फाड़ा हुआ, फटा हुआ, टुकड़े-टुकड़े हुआ।

२. खुला हुआ, फैलाया हुआ।''[२]

हिन्दी शब्द कोशों ने 'दलित' शब्द को ''कुचला हुआ, दबाया हुआ, नष्ट किया हुआ''[३] अर्थ दिये हैं।

हिन्दी -तमिल -अंग्रेज़ी त्रिभाषा कोश तथा हिन्दी-सिंधी-अंग्रेज़ी त्रिभाषा कोश में भी 'दलित' शब्द का अर्थ इस प्रकार है।

''दलित - वि. १.जो कुचला, दला या रौंदा गया हो, २. जो दबाया गया हो या जिसे पनपने या बढ़ने न दिया गया हो, हीन अवस्था में पड़ा हुआ।

Crushed, Down- trodden, depressed

---

१ डॉ. भोलानाथ तिवारी, *हिन्दी पर्यायवाची कोश*- पृ.२७०.

२ वामन शिवराम आपटे (सं) *संस्कृत हिन्दी शब्द कोश*, पृ. ४५१.

३ डॉ. हरदेव बाहरी, *हिन्दी शब्द कोश,* पृ. ३८६।

दलित वर्ग - पु. समाज का वह निचला वर्ग जो उच्च वर्ग के लोगों के उत्पीड़न के कारण आर्थिक दृष्टि से बहुत ही हीन अवस्था में हो। depressed class"[१]

बृहत् शिक्षार्थी हिन्दी - अंग्रेज़ी शब्दकोश में

"दलित - १.Oppressed or down trodden (person) depressed (man)

२. member of scheduled caste

दलित वर्ग - depressed class, scheduled caste

दलिद्दर - 1 Poverty, penury, destitution२.nastiness, dirtiness"[२]

अंग्रेज़ी में दलित शब्द के लिए 'Subaltern' शब्द का प्रयोग होता है, जिसका अर्थ है, "A Subaltern is some one with a low raking in a social, political or other hierarchy. It can also mean some one who has been marginalized or oppressed."[३] The term 'subaltern' in the context is an allusion to the work of Antonio Gramci. "It refers to any person or group of inferior rank and station, whether because of race, class, gender, sexual, orientation, enthicity or religion"[४].

दलित किसे माना जाए इस सम्बन्ध में प्रमुखतः दो प्रकार के मत हैं। संकुचित अर्थ धार्मिक ग्रन्थ, सामाजिक व्यवस्था आदि के कारण है जिसके अन्तर्गत चतुर्थ-वर्ण (शूद्र) में आने वाली जातियों को आधार बताया जाता है, जबकि व्यापक अर्थ में ये उन

---

१ जिल्द: १ हिन्दी - *तमिल- अग्रेज़ी त्रिभाषा कोश-* पृ. ९२१।

२ डॉ. हरदेव बाहरी, *बृहत् शिक्षार्थी हिन्दी - अंग्रेज़ी शब्द कोश*, पृ. ८११ (vol-1)

३ Vocabulary.com/dictionary

४ wikipedia

सभी के लिए यह शब्द प्रयोग में आता है, जिन्हें किसी न किसी प्रकार से दबाया गया हो फिर चाहे ये किसी भी जाति, वर्ण या सम्प्रदाय के हो। दलित एक गतिशील शब्द है, जो एक खास सामाजिक सांस्कृतिक पहचान को सूचित करता है। इस प्रकार दलित शब्द की समाजशास्त्रीय सीमा और अर्थबोध अत्यन्त व्यापक है।

विभिन्न विचारकों ने दलित शब्द की विभिन्न परिभाषाएँ की हैं। डॉ. अम्बेडकर ने दलित शब्द को अस्पृश्य के स्थान पर अपनाया। अस्पृश्य शब्द की जो व्याख्या उन्होंने 'The untouchable' नामक अपने अंग्रेज़ी ग्रंथ में दिया है। डॉ. अम्बेडकर ने- "गिरिजन, विभुक्त जातियों, अपराधी घोषित की हुई जातियों ex-criminal tribes (denotifide) और अछूत इन तीनों समुदायों को अस्पृश्य (दलित) कहा है।"[१] डॉ.अंबेडकर के अनुसार- "दलित जातियाँ वे हैं जो अपवित्रकारी होती हैं। इसी श्रेणी में कारीगर, धोबी, मोची, भंगी, बसौर, सेवक जैसे जार डंगारी (मरे हुए पशु को उठाने वाले) साऊरी, ढोला आते हैं। कुछ जातियाँ परम्परागत कार्य करने के अतिरिक्त कृषि, मज़दूरी का कार्य करती हैं। दलित शब्द करुणा या पश्चाताप को नहीं बल्कि वे वजह दमन और अपमान का शिकार होने के स्वाभाविक रोष को व्यक्त करता है।"[२]

दलित शब्द का प्रचार प्रसार दलित पैंथर आन्दोलन द्वारा हुआ। दलित पैंथर इस शब्द को १९७२ के मानिफेस्टो में इस प्रकार परिभाषित किया है- "A member of scheduled castes and tribes, neo-budhist the working people, the landless and poor peasants, women's and all those who are being exploited politically, economically and in the name of religion"[३] डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन दलित शब्द की

---

१ Dr. Ambedker, Untouchable; who have they and how they become untouchable, Bhim Pathrika, Pub. Jallandhar, 1948.

२ डॉ. माता प्रसाद, *हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा,* पृ.३ (से उद्धृत)

३ Sanjay Paswan, Paramanshi Jaideva (ed.) Encyclopedia of Dalits in India, p.25

की व्याख्या करते हुए कहते हैं - ''दलित वह है जिसे भारतीय संविधान ने अनुसूचित जाति का दर्जा दिया है''।[१]

डॉ. अंबेडकर ने अस्पृश्य (untouchables) के लिए Depressed classes, Schedules castes और servide castes इन शब्दों का प्रयोग किया है। दलित वह शोषित मानव है जो पैदा हुआ तब भी दलित है, जो जिन्दा रहेगा और जो मरेगा तब भी दलित ही है। नामदेव ढसाल का कहना है- ''अनुसूचित जातियाँ, बौद्ध, श्रमिक, मज़दूर, भूमिहीन, कृषक व भटकने वाली सभी जातियाँ, दलित हैं।''[२]

डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर के अनुसार, ''दलित शब्द एक इतिहास है, सामाजिक दर्पण है, सर्वहाराओं का चीत्कार है। अस्मत, अस्मिता, असमानता और अनाचार विवेचक है।''[३] केशव मेश्राम के अनुसार- ''हज़ारों वर्ष जिन लोगों पर अन्याय हुआ ऐसे अछूतों को दलित कहना चाहिए।''[४] कँवल भारती का मानना है कि ''दलित वह है जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू किया गया है। जिसे कठोर और गन्दे कार्य करने के लिए बाध्य किया गया है। जिसे शिक्षा ग्रहण करने और स्वतन्त्र व्यवसाय करने से मना किया गया और जिस पर सछूतों ने सामाजिक निर्योग्यताओं की संहिता लागू की, वही और वही दलित है, और इसके अन्तर्गत वही जातियाँ आती हैं, जिन्हें अनुसूचित जातियाँ कहा जाता है।''[५] मराठी कवि नारायण सुर्वे का कहना है कि, ''दलित शब्द की मिली- जुली परिभाषाएँ हैं, इसका अर्थ केवल बौद्ध या पिछड़ी जातियाँ ही नहीं, समाज में

---

१ डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन, *युद्धरत आम आदमी अंक*, ४१-४२, १९९८, पृ.१४।

२ नामदेव ढसाल, 'आम्ही', दीपाली अंक, १९७३, पृ.७७।

३ डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर, *दलित साहित्य की हुंकार- सात समुद्र पार,* पृ. ४३।

४ केशव मेश्राम, 'अस्मितादर्श', १९७५, पृ. २४।

५ डॉ. कंवल भारती, 'युद्धरत आमआदमी', अंक, ४१, ४२, वर्ष १९९८, पृ. ४१।

जो भी पीड़ित हैं, वे दलित हैं।"[१] डॉ. रणसुभे जी कहते हैं- "दलित का अर्थ है जो सामाजिक दृष्टि से पूर्णतः उपेक्षित हैं, जो वर्ण तथा जाति-व्यवस्था के अन्तर्गत सबसे आखिरी सीढ़ी पर खड़ा है, जो शोषित है, पीड़ित है, श्रमिक है, आदिवासी है, जिसकी अपनी कोई पहचान नहीं बन पाई है और जिसके अस्तित्व को भी स्थापित वर्ग ने नकारा है। जिसकी अस्मिता को सतत रौंदा जाता है- वह दलित है। इस अर्थ में यह शब्द और उसका आशय बहुत ही व्यापक है। ऐसे नकारे हुए श्रमिक, दलित, पीड़ित, शोषित मनुष्य को उसके न्याय अधिकार दिलवाने हेतु जो भी चिंतन प्रस्तुत किया जाए वह मनुष्य की मुक्ति का चिंतन होगा।"[२] इस परिभाषा में या चिंतन में व्यापकता है, मनुष्य को सही संदर्भ में समझने का प्रयास है। 'दलित' शब्द का अर्थ और दलित समुदाय पर विचार करते हुए डॉ. मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है "दलित का अर्थ पराधीन स्थिति में रहनेवाले लोगों से हैं तो उसके भीतर गाँधी के हरिजन, इस देश में आदिवासी और स्त्रियाँ सब शामिल हैं। लेकिन जब दलित शब्द का प्रयोग कर रहा है तो मेरे ध्यान में वे हैं जिन्हें भारतीय वर्ण-व्यवस्था में शूद्र कहा जाता है या जिन्हें समाज में अछूत माना जाता है। केवल उन्हें दलित मान रहा हूँ जो जाति से दलित"।[३]

डॉ. सुनीता साखरे के अनुसार-" भारतीय सनातनी सामाजिक वर्ण व्यवस्था में निचली श्रेणी का वर्ण और उससे संबंधित विभिन्न जातियाँ और वर्ण व्यवस्था में बाहर जीने वाली जन जातियाँ जो हिन्दू व्यवस्था में परंपरा से अछूत, सांस्कृतिक दृष्टि से व्याज्य घोषित, आर्थिक दृष्टि से शोषित और सामाजिक दृष्टि से उपेक्षित, बहिष्कृत

---

१ नारायण सुर्वे, हंस, अक्तूबर, १९९२, पृ. २३।

२ मधुमती: अप्रैल-मई २०१०, पृ.४४

३ युद्धरत आम आदमी-दलित चेतना विशेषांक-३१, पृ.१८०

समाज है वह दलित कहलाता है।"[१] डॉ. शरणकुमार लिंबाले ने दलित शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया है "दलित केवल हरिजन और नवबौद्ध नहीं। गाँव की सीमा से बाहर रहनेवाली सभी अछूत जातियाँ आदिवासी, भूमिहीन खेतिहार मज़दूर, कष्टकारी जनता और यायावर जातियाँ सभी की सभी दलित शब्द में व्याख्यायित होती है। दलित शब्द की व्याख्या में केवल अछूत जाति का उल्लेख करने से नहीं चलेगा। इसमें आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए लोगों का भी समावेश करना होगा।"[२] दलित लेखक श्री ओमप्रकाश वाल्मीकि के अनुसार- "दलित शब्द उस व्यक्ति के लिए प्रयुक्त होता है जो समाज-व्यवस्था के तहत सबसे निचली पायदान पर है। वर्णव्यवस्था ने जिसे अछूत या अन्त्यज की श्रेणी में रखा, उनका दलन हुआ, शोषण हुआ। इस समूह को ही संविधान अनुसूचित जातियाँ कहा गया है जो जन्मना अछूत है।"[३]

उपर्युक्त अर्थ एवं परिभाषा से यह निकलता है कि दलित शब्द दबाए गए, शोषित, पीड़ित, प्रताड़ित के अर्थों के साथ जब साहित्य से जुड़ता है तो विरोध और नकार की ओर संकेत करता है। इन सभी जातियों की गुलामी और दासता का स्वरूप सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक ही हैं, दलित शब्द संघर्ष का है तो भी उसमें बन्धुत्व समानता, मानवता का भाव भी है। अंत में यह कहा जा सकता है कि कुछ लोग 'दलित' शब्द का संकुचित अर्थ में प्रयोग करते हैं तो और कुछ उसके व्यापक अर्थ में प्रयोग कर रहे हैं।

---

१ डॉ. सुनीता साखरे, *हिन्दी और मराठी, दलित साहित्यः एक मूल्यांकन*, पृ. १६।

२ शरणकुमार लिंबाले, *दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र*- पृ.३८

३ ओमप्रकाश वाल्मीकि, *दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र*- पृ.१४

२.१.२ दलित साहित्य

जिस साहित्य में समाज के दलित-दमित एवं पीड़ित मानव का चित्रण होता है उसे दलित साहित्य कहा गया है। अस्पृश्यता, छुआछूत, अंधविश्वास, धार्मिक पाखंड, गुलामी, शोषण जैसे अत्याचारों के खिलाफ के साहित्य को भी दलित साहित्य माना गया है। जिस साहित्य को पढ़कर दलित अपनापन का अनुभव करता है, इसे भी दलित साहित्य कहा जा सकता है। यह अनुभवों पर आधारित है। दलितों के जीवन यथार्थ को उसकी पूरी वास्तविकता के साथ अभिव्यक्त करने का प्रयास विभिन्न भाषाओं में हो रहा है।

दलितों द्वारा दलितों के लिए लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य है। अगर किसी सवर्ण लेखक ने दलित जीवन भोगा है, उत्पीड़न का अहसास किया है, ब्राह्मणवादी व्यवस्थाओं के खिलाफ विद्रोह और दलितों की संवेदना जागृत करने केलिए चेतना है। उसमें समानता, स्वतंत्रता, बन्धुत्व, सम्मान, न्याय के लिए लिखता है तो उसका लेखन भी 'दलित साहित्य' के अन्तर्गत आता है। विद्वानों ने इसके स्वानुभूति और सहानुभूति के पक्ष को स्वीकार करते हुए दो भागों मे विभक्त करने की कोशिश की है। जिसकी चर्चा विस्तार से हम आगे करेंगे।

दलित साहित्य वैज्ञानिक सत्य पर आधारित धर्म, कर्म, भाग्य, भगवान जन्म-मरण व पूर्वजन्म के सिद्धान्तों को नकारता है। यह धरती से जुडे लोगों के भोगे गये जीवन से जुड़ा साहित्य है। समकालीन दलित साहित्य दलितों के सामाजिक एवं वैयक्तिक जागरण का इतिहास है। इसमें दलितों को अपने स्वत्व को पहचानने की शक्ति दी है। दलित लेखकों का अलग-अलग अनुभव, उनकी जनभाषा, उनकी प्रतिबद्धता, अम्बेडकरवादी विचार और इस साहित्य के विद्रोही समूहदर्शी स्वरूप के कारण दलित साहित्य की पृथकता स्पष्ट होती है।

भारत में दलित साहित्य का आरंभ मराठी में हुआ है। इस साहित्य के मूल में महात्मा फुले और बाबा अम्बेडकर के विचार और राजर्षि शाहू महाराज का कर्त्तव्य भी शामिल है। महाराष्ट्र ने भारतीय समाज को नयी सोच, नव-दर्शन और आधुनिक विचार दिए है। हिंदी भाषा को नया कथ्य, नई भंगिमा शैली और नये भावबोध महाराष्ट्र के मराठी साहित्यकारों की देन है। उनका मानना था, यदि अपनी अनुभूतियों को बृहत्तर आयाम देना है तो मराठी के अलावा हिन्दी को अपनाना अनिवार्य है।

२.१.३ दलित साहित्य की परिभाषा

अनेक विद्वानों ने 'दलित साहित्य' की व्याख्या करते हुए उसे परिभाषित करने का प्रयास किया है। दलित चिन्तक कंवल भारती की धारणा है कि "दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को रूपायित किया है अपने जीवन-संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उनकी उसी अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह कला केलिए कला नहीं, बल्कि जीवन का और जीवन की जिजिविषा का साहित्य है। इसलिए कहना होगा कि वास्तव में दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य की कोटि में आता है।"[१] मोहनदास नैमिशराय के मतानुसार-"दलित साहित्य यानी बहुजन समाज में सभी मानवीय अधिकारों एवं मूल्यों की प्राप्ति के उद्देश्य से लिखा गया साहित्य है।"[२] मराठी भाषा के प्रतिष्ठित साहित्यकार शरणकुमार लिंबाले दलित साहित्य के विषय में लिखते हैं- "दलित साहित्य भारतीय साहित्य में नई और विशिष्ट साहित्यिक धारा है। इस नई साहित्यिक धारा ने भारतीय साहित्य को नये अनुभव, नई अनुभूति, नए शब्द, नए नायक, नई दृष्टि और वेदना-विद्रोह का रसायन दिया है। इतना ही नहीं आत्मपरीक्षण, समालोचना का नया आयाम

---

१ कंवल भारती, युद्धरत आमआद्मी, अंक ४१-४२, वर्ष, १९९८, पृ. ४१.

२ डॉ. धीरजभाई वणकर, *दलित विमर्श*- पृ.१० (से उद्धृत)

दिया है।"[१] डॉ. माताप्रसाद का मत है -"दलित साहित्य में जहाँ सामाजिक दर्द है, जातिवाद की पीड़ा है, शोषण तथा उत्पीड़न की कसक है, वहीं जाति उत्पीड़न तथा शोषण के कारणों की तलाश भी है। इसमें भाग्यवाद को अस्वीकार करने की भावना भी है। दलित साहित्य एक ऐसा साहित्य है जो सभी तरह की वर्ण-व्यवस्था, जाति-पाँति, ऊँच, नीच, भेदभाव के दायरे से ऊपर है, जिसे धर्म, भाषा और प्रदेश की सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता है।"[२] रामभरत पासी के शब्दों में दलित साहित्य - "एक संघर्ष है जड़ता के खिलाफ और उनके भी जो शोषण और मानवीय मूल्यों के हनन को अपनी नियति माने सदियों से स्पंदनीय है।"[३] डॉ. कालीचरण स्नेही ने लिखा है-"दलित साहित्य एक ऐसे वर्ग का साहित्य है जिसे अब तक वंचित, अस्पृश्य कहकर नकारा जाता है।"[४]

डॉ. धर्मवीर के अनुसार - "दलित साहित्य वही साहित्य है जिसे दलित लेखक लिखता है।"[५] डॉ. प्रेमशंकर के अनुसार, "दलित साहित्य दलितों का, दलितों द्वारा, दलितों की भाषा में लिखा गया जीवन्त साहित्य है जो अपने सच्चे अनुभवों से सोए हुए साहित्यों को जगाकर उसकी गरिमा, गौरव, अस्मिता, आत्माभिमान तथा अस्तित्व के प्रति विश्वास करने का साहित्य है"।[६] श्री ओमप्रकाश वालमीकि की राय में "दलित साहित्य दलित जीवन की सही और यथार्थवादी अभिव्यक्ति है जो कल्पना पर आधारित नहीं, जीवन को उसके उसी रूप में प्रस्तुत करती है जिस रूप से वह मौजूद है"।[७] डॉ.

---

१ शरणकुमार लिंबाले, *दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र*- पृ.४५

२ डॉ. माताप्रसाद, *हिन्दी काव्य में दलित काव्य धारा*- पृ.१५४

३ रमणिका गुप्ता, *दलित चेतनाः साहित्य एवं सामाजिक सरोकार*- पृ.१०८

४ डॉ.कालीचरण स्नेही, *हिन्दी साहित्य में दलित अस्मिता*, पृ. २३.

५ डॉ. धर्मवीर, संचेतना, जून, १९९९, लेख -पृ. ५७.

६ डॉ. प्रेमशंकर, *दलित संघर्षः संस्कृति एवं साहित्य की सबल अभिव्यक्ति* (लेख) प्रशासन, त्रैमासिक, मसूरी, जनवरी-मार्च, १९९७, पृ. २१२-२१३.

७ आजकल- दिसंबर, २०००, पृ. ९९

दयानन्द बटोही के अनुसार ''दलित साहित्य दलितों की चेतना को अभिव्यक्ति देता है। इसमें दलित मानवता का स्वर है। एक विद्रोह उस व्यवस्था के प्रति है, जो सदियों से दलितों का शोषण कर लाभ की स्थिति में है।''[१] डॉ. रणसुभे के शब्दों में, ''प्रत्येक भाषा के साहित्य के अपने स्वप्न होते हैं। ये स्वप्न कालानुरूप बदलते भी जाते है। दलित साहित्य के स्वप्न भी बदलते-बदलते एक क्रम से जाति, वर्ण, धर्म, अर्थ, राजनीति के बंधनों से मनुष्य को मुक्त करता रहा है। यह प्रक्रिया मात्र दलित-साहित्य की ही नहीं कुल मनुष्य-जाति की अखण्ड यात्रा की प्रक्रिया है।''[२] यहाँ पर डॉ. रणसुभे जी ने मनुष्य को हर बंधन से मुक्त होने का सपना देखा है। वे चाहते हैं कि मनुष्य को उसके वर्ण, जाति तथा धर्म के कारण नकारा नहीं जाना चाहिए। इसी प्रकार के उद्देश्य के तहत दलित साहित्य लिखा जाता है। डॉ. रघुवीर सिंह ने कहा है-''यह वह साहित्य है जो लावा है, जो हज़ारों बरसों से सुषुप्त था, आज भयंकर लावा के रूप में व्यवस्था को तहस-नहस करने को उतारू है।''[३] दलित दलितों को उनके दलितप्पन का अहसास कराने में लगा हुआ है। इसके कारणों की खोज करते हुए दलित मुक्ति का मार्ग भी बता रहा है। दलित साहित्य के संदर्भ में अपनी राय व्यक्त करते हुए डॉ. एन सिंह का कहना है कि-''दलित साहित्य की शक्ति कला नहीं सत्य है। इसलिए दलितों द्वारा दलितों केलिए लिखा गया साहित्य को दलित साहित्य कहूँगा।''[४]

विमल थोरात का मानना है-''दलित साहित्य उस विद्रोह का उन्मेष है जो किसी विशिष्ट जाति या व्यक्ति के विरुद्ध नहीं बल्कि 'स्व' के खोज में निकले हुए एक पूरे

---

१ डॉ. दयानन्द बटोही, *साहित्य में दलित चेतना* (लेख)पश्यंती, त्रैमासिक अप्रैल, जून, १९९९, पृ. १२९.

२ मधुमतीः अप्रैल-मई, २०१०, पृ.४५

३ डॉ.रघुवीर सिंह, डॉ. अंबेडकर और दलित चेतना, पृ. ७.

४ डॉ. एन. सिंह, मेरा दलित चिंतन, पृ. ३७.

समाज की पूर्व परम्पराओं से विद्रोह है एवं अपने अस्तित्व की स्थापना का प्रयास है।"[१] हिन्दी लेखक कमलेश्वर के शब्दों में-" जातीय स्वाभिमान को छोड़कर इस साहित्य ने भारत के दलित और वंचित मनुष्य को सम्मान दिया है। यह साहित्य भारत की अपमानित और वंचित मनुष्यता की अस्मिता की आवाज़ है।"[२] कुल मिलाकर दलित साहित्य भविष्य का साहित्य है। राजेन्द्र यादव का यह कहना कि "अगली सदी दलित रचनाओं की होगी।"[३] डॉ. सी. बी. भारती की मान्यता है कि "दलित साहित्य नवयुग का का एक व्यापक वैज्ञानिक व यथार्थपरक संवेदनशील साहित्यिक हस्तक्षेप है। जो कुछ भी तर्कसंगत, वैज्ञानिक, परंपराओं के पूर्वाग्रहों से मुक्त साहित्य सृजन है। उसे हम दलित साहित्य के नाम से संज्ञायित करते हैं।"[४]

Dalit literature is literature written by the dalits, that those who are oppressed by the Indian caste system. Dalit literature forms an important and distinct part of Indian literature. Dalit literature emerged in the 1960s, starting with the Marathi language, and soon appeared in Hindi, Kannada, Telugu, Bangla and Tamil language, through narratives such as poems, short stories and most autobiographies, which stood out due to their stark Portrayal of reality and the Dalit political science.[५]

दलित साहित्य की जितनी भी परिभाषाएँ हैं, उनका एकमात्र स्वर, सामाजिक परिवर्तन तथा अम्बेडकरवादी विचार ही है। इससे यह स्पष्ट है कि दलित साहित्य

---

१ विमल थोरात, मराठी दलित कविता और साठोत्तरी हिन्दी कविता में सामाजिक और राजनीतिक चेतना- पृ.२९

२ कमलेश्वर, तीसरा दलित साहित्य सम्मेलन, स्मरणिका, जनुवरी, १९७९

३ ओंप्रकाश वाल्मीकी, *दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र*- पृ. २१

४ डॉ. सी.बी. भारती, *दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र*, (लेख) हंस, अकं २, १९९६, पृ. ७०-७१.

५ https://en.wikipedia.org/wiki/dalitliterature

पुरानी परंपराओं से मुक्त नवयुग का एक साहित्य सृजन है वह संवेदशील एवं जीवन यथार्थ का चित्रण करनेवाला है। दलित साहित्य का केन्द्र बिन्दु मनुष्य है। अर्थात मनुष्य का उत्थान ही दलित साहित्य का प्रयोजन है। यह मानव मुक्ति केलिए लड़ने वाला सम्यक क्रान्ति का साहित्य है। यह मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखना पसन्द करता है। यह मानव के जीवन मूल्यों एवं जीवनादर्शों को प्रतिष्ठित करता है और सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं अज्ञान के मुक्ति पथ तक ले जाता है। दलित साहित्य 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः' के लोकहित सर्वोदय की कामना करती है।

२.१.४ दलित साहित्य और गैर दलित साहित्य में अंतर

दलित लेखक कौन हो सकता है? इसके दो पक्ष हमारे सामने उपलब्ध हैं। कुछ लोग मानते हैं कि दलित ही दलित लेखन कर सकता है। क्योंकि वह खुद अत्याचारों और शोषणों का शिकार बन चुका है। दूसरे पक्षवाले यही मानते हैं कि दलितों से सहानुभूति रखनेवाले लोग भी दलितों के लिए लिख सकते हैं। लेकिन तब यह प्रश्न उठता है कि 'स्व-अनुभूति' और 'सह-अनुभूति' में फर्क है या नहीं। दलित साहित्य में नकार एवं विद्रोह का स्वर अधिक मुखरित हुआ है। यह पुरानी काव्य-शास्त्रीय संकल्पनाओं को नकारता है। सत्यम्, शिव्, सुन्दरम् जैसी उक्ति को अस्वीकार करता है (यह पुराने मिथकों तथा परंपराओं को नकार कर नये मूल्यों की स्थापना के लिए प्रयत्नरत है।) इस कारण से दलित-गैर दलित रचनाकारों के बीच तर्क-वितर्क भी हो रहे हैं।असल में दलित साहित्यकार स्वयं भोगी हुई पीड़ा को लिखता है, उसका साहित्य 'स्वानुभूति' का साहित्य है, गैर-दलित साहित्यकार किसी की पीड़ा को देखकर उसका अनुभव करके रचना करते हैं, उनका साहित्य 'सहानुभूति' का साहित्य कहा जा सकता है। संक्षेप में दलित और गैर-दलित साहित्य का अन्तर वैसा ही है जैसा काँटा गड़े व्यक्ति का दर्द और काँटा गड़े के दर्द को अनुभव करनेवाले व्यक्ति का दर्द। दलित साहित्य

दलित की पीड़ा के साथ ही उसके विरोध, प्रतिरोध और उसके निवारण के लिए संघर्ष को प्रेरित करता है। गैर दलित साहित्यकार पीड़ित को संघर्ष के लिए प्रेरित नहीं करता, अपितु वह दोनों वर्गों के संघर्ष को बचाता है और समझौतावादी रूख अपनाता है दलित साहित्य जीवन की वास्तविकता का दस्तावेज़ है उसमें उस वर्ग के युग युगों की पीड़ा का क्रन्दन है, आँसू है। जयप्रकाश कर्दम ने लिखा है, "दलित लेखकों द्वारा लिखित दलित चेतनोन्मुख साहित्य ही दलित साहित्य है। गैर-दलित इस परिधि में नहीं आ सकता। हाँ, दलित शब्द की व्याप्ति को अवश्य मैं अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के अलावा अन्य पिछड़े वर्ग के अन्तर्गत आने वाली कामगार जातियों तक करना चाहूँगा। क्यों कि बेशक हिंदू समाज व्यवस्था के अन्तर्गत वे सवर्ण हैं, किन्तु समाज में उनकी कोई सम्मानजनक स्थिति नहीं है।"[१]

गैर दलित रमणिका गुप्ता लिखती है, "मेरी राय में दलित ही दलित साहित्य लिख सकता है, क्योंकि उसने यथार्थ को भोगा है। गैर-दलित केवल संवेदना को लिख सकता है। उसका आधार सहानुभूति होती है। लेकिन दलित द्वारा कुछ भी लिखा हुआ दलित साहित्य नहीं कहलाता। क्योंकि दलित साहित्य डॉ. बाबा अम्बेडकर के नकार एवं स्वीकार पर आधारित है। २२ प्रतिज्ञाओं के दायरे में लिखा जाता है। दोनों की दृष्टि, पीड़ा, आक्रोश, आलंबनों में अंतर है।"[२] वास्तव में गैर-दलित साहित्यकारों द्वारा दलितों के विषय में लिखा गया दलित साहित्य दलित विमर्श है। दलित लेखकों द्वारा लिखा गया साहित्य उनकी चेतना है उनका स्वयं का भोगा हुआ यथार्थ है, अनुभूति है। दलित साहित्य ने उन बहिष्कृत लोगों को अपना नायक बनाया है, जिन्हें संपूर्ण वर्ण व्यवस्था ने अमंगल और अपवित्र माना, पूर्वजन्म का अपराधी कहकर जिनकी निंदा की

---

१ मधुमतीः अप्रैल-मई, २०१०, पृ.४३

२ वहीं

गयी है। गैर-दलित रचनाकारों ने दलित जीवन के नकारात्मक पक्ष को अधिक प्रस्तुत किए है। लेकिन दलित रचनाकारों द्वारा रचित रचनाओं में सवर्णों के अत्याचार के विरुद्ध दलित चेतना से मुखरित सकारात्मक पक्ष देख सकते हैं। वरिष्ठ मराठी दलित चिंतक गंगाधर पान्तावणे जो साहित्य के तीन स्रोत मानते हैं- ''१. स्वयं जानक, भोगकर प्राप्त किया गया अनुभव २. दूसरे को देखकर, समझकर समवेदना के ज़रिए प्राप्त ज्ञान, अप्रत्यक्ष अनुभव तथा ३. कल्पना, कल्पना का तो सच से कोई सीधा रिश्ता नहीं होता। बाकी दो को पानतावणे जी 'जाणीव' तथा 'सहजाणीव' कहते हैं। जाणीव से ही दलित साहित्य रचा जा सकता है। लेकिन सहजाणीव (समवेदना) का साहित्य झूठा नहीं होता। वह भी सच है लेकिन अनुभव के ताप से रहित। प्रेमचंद और ओमप्रकाश वाल्मीकि का यही फर्क समझना चाहिए''।[१]

दलित साहित्य वास्तव में जन साहित्य है, साथ में लिटरेचर ऑफ एक्शन भी है जो मानवीय मूल्यों की भूमिका पर सामन्ती मानसिकता के विरुद्ध आक्रोशजनित संघर्ष है। इसी संघर्ष और विद्रोह से उपजा है दलित साहित्य। दलित जीवन और उनकी समस्याओं पर गैर-दलितों जैसे प्रेमचन्द, नागार्जुन, अमृतलाल नागर, गिरिराज किशोर जगदीश चन्द्र आदि ने लिखा है और दलित लेखन ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, श्यौराज सिंह बेचैन आदि ने भी लिखा है। किन्तु इनकी अन्तर्वस्तु में इनके द्वारा अर्जित और प्रतिष्ठित मूल्यों में और उस अनुभव की प्रक्रिया की व्याख्या में गहरा फर्क है। डॉ. मैनेजर पाण्डेय ने भी अपने एक साक्षात्कार 'केवल राख ही जानती है जलने का अनुभव' में कहा है-''सच्चा दलित साहित्य वही होगा जो दलितों के बारे में दलित लिखेगे। अपने समुदाय के जीवन के यथार्थ और अनुभवों के बारे में कोई दलित लिखता है, तो उसकी दृष्टि में जो आग, चित्रों में जो आभा और भाषा में जो ऊर्जा होती

---

१ गंगाधर पानतावणे से बजरंग बिहारी की बातचीत, कथोदश - जूलाई २००८ ।

है, वह गैर दलितों के द्वारा दलितों के द्वारा दलितों के बारे में लिखे गए साहित्य में नहीं होती।''[१] दलित साहित्य की विशेषताओं पर यदि हम विचार करें तो पाते हैं कि दलित साहित्य समता, स्वतंत्रता और बंधुता का पक्षधर है।

२.२. दलित कविता की भावभूमि

वैसे किसी भी चीज़ का आरंभ शून्य से संभव नहीं है, अर्थात उसके पीछे एक परंपरा रहती है। अतः निरन्तरता और परंपरा का महत्व रहता है। आधुनिक दलित कविता के संदर्भ में भी दलित कविता की परंपरा को ढूँढना या समझना हमारा दायित्व बनता है। गीतात्मकता, ताल-लयात्मकता आदि किसी भी साहित्यभिव्यक्ति परंपरा के मूल में रहते हैं। इसके संबन्ध में डॉ. ए अच्युतन जी का मत है कि ''लोकाभिव्यक्ति का आत्मस्वरूप ताल-लय समन्य में है।''[२] मनुष्य के अभ्यिव्यक्ति प्रक्रिया में भाव का महत्व है। इसी भावभूमी के कारण कविता या गीत का महत्व है। जब आचार्यों ने लोकधर्मी पद्धति की व्याख्या की है तब भी नैसर्गिक भावों की ओर इशारा किया हैं।

''स्वभाव भोवोपगतं शुद्धम् त्वविकृतं तथा
लोकवार्ता क्रियोपेतमङ्गलीलाविवर्जितम (६२)
स्वभावभिनयोपतं नानास्त्रीपुरुषाश्रयम
यही दृशं भर्वेनाट्यम लोकधर्मी तु सा स्मृतः''[३] (६३)

अर्थातः शुद्ध रूप से लोक व्यवहार तथा लोक में प्रचलित क्रियाओं की आंगिक लीलाओं के बिना ऊबहु मंच पर प्रस्तुत किया जाय तो नाट्य की यह पद्धति लोकधर्मी

---

१ जयप्रकाश कर्दम (सं), *दलित साहित्य वार्षिकी* (२००९-२०१०) अकादमिक. प्रतिमा, दिल्ली, पृ.१७

२ डॉ. ए. अच्युतन, *लोकनाट्य एवं संस्कृति*, पृ. ३५

३ भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, Abhinav guptacharya, Natyasastra of Bharathmuni- Vol. II, p. 477.

हैं। इसलिए गीत का अध्ययन दलित कविता के संदर्भ में भी विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। हर भाषा में ऐसे बहुत सारे गीत (पाट्टु) मिलते हैं, जिसमें दलित समाज के विविध आयामी स्वरूप देखने को मिलता है। आगे हमारी परंपरा में लोकगीत या दलित गीत के विशेषताओं पर चर्चा करेंगे ताकि दलित कविता के भावभूमि को स्पष्ट करने में सहायक सिद्ध होंगे।

२.२.१ लोकगीत और दलित गीत

भावनाओं से ही लोकगीतों का जन्म हुआ हैं। मानव अपने जीवन में प्रकृति से जो कुछ देखा, सुना एवं अनुभव किया इससे जिस प्रकार की भावना उठी उसे अपनी भाषा के गीतों में सँजोकर रख दिया; लोकगीत के नाम से जाने पहचानने लगा। लोकगीत जन-जन के गीत है, जिन्हें मानव विभिन्न अवसरों पर तन्मयता के साथ गाता है। लोकगीत ही लोक भावनाओं के साकार स्वरूप हैं। इसकी मूल प्रेरणा मानव की अभिव्यक्ति है। इस अभिव्यक्ति प्रक्रिया में भाव का महत्व है। मानव की उपलब्धियों में गीत का महत्वपूर्ण स्थान है। गीत के रूप में ही आदिम मानव ने वाणी का प्रथम दर्शन किया था। मानव के आवेगों ताल-लय से संयुक्त होते हैं। ये ही गीत के रूप में प्रस्फुरित हो जाते हैं। इसमें शब्दों द्वारा भावों की अभिव्यक्ति होती है। अनेक विद्वानों ने गीत को परिभाषित करने का प्रयास किया है। महादेवी वर्मा ने लिखा है- "सुख- दुःख की भावावेशमयी अवस्था का विशेषकर गिने-चुने शब्दों में स्वरसाधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है"।[१] "गीत हमारे संस्कृति के वाहन हैं। सांस्कृतिक दरोहर को सहज सोखनेवाली आर्द्रा धरती माँ है, जो संस्कृति शिशु को पुष्ट, सुन्दर युवक बनाकर उसे चिर आयु प्रदान करती है। ज़रा-मरण के बन्धन से मुक्त कर उसे चिरन्तनता का अक्षर

---

१ महादेवी वर्मा, विवेचनात्मक गद्य, पृ. ९४१.

अशीष देती है।''[१] स्पष्ट है कि गीत -संगीत जीवन को गति प्रदान करती है। डॉ. गणेश खरे के अनुसार ''गीत के वैदिक और लौकिक दो भेद किये गये हैं। वैदिक गीतों के अन्तर्गत सामगीत आते हैं और लौकिक गीतों के अन्तर्गत मार्ग गीत व देश गीत आते हैं।''[२] इसी देशी और मार्गी गीतों में देशी का स्वर ही परंपरागत दलित गीत के साथ जुडे हुए हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट हैं कि जब मानव स्वानुभूति से प्रेरित होकर दुःख तथा सुख संवेदना से आन्दोलित हुआ होगा तभी गीत उनके अधरों से निकले होंगे। मानव चाहे सभ्य हो या असभ्य अपनी स्वानुभूति को अभिव्यक्त करने की इच्छा और क्षमता अवश्य रहती है। इसी प्रकार जब समस्त जन-समाज में चेतन-अचेतन रूप में जो भावनाएं गीतबद्ध होकर अभिव्क्ति होती है, उनहें लोकगीत कहते हैं। लोकगीतों में व्यक्तित्व से पृथक समान रूप में समाज की आत्मा को व्यक्त होते हुए देखा जा सकता है। इसकी अभिव्यक्ति सामूहिक होती है। लोकगीतों के माध्यम से मानव के आदिम रूप से लेकर उसके विकास, परिवर्तन और प्रयत्नों को समझ सकते हैं। इनमें गंभीर मानवीय मूल्य और मान छिपे रहते हैं। लोकगीत समूह के आवश्यकताओं को व्यक्त करते हैं। लोकगीतों में मूल मानव की संस्कृति का स्वर हैं। साथ ही वे युग-युग से बदलती बोलियों को भी व्यक्त करते हैं। लाला लजपतराय का कथन है कि ''देश का सच्चा इतिहास और उसका नैतिक और सामाजिक आदर्श इन गीतों से ऐसा सुरक्षित है कि इनका नाश हमारे लिए दुर्भाग्य की बात होगी''[३] लोक संस्कृति के रूप सिर्फ परम्परागत नाच, गीत, चित्रकारी, रंगे, चेहरे, किस्से-कहावतें और पर्व-त्यौहार ही नहीं है, उसके

---

१ डॉ. सुरेश गौतम, *भारतीय लोकगीत सांस्कृतिक अस्मिता*, Vol. (2) पृ. ८.

२ डॉ. गणेश खरे, *आधुनिक प्रगीत काव्य,* पृ. २८.

३ डॉ. कुलदीप, *लोकगीतों का विकासात्मक अध्ययन*, पृ. ४९ (से उद्धृत)

भीतर से हमारे देश के लोक ने अपनी एक अनन्त जीवन शैली भी विकसित की है, कई मानवीय गुण भी अर्जित किए हैं।

लोक संस्कृति सिर्फ पिछडे समुदायों की संस्कृति है ये धारणा औरियन्टलिसम की देन है। ये संपूर्ण मानव के संस्कृति है। गीत, संस्कार या संस्कृति एक घने वृक्ष की तरह है। उसकी शाखाओं उपशाखाओं से छाया और रस लेकर मनुष्य मनुष्यत्व का प्रसार करता है। उल्लेखनीय है कि मनुष्य-मनुष्य के प्रेरक शक्तियों को नियोजित कर संस्कृति, समाज, राष्ट्र को एक निश्चित दिशा की ओर निरन्तर अग्रसर करती रहती है। समयानुकूल परिवर्तन- परिवर्धन में ही संस्कृति का पुनः सृजन है। संस्कृति पुनः सृजन की यह यात्रा मनुष्य चेतना के साथ-साथ चलती रहती है और इस यात्रा में गीत, लोकगीत, कविता तथा संपूर्ण कला और साहित्य का महत्व है। भारतीय लोकगीतों के प्रारम्भ के विषय में कुछ निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता। किन्तु अनुमान से विदित होता है कि मानव समाज में संगठित होते रहने से लोकगीत का उदय हुआ। संपूर्ण संसार में मानव के आविर्भाव से लोकगीतों का उद्‌भव माना जाता हैं। अर्थात् लोकगीतों के जन्म की कोई निर्धारित काल-रेखा नहीं हैं। लोकगीतों की अनन्त प्रवाहमयी परम्परा की प्राचीनता के सम्बन्ध में रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा है- "जब से पृथ्वी पर मनुष्य है, तब से गीत भी है। जब तक मनुष्य रहेंगे, तब तक गीत भी रहेंगे। मनुष्यों की तरह गीतों का भी जीवन-मरण साथ चलता रहता हैं। कितने ही गीत तो सदा के लिये मुक्त हो गये। कितने ही गीतों ने देश काल के अनुसार भाषा का चोला तो बदल डाला, पर अपने असली स्वरूप को कायम रखा। बहुत से गीतों की आयू हज़ारों वर्ष की होगी। वे थोडे परिवर्तन के साथ समाज में अपना अस्तित्व बनाये हुए है।"[१] मानव प्रकृति से ही सब कुछ सीखा है। हमारी संस्कृति की सत्यमुखी दृष्टि प्रकृति से ही मिला है। 'सत्यात् नास्ति

---

१ विद्या चौहान, *लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि*, पृ.५४

परो धर्मः' यह तत्व दर्शी ऋषियों की वाणी का प्रसार है। अर्थात सत्य से श्रेष्ठ अथवा सत्य से अलग कोई धर्म नहीं, अतः कहना चाहिए कि सत्य ऋषियों की वाणी का प्रसार है। सत्य ऋषि मानस का सर्वोपरि सांस्कृतिक मूल्य है।

लोकगीत लोक मानस की अभिव्यक्ति है। लोक मानस में गाँव के अनपढ़, गरीब, दलित पिछड़े लोग और स्त्रियाँ ही अधिक संख्या में है। इसलिए लोक गीतों में इन्हीं की भावनाओं के स्वर मुखरित होते हैं। लोकगीतों में जहाँ मंगलगायक और सुख दायक स्वर होती है, वहाँ दुःख दर्द एवं पीढ़ा की पुकार भी है। लोकगीतों के माध्यम से पारिवारिक संबंधों की व्याख्या, संस्कारों का महत्व आदि का उल्लेख देखने को मिलते हैं- उदाः फाग-मस्ती और मिल का त्योहार के आगमन का वर्णन किया है-

''जब आयी होली रंग भरी/सो नाजो अदा से मटक-मटक
और धुँघट के पट खोल दिये/वह रूप दिखाया चमक चमक''[१]

सुबह को स्त्रियाँ चकिया पीसते समय गाते गीतों की भावभूमि उनके श्रम को कम कराती है -

''अरे कछु जानत है कछु नाय/सवेरे राजा अकलि बताये जईऔ
सहीआ साँझ मैंने मटर बबाई''।[२]

लोकगीतों में गहनों, खाद्य-वस्तुओं, मिठाइयों, नगरों, देवी-देवताओं और वैवाहिक उत्सवों पर गाए जाने वाले गीतों में रिश्ते के नाम जोड़-जोड़कर इन गीतों को जितना चाहें लबा किया जा सकता है-

---

१ डॉ. सुरेश गौतम, *भारतीय लोकगीत संस्कृतिक अस्मिता,* पृ. ५६.

२ डॉ. महेश गुप्त, *लोक साहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन*, पृ. १४७.

''बन्ना तो मेरा चाँद-सा पर बन्नी काली है
बन्ने के बाबा यूं कहे मैं नाही ब्याहूँगा
पर दादी रानी यूं कहें मेरी देखी भाली है.....''।।[१]

लोकगीतों के माध्यम से ब्रिटीश सत्ता पर व्यंग्य बाण चलाना जन-चेतना के आक्रोश की वाणी थी, उन्हें जब भी अवसर मिला तो गीतात्मक शैली में वह अपनी घृणा व्यक्त करता है -

''चढि घोडे पै धांगि दियौ/धांगि दियौ भाई धांगि दियौ
दिल्ली जाए पुकारी है/ दिल्ली की है ऊँची कोट
मार रे भैया पहली चोट/ चोट गई चुलहा की ओर
फिरंगी बैठो कुंड में/ वै सारे के मुंड में''।[२]

लोक प्रकृति के संरक्षक है, वे प्रकृति में लीन होकर प्रकृति से प्रेरणा प्राप्त करते हैं। प्रकृति को संबोधित करते हुए वे गाते हैं-

''जंगल को बासी रे पिरेत/जंगल को बासी रे पिरेत मेरे जंगलिया
तो है घाम लगैगी रे पिरेत मेरे जंगलिया
तौंकू पेड़ लगाय दऊ रे पिरेत मेरे जगलिया''।[३]

सवर्णों के घर खटहल लेने गए दलित को पेड़ के सबसे ऊपर के खटहल दे देते हैं, तो इसी प्रकार के गीतों का जन्म होता है-

---

१ डॉ. सुरेश गौतम, लोक साहित्य अर्थ और व्यक्ति, पृ. ८३.

२ वही, पृ. ७२.

३ कुलदीप, लोकगीतों का विकासात्मक अध्ययन, पृ. ३५.

"पेड़ के नीचे खटहल तो बहुत है
सबसे ऊपर वाले खटहल के लिए गया
तो खटहल और बच्चा दोनों ऊपर से नीचे/गिर पड़ा"[१]

यह गीत सवर्णों के अधिकार और वर्चस्ववादी नीति की ओर संकेत देते हैं। खेत में ककड़ी देखकर बच्चा उसे खा जाता हैं इसी के नाम अपने बच्चे को चोर कहने वाला सवर्ण व्यवहार दलित सह नहीं सकता। बच्चे के लिए यह चोरी नही तो पुलय कहता है-

"बिना ज्ञान से ले लिया बिट्टू
आरोप चोरी का न लगाना/ प्रायश्चित मैं करूँगा।[२]

यहाँ ककड़ी एक प्रतीक मात्र है। बारिश नहीं तो आरोप दलितों पर, ठीक तरह से फसल नहीं तो आरोप दलितों पर पीढ़ियों से यह हालत जारी है। यहाँ सबसे नीचे का खटहल सारी सुविधाओं के जीवन का प्रतीक है और सबसे ऊपर वाला कष्टतापूर्ण जीवन का ।

वस्तुतः लोकगीतों के प्रभाव को मध्ययुगीन हिन्दी रचनाओं में व्यापक रूप से ढूँढा जा सकता हैं। संदेश-रासक, बीसलदेव रासो, ढोलामारूरा दूहा, आल्हा (परमाल रासो) आदि रचनाएँ तत्कालीन लोक-गीतों एवं कथा गीतों का विकसित एवं साहित्यिक रूप है। लिपिबद्ध साहित्य एवं काव्य कला का अस्तित्व तो कागज़ एवं पुस्तकों में सिमट कर वर्ग विशेष एवं युगविशेष तक ही सीमित रहा है, किन्तु लोकगीतों का अस्तित्व उसकी अन्तः शक्ति के कारण जन-मानस पर अविच्छिन्न रूप से छाया ही रहता है।

---

१ डॉ. वि. लिसी मात्यू, *पोट्टन तैय्यम*, पृ. ६८.

२ वही

लोकगीतों के विश्लेषण से पता चलता हैं कि लोकगीत और परंपरागत दलित गीतों को अलग दृष्टि से देखना उचित लगता हैं। दलित गीत की अलग पहचान अलग संस्कृति और अलग अस्तित्व होती है। इन दलित मौखिक गीतों के माध्यम से ही दलित समूह की समस्याएँ, दुःख, पीड़ा, स्वानुभूति संघर्ष और विद्रोह आदि अभिव्क्ति पा रहे हैं। आधुनिक युग में दलितों की पीड़ा की अभिव्यक्ति दलित कविता के माध्यम से अभिव्यक्त हो रहा है तो हमें यही समझना चाहिए कि दलित कविता का मूलस्वरूप या स्रोत परंपरागत दलित गीतों में पाया जाता है। ग्रामीण क्षेत्र के अनुसूचित जन-जातियों, अनुसूचित जातियों, पिछडे और महिलाओं में यह गीत अधिक प्रचलित हैं। दलित गीत की छोटी-छोटी कडियाँ इतिहास को सही ढंग से समझने में सहायता करती है। यह दलित गीत दलित समाज की संस्कृति की थाती है। इस प्रकार दलित वर्ग अपने भाव को अकेलेपन में गीतों के माध्यम से प्रकट करते रहे हैं। परंपरागत दलित गीतों के संबन्ध में प्रो. डॉ. ए. अच्युतन जी का मत उल्लेखनीय है - "यह गीत प्रचलित लोकगीतों से भिन्न हैं। परंपरागत दलित गीत, नृत्य-नृत्यों का अपना एक संस्कार हैं, एक व्याकरण है, अभिव्यक्ति शैली है। इन गीतों के सही विश्लेषण से तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में दलितों की स्थिति, जीवन रीतियाँ मोह और मोहभंग कल्पना शक्ति, भाषा, साहित्य, कला और संस्कृति संबंधि विवरण प्रमाण के साथ सामने आ जाएँगे। अतः ऐतिहासिक और सृजनात्मक दृष्टि से इन दलित गीतों के अध्ययन अनुसंधान की सख्त ज़रूरत है। अपनी सांसकृतिक अभिव्यक्ति दलितों का जन्मसिद्ध अधिकार हैं। यह संस्कृति मलटी-कल्चरल (बहु-सांस्कृतिक) है, और इस संस्कृति का अन्य समान सांस्कृतिक इकाइयों से भी संबंध है। (इंटर और क्रॉस कल्चरल, अंतर एवं प्रति सांस्कृतिक) आंतरिक और बाहरी कारणों से अपनी भूमि से कट और संस्कार से दूर हटाये आस्ट्रेलिया के अबोर्जिनल, मूल निवासी, स्कान्डिनेविया के सामी, न्यूजिलैंड के मवोरी, अमेरिका के अमेरिन्डिन आदि आदिम जनसमूह की ओर भारत की दलितों की,

अवस्थाओं में अधिक अंतर नहीं है। अतः इनके साहित्य का अध्ययन इतिहास और गोत्र संस्कार का अध्ययन-अनुसंधान सबसे महत्वपूर्ण कार्य बन जाता है''[१] उपर्युक्त कथन से व्यक्त होता है कि परंपरागत दलित गीत का अपना अलग पहचान अस्तित्व एवं महत्व है। विशेषकर समाजशास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से इन परंपरागत दलित गीतों का अलग से अध्ययन करना चाहिए।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में दलितों को पठन-पाठन का अधिकार नहीं था इसलिए मेहनतकश दलित समुदाय प्रकृति से ज्ञानार्जन करके अपनी कथनी के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित कर देता था और इसी कारण उनमें मौखिक ज्ञान की परम्परा प्रबल होती गयी। शिक्षित न होने के कारण दलित समुदाय अपनी असंख्य रचनाओं को लिपिबद्ध नहीं कर पाया और वे उनकी मृत्यु के साथ ही विलुप्त हो गयी। अतः आज, दलितों द्वारा लिखे गये इतिहास एवं साहित्य में भारतीय सामाजिक व्यवस्था की ओर संकेत है जिसने उन्हें अपने अधिकार से वंचित रखा है।

२.२.१.१ लोक : अर्थ एवं परिभाषा

लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है। समाज और व्यक्ति के इतिहास को सजीवता प्रदान करने की क्षमता लोक में है। लेक के माध्यम से समाज के अतीत, राग- विराग, संस्कृति, सुख -दुःख, उपासना, व्रत, पूजा, दान, यज्ञ आदि समाज के नैतिक एवं धार्मिक पक्षों की जानकारी मिलती है। राष्ट्र एवं संस्कृति को अर्थवत्ता प्रदान करने में लोक का महत्व है। अतः मानव के ऐतिहासिक, भौगोलिक वातावरण के अनुसार मानव में बदलाव आ जाती है। भारतीय मनीषी वैदिक युग से लेकर या उसके पहले से वर्तमान युग तक लोक और लोक आकांक्षाओं को

---

१ संकल्प त्रैमासिक पत्रिका, अप्रैल- जून २०११ हिन्दी अकादमी, हैदराबाद, पृ. ६३.

अपने साहित्य कलाओं में चित्रित करने का प्रयास किया है। संक्षेप में कह सकते हैं कि लोक का अपना महत्व है और भारतीय साहित्य इसी लोक सत्ता के अनुप्राणित है।

शब्द कोश के अनुसार लोक शब्द के कई अर्थ है- 'स्थान विशेष' जिसका बोध प्राणी से हो, संसार, प्रदेश, जन या लोग, समाज, प्राणी, यश आदि। परन्तु लोक के दो अर्थ विशेष रूप से प्रचलित है। एक तो स्थान विशेष के रूप में- जैसे उपनिषदों में दो लोक माने गए हैं- 'इहलोक और परलोक'[१] दूसरा अर्थ लोक जनसामान्य है। इसी का हिन्दी रूप 'लोग' बन गया है। इसी अर्थ को प्रकाशित करने वाला 'लोक' शब्द साहित्य का विशेषण बन गया। सिद्धान्त कौमुदी के अनुसार 'लोक' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार संभव है- 'लोक' शब्द संस्कृत के 'लोक दर्शन' धातु से बना है। इसमें 'धञ' प्रत्यय लगने से ही 'लोक' शब्द निष्पन्न हुआ है। इस धातु का अर्थ है देखना। इसका लट् लकार में अन्य पुरुष एक वचन का रूप 'लोकते' है। अतः लोक शब्द का मूल अर्थ हुआ 'देखने वाला'। वह समस्त जन समुदाय जो इस कार्य को करता है, लोक कहलाएगा।[२] वास्तव में 'लोक' शब्द अत्यन्त प्राचीन है। परन्तु आधुनिक युग में अध्ययन की नई दिशाओं के कारण लोक शब्द साहित्य में एक नए महत्वपूर्ण विशेषण के रूप में प्रतिष्ठित हो गया है।

ऋग्वेद में 'लोक' शब्द का व्यवहार जीव तथा स्थान दोनों अर्थो में किया गया है। वेदों में 'लोक' दो प्रकार के माने हैं- पार्थिव और दिव्य।[३] भारत में आर्य जाति के आगमन पर यहाँ के मूल निवासियों से उनका जो संघर्ष हुआ उसके फलस्वरूप वेद और

---

१ सं. रामचन्द्र वर्मा, *संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर,* पृ. ९७७

२ प्र.सं. महापंडित राहुल सांकृत्यान, *हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग-१६,* पृ. १

३ ऋगवेद, १०/१४/९ चौखम्बा, वाराणसी

वेदेतर स्थिति आयी। 'लोक' को अब वेदेतर (वेद-विरोधी) माना जाने लगा किन्तु कालान्तर में 'लोक' अपनी संकुचित स्थिति से निकल आया और उसकी भावना वैदिक तथा अवैदिक दोनों का स्पर्श करने लगी। अब तो 'लोक' परम्परा का संरक्षक, सहेजने वाला और अनुभूति की संवेदना-पूर्ण सतत संवाहक माना जाने लगा। पाणिनी की अष्टाध्याय में'लोक' तथा 'सर्वलोक' शब्दों का प्रयोग 'लौकिक' तथा 'सार्वलौक' शब्दों की निष्पत्ति के सम्बन्ध में हुआ है।[१] पाणिनी ने भी वेद से पृथक् 'लोक' की सत्ता सत्ता को मान्यता दी है। इसी प्रकार वररुचि के वार्तिकों में तथा पतंजलि के महाभाष्य में भी 'लोक' शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में हुआ हैं।[२] गीत में लोक-शास्त्र तथा लौकिक आचारों की महत्ता स्वीकार की गयी हैं। बौद्ध धर्म में 'लोक' को प्रमुखता दी गयी है। अशोक के शिला-लेखों में 'लोक' के कल्याण के आदेश हैं।[३] प्राकृत और अपभ्रंश में प्रयुक्त 'लोकजना' और 'लोकप्पवाय' आदि शब्द लौकिक नियमों का महत्व प्रकट करते हैं। यजुर्वेद में लोक (समाज) की एक विराट कल्पना मिलती है। वास्तव में साधारण जन-समाज ही 'लोक' कहलाता है। जिस लोक-साहित्य को कुछ समय तक अनपढ़, गँवारू, निम्न स्तरीय और अनुपयोगी समझा जाता था वह अब नये दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने वाला माना जाने लगा हैं।

हिन्दी का 'लोक' शब्द ऐंग्लो-सेक्सन शब्द 'फॉक' जैसा ही है। 'फॉक'(Folk) शब्द की उत्पत्ति Folc से हुई है। जर्मन में इसे Volkलिखा जाता है[४]। अंग्रेज़ी में इस

---

१ लोकसर्वलोकाट्ठस तत्रविदितःइत्यर्थे लौकिकः
अनुषतिकादित्वदुभयपवृवद्धि सर्वलोकिकः - पाणिनी अष्ठाध्यायी।

२ प्रो. ए. अच्युतन, *लोक नाट्य एवं संस्कृति,* पृ. २१

३ वही, पृ. २१

४ वही, पृ. २२

'फॉक' का प्रयोग अनपढ़, असंस्कृति और मूढ़ समाज के लिए ही होता रहा है। किन्तु अब इसका प्रयोग सर्वसाधारण और राष्ट्र की सभी लोगों के लिए भी होने लगा है। 'फॉक' शब्द 'लोक' का पर्यायवाची कहा जा सकता है। 'जन' या 'ग्राम' 'फॉक' के अर्थ में आते हैं, किन्तु वास्तव में 'फॉक' इनसे भिन्न है। 'जन' प्राचीन शब्द है जिसका अर्थ 'मानव-समाज' है। इस आधार पर 'फॉक' और जन एक ही अर्थ लिये हैं। किन्तु प्रयोग और परम्परा के आधार पर 'फॉक' के साथ 'लोक' के ही समानता अधिक दिखायी देती है। वैसे देखा जाये तो 'लोक', 'फॉक' से अधिक विशाल स्तर को स्पर्श करने वाला है। वह 'फॉक' से अधिक प्राचीन भी है।

ऊपर बताए हुए विचारों के आधार पर लोक शब्द का अर्थ साधारण जन, स्थान, जगत, जन, जीव, संसार आदि है। 'निरुक्त में तीन लोकों का उल्लेख है- पृथ्वी, अन्तरिक्ष, और द्विलोक पौराणिक काल में सात लोकों की कल्पना हुई भूलोक, भूवलोक, स्वलोक, महालोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोक या ब्रह्मलोक। फिर पीछे इनके सात-सात पाताल-अतल, नितल, वितल, गमस्तिमान, तल, सुतल और पाताल मिलाकर चौदह लोक किए गए''[१] 'लोक' का दूसरा अर्थ जनसाधारण है। 'लोक' शब्द पर विचार करते हुए डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने लिखा है- ''लोक हमारे जीवन का महा समुद्र है; उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता हैं । लोक राष्ट्र का अमर स्वरूप है, लोक कृत्स्न ज्ञान और सम्पूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान हैं। अर्वाचीन मानव के लिये लोक सर्वोच्च प्रजापति है। लोक, लोक की धात्री सर्वफूतमाता पृथ्वी और लोक का व्यक्त रूप मानव, यही हमारे नये जीवन का अध्यात्म शास्त्र है। इसका कल्याण हमारी मुक्ति का द्वार, और निर्माण का नवीन रूप

---

१ प्रो. ए. अच्चुतन, *लोक नाट्य एवं संस्कृति,* पृ. २२.

है। लोक-पृथ्वी-मानव, इसी त्रिलोकी में जीवन का कल्याणतम रूप है।''[१] डॉ. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने 'लोक' शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है- ''लोक शब्द का अर्थ 'जनपद' या 'ग्राम' नहीं है बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत, रुचि-सम्पन्न तथा सुंसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिये जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती है उनको उत्पन्न करते हैं।''[२] श्याम परमाल ने 'लोक' शब्द पर विचार करते हुए लिखा है- ''लोक साधारण जन-समाज है, जिसमें भू-भाग पर फैले हुए समस्त प्रकार के मानव सम्मिलित हैं। यह शब्द वर्ग-भेद रहित, व्याप्त, एवं प्राचीन परम्पराओं के श्रेष्ठ राशि सहित अर्वाचीन सभ्यता- संस्कृति के कल्याणमय विवेचन का द्योतक हैं। भारतीय समाज में नागरिक एवं ग्रामीण दो भिन्न संस्कृतियों का प्रायः उल्लेख किया जाता है, किन्तु 'लोक' दोनों संस्कृतियों में विद्यमान हैं। यही समाज का गतिशील अंग है।''[३] लोक साहित्य के मर्मज्ञ एवं मनीषी डॉ.सत्येन्द्र ने 'लोक' को 'फॉक' का पर्याय स्वीकार करते हुए 'लोक' की परिभाषा इस प्रकार दी है- ''लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य चेतना और पांडित्य के अहंकार से शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है। ऐसे लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्व मिलते हैं वे 'लोक तत्व' कहलाते हैं।''[४]

---

१ वासुदेव शरण अग्रवाल, सम्मेलन पत्रिका (लोक संस्कृति विशेषांक) २०००, पृ. ६५.

२ आचार्य हज़ारी प्रसाद दिवेदी, (लेख) जनपद, अक्तूबर, १९५२, पृ. ६५.

३ डॉ.श्याम परमाल, *लोक साहित्य विमर्श,* पृ. ९-१०.

४ डॉ. सत्येन्द्र, *लोक साहित्य विज्ञान,* पृ. ४५.

डॉ. सत्येन्द्र की उपर्युक्त परिभाषा अधिक सार्थक प्रतीत होती है। वास्तव में 'लोक' में एक दृष्टि प्रधान है। 'लोक' एक ऐसा समुदाय है जो आधुनिक सभ्यता एवं शिक्षा से वंचित होते हुए प्राचीन विश्वासों तथा अनुष्ठानों को सुरक्षित रखे हुए हैं। लोक जीवन में समाविष्ट सम्पूर्ण भावात्मक एवं सृजनात्मक सामग्री, संपूर्ण विश्वास, मान्यताएँ, परम्पराएँ, प्रथाएँ और रीतियाँ लोक-वार्ता कहलाती हैं। लोक-साहित्य के लोक-वार्ता जो इस प्रकार है- लोकगीत (Folk-lyrics), लोकगाथा (Folk-ballads), लोककथा (Folk-tales), लोकनाट्य (Folk-drama), प्रकीर्ण साहित्य (Miscellaneous Literature) प्रकीर्ण साहित्य के अन्तर्गत लोकोक्तियाँ, मुहावरे, सूक्तियाँ, बच्चों के गीत, पालने के गीत, खेल के गीत इत्यादि आते हैं। जिनका व्यवहार गाँव के लोग अपने प्रतिदिन के व्यवहार में किया करते हैं। स्पष्ट है कि लोक एक विराट शब्द है और लोकगीत मोटे तौर पर लोकवार्ता के अन्तर्गत आते हैं और जनसाधारण में मौखिक रूप से जीवन्त रहती है।

२.२.१.२ लोकगीत : परिभाषा

किसी भी चीज़ को परिभाषित करना इतना आसान नहीं है। लोकगीत में दो शब्द है 'लोक' और 'गीत' । लोक अपने आप में एक विराट शब्द है, अनेकार्थी है। गीत का भी विशिष्ट अर्थ है, हमारे देश में मौखिक लोकगीतों की लंबी परंपराएँ हैं। लोक साहित्य लोक चित्त में संचित सामूहिक चेतना और अनुभूति का साहित्य है। लोक साहित्य में आम जन-जीवन के राग-विराग, हर्ष- विषाद का जीवन्त चित्रण है। अनुभवों और अनुभूतियों का सरल और नैसर्गिक प्रतिबिम्ब लोक गीतों में आलोकित हैं। इन गीतों में जटिल जातीय संस्कारों का साक्षात्कार हैं। ऐसे लोक गीत को परिभाषित करना आसान नहीं है। फिर भी बहुत से देश- विदेश के विद्वानों ने लोकगीत को परिभाषित करने का प्रयास किया है।

''लोकगीत तो स्वतःजन्मा है''[१]

''आदिमानव के उल्लासमय संगीत को ही लोकगीत कहते है''।[२]

''लोकगीत न तो नया होता है और न पुराना। वह तो जंगल के एक वृक्ष के समान है जिसकी जड़ें भूतकाल की ज़मीन में गहरी धँसी हुई हैं, परन्तु जिसमें निरन्तर नई-नई डालियाँ, पल्लव और फल उगते रहते हैं''।[३] एक ओर देवेन्द्र सत्यार्थी - ''लोकगीतों का मूल जातीय संगीत में''[४] ढूँढते हैं तो कुछ विद्वान ''लोकगीत उन लोगों जीवन का स्वतोद्रगीर्ण प्रवाह है जो आदिम अवस्था में जीवन बिताते हैं।[५] डॉ. सत्येन्द्र का विचार है कि ''लोकगीत मानवीय कृतित्व की वह सामान्य धरोहर है जो विश्व-मानव की भूमि पर प्राप्त हुई है।''[६]

लोकगीत का शाब्दिक अर्थ है जन-मानस का गीत, जन-जान का गीत। अतः जो गीत सम्पत्ति की तरह विरासत में मिले हो, वही लोकगीत है। ''मन की प्रबलता और आत्मा की प्रेरणा से अनेक के हृदयगत भावों को संगीत ध्वनि से अभिव्यक्त करता है। उस ध्वनि को महासंगीत कहते हैं और वही महासंगीत वास्तविक लोकगीत है। लोकगीतों में बुद्धि-कौशल और साज-सज्जा का काम नहीं होता। लोकगीत वास्तव में आत्म तत्व

---

१ Grimm, A folk song composes itself - *Encyclopaedia Britanica-Vol.IX*, p.448

२ Percy, This primitive spontaneous music has been called folk- *Encyclopaedia Britanica-Vol.IX*, p.447

३ Ralph V. Williams, A folk song is neither new nor old, it is like a forest tree with its roots deeply burried in the past,but which continually puts forth new branches, new leaves, new fruits- *Encyclopaedia Britanica-Vol.IX*, p.448

४ Davendra Satyarthi, Its seed lies in community singing, *Meet my people*, p. 194.

५ K.B. Das, A folk-song is a spontaneous out-flow of the life of the people who live in a more or less primitive conditions, *A study in orrison Folklore Introduction,* p.1

६ डॉ. सत्येन्द्र, प्राक्कथन लेखक (हाडौती लोकगीत, चन्द्रशेखर भट्ट)

से अनुप्राणित होने से संस्कृति के प्रतीक हैं''।[१] लोकगीतों के आचार्य डॉ. फ्रांसिस चाइल्ड का मत है- 'लोकगीतों में उसके रचयिता के व्यक्तित्व का सर्वथा अभाव रहता है। उसकी वाणी में तो उसकी रचना अवश्य मिलती है परन्तु उसका व्यक्ति बिलकुल नहीं मिलता है। लोकगीतों का रचयिता इन गीतों की सृष्टि कर जनता के हाथें इन्हें समर्पित कर स्वयं अन्तर्धान हो जाता हैं''।[२]

उल्लेखनीय बात है कि लोकगीत में मानव-हृदय की प्रकृत भावनाओं की तन्मयता की अवस्था की गति है, जो स्वर-ताल प्रधान न होकर लय या धुन-प्रधान होते हैं। हिन्दी साहित्य कोश में लोकगीत शब्द के तीन अर्थ दिये गये हैं- ''लोक में प्रचलित गीत, लोकनिर्मित गीत, लोक विषयक गीत। इस तरह ऐसे गीत जो लोक द्वारा निर्मित हो, लोकविषयक हो तथा लोक में प्रचलित हो, लोकगीत कहे जाते हैं''।[३] महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा है- ''यदि सब देशों के लोकगीत संकलित किये जा सकें और उनका तुलनात्मक अध्ययन हो तो यह प्रत्यक्ष होगा कि उनमें एक ही मन और एक ही हृदय छिपा है जो मनुष्य में समान है।''[४] श्री वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार - ''लोक गीत किसी संस्कृति के मुँह बोलते चित्र हैं।''[५] श्री सूर्यनारायण पारीख व श्री नरोत्तम स्वामी मानते हैं कि, ''आदिम मनुष्य -हृदय के ज्ञानों का नाम लोक गीत है। मानव जीवन की, उसके उल्लास की, उसकी उमंगों की, उसकी करुणा की, उसकी समस्त सुख-दुःख की कहानी इसमें चित्रित होती है।''[६] लोकगीत की सत्ता ढूँढते विद्वान

---

१ डॉ. सुरेश गौतम, लोक साहित्य अर्थ और व्याप्ति पृ- ६७.

२ डॉ.फ्रांसिस चाइल्ड, English and scotish popular ballads, Introduction, p. 24.

३ डॉ. छोटेलाल बहरदार, *लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन*, पृ. २३ (से उद्धृत)

४ रवीन्द्रनाथ ठाकुर,मॉडेन रिव्यू, सितंबर, १९२४.

५ आजकल, नवंबर, १९५९

६ सूर्यनारायण पारीख, राजस्थान के लोकगीत (पूर्वार्द्ध) प्रस्तावना, पृ. १-२.

मनीषी एवं आलोचक डॉ. सुरेश गौतम का कहना है- ''यदि हमें मानवता को पुनर्जीवित करना है तो गीत को पहचानना होगा। लोकमानस की तरंगों को अपनाना होगा। गीत के वैराट्यबोध को समयानुकूल मानव कसौटियों पर मानव की बुनियादी वृत्तियों के साथ कसना होगा। बुद्धि और हृदय के बीच सेत संकल्पों को वृक्षधर्म बनाना होगा। यह कहा जा सकता है कि मानवता के अभ्युत्थान का सारा बोझ शायद आज गीत के ही कंधों पर है। गहरे में यदि सोचें तो यही सत्य उभरेगा कि गीत ही वह प्रथम भावनेता है जो मनुष्य को जगाकर उसके विकास का प्रयत्न करता है। उसकी आभ्यान्तरिक ऊर्जा के आन्दोलन का नेतृत्व गीत ही करता है। मानवता की सभ्यता का अभिव्यक्ति रूप गीत ही है। मानवता को हर गीत ने जगाया है, वह 'वेद' में हो, 'कुरान' में हो, 'बाईबिल' में हो, 'गुरु ग्रन्थ साहिब' में हो अथवा लोकगीत हो''[१]। गीत पर विचार करते लोक कला के विद्वान डॉ. नन्दलाल कल्ला का कथन महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने कहा कि ''लोकगीत लोकमानस की अगणित सुख, दुःखात्मक, हर्ष -विषाद मूलक, आशा, आकांक्षा-आशंका, उत्साह, निराशा, आह्लाद-अवसाद, मनोराग, मनोवेग, उल्लास, आस्था की सहज, स्वतः स्फूर्त, अकृत्रिम, रागों के बन्धन से मुक्त, सामूहिक चेतना से मण्डित संस्कारों वे तद्जनित अनुभूतियों की रागात्मक अभिव्यक्ति है। लय और ताल जिसके अनुचार तथा नृत्य जिसका सहचर है।''[२] उपर्यक्त परिभाषाओं से व्यक्त होता है लोकगीत सामान्य जन-जीवन के सुःख-दुःख, हर्ष-शोक तथा संस्कृति की खुला तस्वीर है।

लोकगीत का कोई रचयिता या लेखक नहीं होता। उसे किसी व्यक्ति की रचना नहीं कहा जा सकता। इसकी निर्मित सामाजिक है। अतः लोकगीत व्यक्ति का नहीं समाज का होता है। इसके अतिरिक्त लिपिबद्ध होने पर तो लेखक का महत्व होता है परंन्तु लोकगीत मौखिक होते हैं लिपिबद्ध नहीं होते। अतः इसमें परिवर्तन होता रहता है। ये

---

१ डॉ. सुरेश गौतम, *लोकगीत की सत्ता*, पृ. ४२.

२ डॉ.नन्दलाल कल्ला, *लोकगीत का भाष्य,* पृ. ४५.

जनश्रुति से सम्बन्धित है। लोकगीतों में समूह प्रमुख होता हैं। इसमें एक सामूहिक भावभूमि तथा समूह के सामाजिक मूल्यों को अभिव्यक्त करने की शक्ति हैं। लोकगीतों का संसार सत्य का संसार हैं। हृदय में उत्पन्न होने वाले राग-विराग के सीधे-सच्चे भावों का सीधा और निश्चल प्रकटीकरण लोकगीतों की सबसे बड़ी विशेषता हैं लोकगीत सहज और अकृत्रिम होते हैं। ये गीत सामूहिक चेतना और लोकभावना पर आधारित है। लोकगीतों में भाव, लय, और मुग्धता पर अधिक ध्यान दिया जाता हैं। नैसर्गिकता, सामूहिक, भाव-भूमि, परम्परात्मकता, रूढ़िवादिता और संगीतात्मकता लोकगीतों की विशेषताएँ हैं। लोकगीतों का अस्तित्व मौखिक परम्परा के रूप में विद्यमान है प्रसिद्ध विद्वान सिजविक का कथन है कि "लोक साहित्य को लिपि बद्ध करना उसकी हत्या में सहायता देना है, जब तक वह मौखिक रूप में है, तभी तक उसमें जीवनी शक्ति है।"[१] वस्तुतः लोक की वास्तविक जीवन, धर्म, संस्कृति और समाज का असलियत ऐसे ही मौखिक साहित्य में विद्यमान है। लोकगीत ताल-लय के साथ गाये जाते हैं। लोकगीतों द्वारा जन-जीवन के समस्त पक्षों के दर्शन होते हैं और उनके दर्पण में हम विशिष्ट जन-समुदाय की भावनाओं को देख सकते हैं। हर जाति या जन-समाज के अपने गीत होते हैं जिनमें उस समाज की जीवनानुभूति की अभिव्यंजना पाई जाती है। ग्राम जीवन के संघर्ष की महान गाथा के प्रतीक लोकगीत ही हैं। ये समस्त जीवन की अभिव्यंजना के गेय माध्यम कहे जा सकते हैं। हर प्रदेश विशेष के साहित्य का मूल रूप गेय साहित्य (पाट्टु साहित्य) से है।

२.२.१.३ परंपरागत दलित गीत

उपर्युक्त पृष्ठभूमि के आधार पर परंपरागत दलित गीत की प्रमुख एवं अर्थवत्ता पर चर्चा करना संगत ही नहीं अनिवार्य लगता है। संसार में जब से मानव है तब से उसकी

---

१ Encyclopedia, Britanica (Ballad) p. 993.

अभिव्यक्ति भी है। उनका जीवन प्रकृति से प्रेरित, प्रकृति में ही समर्पित, प्रकृति की ताल-लय के साथ गुज़र कर, प्रकृति में ही लीन होकर जीते थे। ऐसे मानव जीवन के सभी नैसर्गिक भाव गीत के रूप में आये होंगे। ये गीत ही मानव को जगाकर उसके विकास का प्रयत्न करता है। इस प्रकार के गीत लोकगीत के नाम से जाना जाता है। दलित कविता की भावभूमि का जड़ लोकगीत है; दलित गीत है। दलित वर्ग के समाज, संस्कृति, अभिव्यक्ति, आर्थिक दशा सब दूसरों से अलग होने के कारण लोकगीत से दलित गीत को अलग किया जा सकता है, क्योंकि उसका सामाजिक आधार है। इन्हीं गीतों के माध्यम से दलित वर्ग के भाव, स्वानुभूति ठीक तरह समझ सकते हैं। श्री ओंप्रकाश वाल्मीकि ने दलितों की पृथक संस्कृति मानी है। वे कहते हैं- ''भारतीय संस्कृति, हिन्दू संस्कृति, वैदिक संस्कृति, मुस्लिम संस्कृति, पाश्चात्य संस्कृति, इत्यादि की तरह दलित संस्कृति भी एक अलग प्रत्यय माना जाना चाहिए।''[१] उच्च और निम्न वर्ग के संस्कृति, सभ्यता, आचार-विचार, रहन-सहन, खान-पान, दुख, दर्द, स्वानुभूति आदि अलग होती है। दलित वर्ग के मौखिक अभिव्यक्ति उनके लोकगीतों में देखा जा सकता हैं। गीतकार जिस समाज या परिस्थिति से आता है, उस समाज की स्थिति को गीतों में व्यक्त करता हैं। दलित गीतों में जो विषय है वही दलित कविता का भावभूमि है। उदाहरण के लिए दलित स्त्रीयों पर होने वाले अत्याचार के अनेक चित्र इन गीतों में मिलते हैं। जैसे पेड़ काटने के लिए तो कभी जाति-झगडा समाप्त करने केलिए किसी दलित स्त्री को बली देनी पड़ती है।

''जाति झगड़ा खत्म करने
मुझे अपनी नीली को बलि देना है चबूतरे पर
देव बलि के लिए नीली को मारना है मुझे''।[२]

---

१ ओमप्रकाश वाल्मीकि, *दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र*, पृ. ४७.

२ डॉ. ए. अच्युतन, *मलयालम में दलित साहित्य दृष्टि और सृष्टि*, पृ. ६०.

इसमें निसहायवस्था और करुणा भाव ही इस दलित गीत का भावभूमि बनता है। समाजशास्त्र की दृष्टि से समाज की भयानक वातावरण का चित्रण हमारे सामने आया है। जाति झगडे को खतम करने के लिए अपनी पत्नि को बली देना है। यह कहाँ की रीती है? यह कौन सी संस्कृति है? जो मानव को जान-बूझकर मारने का नियम रखा गया है।

मेहनत संस्कार दलितों की संस्कृति का मूल आधार है। वे मिट्टि के पुत्र है, मिट्टि ही उसका सबकुछ है। यह पंक्तियाँ हैं -

''अपने नन्हें बच्चों के साथ औरत भी खेत में हैं
दादी माँ भी खेत में हैं/आदमी और सब हैं खेत में''[१]

दलित वर्ग का आर्थिक यथार्थ प्रतिबिम्बित करने वाला गीत भी है। सेखराम-शास्त्री का भोजपूरी लोकगीत इसका उदाहरण है-

''देसवा में महंगी मइलि बेतुमार बा।
पाव भरक दाल-चार, आध सेर का गेहुआ
खोजला पर मीलत नइस्वे भूजे खातिर महुआ
मकई क दाना भइया बसिया हमार बा-देसवा में''[२]

इस गीत में उस समय की प्रत्यक्ष समाज का चित्रण है। देश में महँगाई बढ़ रही है। दलितों का जीना ओर भी संकट में हो गई है। उनके अभाव उन्हें आराम से जीने नहीं देता। रघुनाथ प्यासा का गीत उदाहरण के रूप में-

---

१ डॉ. ए. अच्युतन, *मलयालम में दलित साहित्य दृष्टि और सृष्टि*, पृ. ६०.

२ डॉ. रजतरानी मीनु, *हिन्दी दलित कविता*, पृ.२२.

''भूखे पेट न चलते हाथ/चरखा कैसे कातूं रे?
कल परधान आय यूं बोलया मुफ्त ज़मीन दिला दूं
भाषण में हमदर्दी फिर भी/औरत संग बलात
भुखे पेट चले नहीं हाथ/ चरखा कैसे कातूं रे''[१]

इस गीत में दलित वर्ग के भूख, प्यास, दरिद्रता और जीवन की जिजिविषा का कटु अनुभव को व्यक्त किया है। साथ में दलित औरत का शोषण शारीरिक एवं मानसिक रूप में भी हो रहा है। इस वेदनाजन्य परिस्थिति का उल्लेख किया है-

''सुखियाँ-दुखियाँ दोनो बहिनियाँ
दोनों बधाबा लै आयी हरे राजा बीरन/सुखिया ले आई गुजहर गोड़हरा,
दुखिया दूब कै पैड़ा हरे राजा बीरन''।[२]

इस गीत में सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति को व्यक्त किया है।

श्रम-कार्य करते समय गाये जाने वाले गीत को श्रम गीत कहते हैं, स्त्री-पुरुष इन गीतों की लय एवं भावभूमि में लीन हो जाते हैं-

''अन्धे आँख जरा तो खोलौ
मत पर परीअ पथरिया नाँय''[३]

ये कजरी गीत पुरुष द्वारा गाये जाते हैं। कुछ गीत ऐसे भी है जो जाति विशेष द्वारा गाया जाता है-

---

१ डॉ. रजतरानी मीनु, *हिन्दी दलित कविता*, पृ. १२४, १२५.

२ विद्या चौहान, *लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि*, पृ. ५३.

३ डॉ. महेश गुप्त, *लोक साहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन*, पृ. १४६.

''कथा उचारन होता है सुनो वीर हनुमान,
आसन आनेके लीजिऔ पवनपुत्र तुम अंजन के नंदलाल''।[१]

दहेज प्रथा एक सामाजिक एवं पारिवारिक समस्या है। इसका शिकार नारी है। इसलिए बेटी का जन्म होने पर मुसीबतों का शुरुआत होती है-

''जिद्रिदन लाडो तेरा जनम हुआ, जनम हुआ है
हुई बाज़र की रात''[२]

दलितों में अनेकों का संबन्ध खेती बाडी से है, जो हमेशा दूसरों के लिए काम करता है। दलित गीतों में शोषित कृषक जीवन का दयनीय चित्रण देखने को मिलते हैं-

''देसवा के सब धन धान, विदेसवा मे जाय रहे
महंगी पड़त हर साल कृषक अकुलाए रहे''।[३]

जाति सम्प्रदाय एवं अस्पृश्यता के खिलाफ अनेक गीत मलयालम दलित गीतों की सम्पदा में मिलते हैं। छुआछूत की प्रथा का व्यंग्यात्मक प्रस्तुतीकरण है -

''इंदेन्दु तीण्डलाणु तम्पुरान्टे तीण्डलु/मारडा मारडाञ्ट्ड मारडा
मारडा मारडा पाक्कनार मारडा।/अकासेतेबैताल आकासम् तोलयुमो
पिन्नेन्तु तीण्डलाणु तम्पुरान्टे तीण्डलु/उप्पुकुत्या मुलक्कमो वेलीमें पडरुमो
पिन्नेन्तु तीण्डलाणु तंपुरान्टे तीण्डलु।

इसका मतलब इस प्रकार है- यह कैसी छुआछूत अभिजातों की ये छुआछूत। हट रे..... हट- सामने से हट रे हट तू.... पाक्कनार सामने से हट जा तू। आसमान मे तीर

---

१ डॉ. महेश गुप्त, *लोक साहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन*, पृ. १५१.

२ डॉ. सुरेश गौतम, *भारतीय लोकगीत सांस्कृतिक अस्मिता*, पृ. ५५.

३ वही, पृ. ५६.

चलाने से, आसमान क्या बिधेगा फिर यह कैसी छुआछूत अभिजातों की यह छुआछूत। बोने से नमक क्या उगेगा, बाड़े में फैलेगा। फिर यह कैसी छुआछूत अभिजातों की यह छुआछूत।''[१] प्रस्तुत दलित गीत में उस समय की अस्पृश्यता को बहुत गहराई से व्यक्त किया है, जो आज के संदर्भ में भी प्रासंगिक है।

भारतीय समाज में जाति एवं वर्ण व्यवस्था के खिलाफ लड़ाई अब भी जारी है। इस संदर्भ में हम जानते हैं कि भारत में दलित क्रांति के उन्नायक डॉ. बाबा अंबेडकर ने हिन्दू धर्म को छोड़कर बौद्ध धर्म को स्वीकार करने का आह्वान किया था। स्वाभाविक है कि कुछ गीतों का विषय हिन्दू धर्म त्यागकर बौद्ध धर्म अपनाने के संबंध में है-

''हिन्दू धरम छोड़ के करा बुद्ध क बतिया/बिपतियां ऐसे टारे से टरी''।[२]

इस तरह जीवन के हर पहलू से संबन्धित सच्चाई दलित गीतों के विश्लेषण में देखा जा सकता हैं। लोकगीत के अंतर्गत और भी ऐसा बहुत दलित गीत है जो दलित जीवन के जिजिविषा का द्योतक है। उसे दलित गीत ही कहना उचित है। दलित गीत के अन्तर्गत ऐसा भी बहुत गीत है जो जाति विशेष द्वारा गाये जाते हैं। ऐसा गीतों को जाति गीत कहते हैं। जैसे अहीरों के गीत, धोबियों के गीत, चमारों के गीत आदि। उल्लेखनीय है कि अहीर, चमार, कहार, धोबी सब समाज के निचले स्तर के लोग है। भारतीय समाज में दलितों के अन्तर्गत ज़्यादातर इसी जात के लोग हैं। अतः इन्हीं जाति गीतों को दलित गीत कहना ही उचित लगता है। धार्मिक गीतों के संबंध में डॉ. जोशी ने कहा - ''किसी जाति विशेष द्वारा गाया जानेवाला गीत, जिसकी विषयवस्तु पौराणिक आख्यान से सम्बन्धित है, उस गीत को जाति गीत के अन्तर्गत रखना ही उचित होगा धार्मिक गीत के

---

१ डॉ. ए. अच्युतन, *लोक नाट्यम एवं संस्कृति*, पृ. ५९.

२ बयान-फरवरी, २००९, पृ. ४७.

अन्तर्गत नहीं''।[१] उसी प्रकार डॉ. सत्य गुप्ता का कथन है, ''क्योंकि कुछ गीत कुछ जाति विशेष द्वारा ही गाये जाते हैं। जैसे 'चमार राग'। इसके नाम से ही स्पष्ट है यह केवल चमारों द्वारा ही गाया जाता है''।[२]

'अहीरों के गीत' - प्रायः अहीरों के कुल देवता की पूजा के समय गाया जाता है-

''झलरी भइ रे निविया झलडी/यानन पे निविया झलडी राहे''[३]

'कहारों के गीत' जनपद में 'कहार' जाति को 'धीमर' भी कहा जाता है। धीमर जाति के व्यक्ति सम्पन्न घरों में कुएँ से पानी आदि लाने का कार्य करते हैं। इनके गीतों की विषय वस्तु विविधता से युक्त होती हैं। अतः यह गीत ताल-लय समन्वय है।

''कंकरिया काहे मारी रे/ओ भीमखाले लौंडा''।[४]

'धोबियों के गीत' -घाट पर कपडे दोते समय वे गीत गाते हैं-

''छिओ राम छिओ, छोओ राम छिओ
आँगिया चुलिया, मईली रे हुई गई /बिन धोबिन को गाँउँ''।[५]

जाति विशेष पर आधारित परंपरागत दलित गीत जैसे केवट, मल्लाह, मुसहर, अहीर, चमार, धोबी, पासी, नाई, भड़भूजा, गाडेरिया, कुम्हार, कहार, भंगी आदि गाँव के प्रत्येक जातियों की अपना अपना गीत हैं। इस तरह के गीत में दलितों की वेदना के साथ उसके प्रतिरोध का स्वर भी हैं।

---

१ महेश गुप्त, *लोक साहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन*, पृ. ११७.

२ वहीं.

३ डॉ. महेश गुप्ता, *लोक साहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन*, पृ. १४९.

४ वही, पृ. १५०.

५ वही, पृ. १५०.

उपर्युक्त विचार और विश्लेषण के आधार पर कह सकते हैं कि लोकगीत में दलितों के गीत और अभिव्यक्ति का पहचान अलग ही है। इसलिए इसे दलित गीत ही कहना चाहिए। यह दलित गीत ही दलित कविता का मूल आधार है। लोकगीतों की तरह दलित गीत भी दलित जीवन की विभिन्न रागात्मक वृत्तियों की अभिव्यक्ति होती है। इस अभिव्यक्ति के लिए जिस शैली का आश्रय लिया जाता है वह लयात्मक होती हैं। यह मानव-सभ्यता और संस्कृति के विकास पर प्रकाश डालते हैं। दलित गीत किसी एक जाति या व्यक्ति की धरोहर नहीं होते। ये तो दलित समाज में स्वतः ही उत्पन्न होते हैं और स्वतः ही उस समाज में एक पीढ़ी से दूसरी और तीसरी-चौथी पीढ़ी तक भिखरते-गूँजते चले जाते हैं। यह भाषा के प्रवाह के साथ बहती चली जाती है। ये जहाँ भी गाये जाते हैं वहाँ के शब्दों और उच्चारणों को इसलिए अपनाते चलते हैं कि उस मिट्टी के साथ उसका अटूट संबन्ध है। ऐसा होने से यह पता नहीं चलता है कि कौन-सा गीत कहाँ, किस परिस्थिति में उत्पन्न हुआ। परंपरागत दलित गीतों से हमें दलितों के इतिहास और परंपरा, घटनाएँ, रीति रिवास, प्रकृति और संस्कृति का भी परिचय प्राप्त कर सकते हैं। दलित गीतों में जीवन के प्रति दलितों के मनोभाव ही व्यक्त होते हैं। अतः परंपरागत दलित गीत दलित कविता की भावभूमि के प्रमुख आधार है।

२.३ हिन्दी दलित कविता का ऐतिहासिक परिवेश

उपर्युक्त दलित कविता की भावभूमि और परंपरागत दलित गीत के आधार पर दलित कविता की चर्चा संगत लगता है। दलित कविता की अपनी पहचान है, इतिहास है और संस्कृति है जो स्वाभाविक रूप से उस समाज से जुडी रहती है। अतः दलित समाज के बिना दलित कविता संभव नहीं है। दलित समाज का इतिहास का एक समाजशास्त्र है जिसमें पवित्र-अपवित्र, स्पृश्य-अस्पृश्य आदि तत्वों का महत्वपूर्ण स्थान है। दलित समाज को भारत के सामाजिक व्यवस्था ने अस्पृश्य और अंत्यज माना है। इसलिए अंत्यजों की कविता में वही पृष्ठभूमि आ जाती है जो सवर्णों की कविता में नहीं मिलता है। दलित

कविता के बृहत परिवेश में भारतीय सामाजिक व्यवस्था के जाति और वर्ण ही प्रतिनायक के रूप में अवतरित होते हैं।

दलित कविता के आंरभ और विकास की चर्चा के पहले दलित कविता को परिभाषित करना संगत ही नहीं अनिवार्य है।

२.३.१. दलित कविता की परिभाषा

शब्दों पर विश्वास तथा संविधान के प्रति निष्ठा, महात्मा गौतम बुद्ध, बाबा साहब अंबेडकर, महात्मा फुले पर श्रद्धा आदि दलित कविता का आधार है। जातीयता, छुआछूत, उच्चनीचता को नकारने वाली यह कविता मानवता की रक्षक है। मानव एक है, मनुजता की आवश्यकता है यही धर्म मानने वाली आज का दलित कविता विद्रोही होकर भी एकता की पक्षधर है। दलित कविता दया की भीख नहीं माँगती बल्कि अपने अधिकार की पुकार करती है। दलित जीवन उनकी समस्या, बाबा साहब का संदेश, महात्मा गौतम बुद्ध का दर्शन, समता की स्थापना, जीने की प्रेरणा, विद्रोह, संघर्ष, समानता, एकता, दलितोद्धार, दलित अस्मिता, जातीयता का विरोध, संविधान आरक्षण आदि उसकी विशेषताएँ होती हैं। दलित कविता मानव समाज की भेदभाव रहित, उच्च-नीचता से हटकर सामाजिक क्रांति करना चाहता है। यह 'सर्वे भवन्तु सुखिना सर्वे सन्तु निरामया' की लोकहित सर्वोदय की कामना करता है। अतः दलित कविता आज के संवेदनशील, भावुक कवि के मन का दस्तावेज है।

दलित कविता भारतीय समाज को मानवीय मूल्यों के प्रति सजग बनाता है। सामाजिक चेतना एवं परिवर्तन की दिशा दिखाते हुए नव समाज की स्थापना करने का प्रयास करता है। यह जन्मसिद्धान्त, वर्णाश्रम व्यवस्था, मनुवादी चिंतन परंपरा, झूठी धार्मिक मान्यता का खंडन करता है। अतः अतीत का अनुभव, वर्तमान की निष्ठूरता, भविष्य की चिंता दलित कविता का केंद्रीय विषय है। हाशिये पर खड़ा यह वर्ग अब

साहित्य के केंद्र में है, जिसका प्रेरणा स्रोत बाबा अंबेडकर दर्शन है। यह कविता केवल विद्रोही नहीं वह आत्मबोध, आत्मचेतना और सामाजिक परिवर्तन का चिंतन भी है। दलित कविता को परिभाषित करने का प्रयास बहुत से दलित गैर दलित कवि और विद्वानों ने किया है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं- "जीवन संघर्ष में आदमी का सहारा बनकर जो हौसला दे, वही तो कविता है। कविता कला से ज्यादा जीवन की अदम्य लालसा, गतिशीलता की संवाहक है।"[१] दलित चिंतक कंवल भारती ने वर्तमान दलित कविता के बारे में यों कहा- "यह वह कविता है, जिसे शोषित, पीड़ित, दलित अपने दर्द को अभिव्यक्त करने के लिए लिखता है। यह वह कविता है, जिसमें दलित कवि अपने जीवन के संघर्ष को उतारता है। यह दमन, अत्याचार अपमान और शोषण के खिलाफ युद्धगान है। यह स्वतन्त्रता समानता और भातृत्व -भाव की स्थापना और लोकतन्त्र की प्रतिष्ठा करती है, इसलिए इसमें समतामूलक और समाजवादी समाज की परिकल्पना है। संक्षेप में दलित कविता जाति और वर्ग-विहीन समाज की स्थापना करने वाली दलितों द्वारा लिखी गयी क्रान्तिकारी कविता है।"[२] डॉ. सत्यप्रेमी ने दलित कविता की व्याख्या दी है- "समकालीन दलित कविता शोषित, प्रताड़ित, अपमानित दलित जन साधारण की आवाज़ है।"[३] दलित साहित्य के प्रतिष्ठित रचनाकार मोहनदास नैमिशराय का कहना है- "दलित कविता एक सामाजिक आन्दोलन का सामाजिक प्रतिफलन है। अन्य काव्यधाराओं और साहित्यिक परंपराओं की अपेक्षा उसका सीधा सम्बन्ध जीवन से

---

१ ओमप्रकाश वाल्मीकि, *दलित चेतना,* (कविता)पृ. ३

२ कंवलभारती, *दलित कविता का सघर्ष,* पृ.१३.

३ जयप्रकाश कर्दम, *दलित साहित्य की वार्षिकी* २००९-२०१०-, पृ.११५

४ मोहनदास नैमिशराय, *दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र, पृ.५८*

हिन्दी के दलित साहित्यकार डॉ. तेज सिंह का कहना है- "दलित साहित्य की शुरूआत कविता से होती है, और आज भी कविता उसका प्रमुख विधा है। आज की दलित कविता अपनी परंपरा को आत्मगत करके विकसित हुई है। उन्हीं के रचनात्मक अनुभूति में बदलकर दलित कविता को परिपक्वता के मुकाम तक ले गई है।"[१] गैर दलित लेखिका विमल थोरात लिखती है कि- "दलित कविता व्यक्तिगत अनुभवों से सम्पृक्त होने के साथ ही समूह-मन के अनुभवों की अनुभूति भी है।"[२] प्रो. तुलसी राम का कहना है - "दलित काव्य विधा ने कल्पना के उन तमाम चढ़ौनों को उतार फेंका है, जिन्हें परम्परागत कविता का मूल स्रोत मान लिया गया था। दलित कविताओं में सामाजिक यथार्थ वैसे ही निहित होता है, जैसे प्लास्टिक से घिरे तारों में विद्युत धारा"।[३] डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी लिखते हैं- "मेरी दृष्टि में आधुनिक दलित कविता आक्रोश, विद्रोह और संघर्ष के सातत्य सौंदर्य की कविता हैं। अतः दलित कविता दलित कवियों के सामूहिक चीत्कार, गूँगों की आवाज़ और आक्रोश की अभिव्यक्ति है।"[४] दयानन्द बटोही का विश्वास है कि- "दलित कविता आज के माहौल को चकाचौंध नहीं करती बल्कि नई ऊर्जा देती हैं।"[५]

भारतीय संदर्भ में दलित कविता वर्णव्यवस्था का विरोध करके समानता एवं मानवता को समाज में स्थापित करना चाहती है। इस प्रकार सृजन को अपना हथियार बनाकर आज दलित कवि आगे बढ़ रहे हैं। दलित कविता ने डॉ. बाबा साहेब अंबेडकर

---

१ जयप्रकाश कर्दम, *दलित साहित्य की वार्षिकी,* २००६, पृ.१७

२ मोहनदास नैमिशराय, *दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र*, पृ.११७

३ प्रो. तुलसीराम, (वह दिन ज़रूर आएगा), आवरण

४ डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, *दलित साहित्य सृजन के संदर्भ,* पृ.१५५

५ रमणिका गुप्ता, *दलित चेतना : साहित्य एवं सामाजिक सरोकार*, पृ.१०८

के व्यक्तित्व, कृतित्व और चिन्तन तथा विद्रोह की पूर्व परम्परा से प्रेरणा लेकर दलित जीवन के विविध अनुभवों को अभिव्यक्त करके एक नया आयाम दिया है।

२.३.२ हिन्दी में दलित कविता का आरंभ और विकास

दलित कविता समय की ज़रूरत है और वह समय के अनुरूप ही अपने आकार-प्रकार (शिल्प) में ही नहीं, संवेदना में भी परिवर्तन करती रहती है। चूंकि कविता प्रकृत है, अतः प्रकृति की ही तरह परिवर्तनीय है। दलित कविता की शुरूआत परंपरागत दलित गीत से मानना ही उचित रहेगा। कई दशकों के बाद दलित और दलित साहित्य आज जिस मंजिल पर पहुँचा है, उसमें कविता का योगदान सबसे प्रमुख रहा है। दलित कविता की पृष्ठभूमि, प्रस्फुटन संवेदना और वर्तमान स्थिति की पड़ताल करने के लिए थोड़ा पीछे जाना पड़ेगा क्योंकि उसकी शुरूआत दलित गीत से हुई थी। हिन्दी प्रदेश में जिस तरह गीतों की परंपरा दिखाई देती है उसी प्रकार भारतीय संदर्भ में भी अन्य प्रादेशिक भाषाओं में भी गीत की सुदृढ़ परंपरा देखने को मिलती है। जहाँ तक दलित गीत का सवाल है, दक्षिण भारत के संघकालीन कृतियाँ पूरे के पूरे गीत में ही रचे गये हैं।

२.३.२.१ संघकालीन कृतियाँ

तमिल संघियों के गीतों को बाद में तमिल पण्डितों द्वारा लिखित रूप में प्रकाशित किया है। इन अठारह कृतियों को 'संघकृतियाँ' नाम से जाना जाता है। दो हज़ार साल या उससे पहले दक्षिण भारत की स्थिति क्या थी, वहाँ के निवासियों का आचार-विचार, जीवन-शैली, खेती, व्यवसाय, आचार, भाषा, साहित्य कला, संस्कार, राजा-प्रजा, जाति, समाज में स्त्रियों का स्थान, प्रेम, भक्ति, युद्ध, जल, जंगल, पशु-पक्षी आदि सब जानकारियों का पूर्ण रूप संघकालीन कृतियों के छोटे- छोटे गीतों में देखने को मिलते हैं। ''संघकालीन अठारह कृतियों को दो भागों में विभाजित किया है। अहम् (आन्दरिक) काव्य तथा पुरम (बाहरी) काव्य। उल्लेखनीय है कि प्रेम, भक्ति आदि हृदय सम्बन्धी बातें

अहम में तथा युद्ध, शासन, नीति, दान, उपदेश, यश आदि बातें पुरम के अन्तर्गत आते हैं।''[१] अहम संग्रह में आठ किताबें है, इसे एट्टुतोगै (आठ गाथा संग्रह) तथा संग्रह में दस किताबें इसे पत्तुपाटु (दस गीत) नाम से जाना जाता है। ''ऐंगुरुनूरु नामक कृति ओरम्बोकियार, अम्मूवनार, कपिलर, ओदालान्दैयार और पेयनार नाम के पाँच महाकवियों ने रचा है। कुरुचिं या पहाड़ी क्षेत्र का प्रकृति वर्णन कपिलर ने किया है। पालै या बालू प्रदेश का वर्णन ओदलान्दैयार ने किया है। मुल्लै या चरागाह प्रदेश के बारे में पेयनार ने गाया है। नैदल या तटवर्ती प्रदेश का वर्णन अम्मूवनार ने किया है। मरुदन या कृषि प्रदेश की विशिष्टता ओरम्बोक्कियार की कविताओं में मिलती है। पाचों प्रदेशों के जनजीवन एवं संस्कार इसमें वर्णित हैं। इसमें प्रत्येक संस्कार-भाग के दस प्रकरण होते हैं, प्रत्येक प्रकरण में दस कविताएँ होती हैं। यह चेर नरेश चेरलिरुम्पोरै के तत्वावधान में कूड़लूर किळार द्वारा संकलित किया गया था।''[२] संघकृतियों में एट्टुत्तोगै (आठ ग्रन्थ संग्रह) के आठवाँ ग्रन्थ है पुरनानूरु। इसमें चार सौ गीत है लेकिन ३९८ गीत ही आज अपलब्द हैं। १५३ कवि और कवयित्रियाँ इसका गायक है। उसमें १६ कवयित्रियाँ भी हैं। इससे यह पता चलता है कि उस समय स्त्रियों के लिए शिक्षा एवं साहित्य के दरवाज़ा बंध नहीं थे। ज्यादातर गीत अव्वयार की है, जो नेडुबांर आंजि की प्रशंसा करके गायी थी। ऐसा कहा जाता है कि अववय्यार से पहले काकैपोडिनियार और नचेलैयार नामक कवयित्रियाँ भी जीवित रहे थे। पतिट्टिप्पतु संघकालीन कृति है जो दस राजाओं के बारे में दस कवियों के दस गीत संग्रहों का संकलन हैं। उल्लेखनीय बात यह है कि इस गीत के रचनाकार दलित जात के रहे हैं। ''चिल्प्पतिकारम के रचयिता इलंकोवडिकल ने कल्याणपाट्टु, अम्मानपाट्टु (शादी के गीत), ऊंजाल पाट्टु, पन्तडिपाट्टु, (गेंद खेलते समय गाये जाने वाले गीत), कुरत्ति पाट्टु (कुरवन की स्त्री कुरती), एरमंगलम पाट्टु

---

१ कवियूर मुरली, *पुरनानूर एक अध्ययन*, (मलयालम), पृ. ३२

२ डॉ. ए. अच्युतन, *लोक नाट्य एवं संस्कृति*, पृ. ५६.

(खेती बाड़ी के समय गाये जाने वाले गीत) आदि की ओर संकेत किया है।''[१] ये सारे गीत देशी भाषा में हैं, ताल-लय बद्ध है। इसी प्रकार मराठी, गुजराती, पंजाबी, कन्नड़, मलयालम आदि भाषाओं के साहित्यिक इतिहास में भी इस तरह के गीत देखने को मिलेगा। स्वाभाविक रूप से मानना पडेगा कि दलित कविता का आरंभ इन्हीं दलित कवियों की रचनाओं से हुई हैं।

हिन्दी साहित्य के इतिहास पर नज़र डाले तो हमें दिखाई देता है कि भक्ति आन्दोलन का मूल स्वर जातिवाद विरोधी है, और वह आन्दोलन निम्न जातियों से आए सन्तों ने चलाया। मैनेजर पाण्डेय ने कहा है- "हिन्द क्षेत्र में जातिवाद के विरोध का स्वर भक्ति आन्दोलन से भी कुछ पीछे से मिलता है। बौद्ध परम्परा के सिद्धों ने ब्राह्मणवाद, धार्मिक पाखण्ड, जातिप्रथा आदि के विरोध का स्वर बुलन्द किया, जिसकी प्रतिध्वनि नाथ समुदाय के कवियों की रचनाओं में भी मिलती है। सिद्ध कवि सरहपा की रचनाओं से कबीर की तुलना कीजिए तो कबीर सरहपा के सच्चे उत्तराधिकारी साबित होंगे।"[२] भक्ति आन्दोलन में रैदास, कबीरदास, चोखामेला, तुकाराम जैसे कवियों कवियों ने अपनी रचनाओं में दलित समुदाय की आकांक्षाओं को वाणी दी। दलित समुदाय से अलग इन कवियों की रचनाओं में यद्यपि प्रार्थना का स्वर प्रधान है, लेकिन उसके साथ ही जाति व्यवस्था को तोड़ने का अनुरोध और आग्रह भी है।

२.३.३ नाथ, सिद्ध एवं संत साहित्य और दलित कविता का मूल स्वर

धर्म के नाम पर एक वर्ग को सामाजिक, मानसिक और आर्थिक शोषण सहते हुए भारत में शताब्दियाँ बीत गई। लेकिन जैसे ही उस वर्ग में ज़रा-सी चेतना आई, उसके

---

१ डॉ. ए. अच्युतन, *लोक नाट्य एवं संस्कृति*, पृ. ५७-५८.

२ डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, *दलित साहित्य सृजन के संदर्भ*, पृ.११२

विद्रोह का विस्फोट हुआ। मोटे तौर पर दलित कविता उसका ही परिणाम है। यद्यपि हिन्दी में इस चेतना का आरंभ आदिकालीन सिद्ध-नाथ साहित्य में मिलता है। सिद्धों में सरहपा, शबरपा, लुइपा, डोंभिपा, कण्हपा आदि का नाम मुख्य है।

सरहपा ने पाखंड और आडंबर का विरोध किया तथा सेवा को महत्व दिया-

"नाद न बिंदु न रवि न राशि मंडल/चिअराअ सहाबे मूकल।
अजुरे अजु छाडि मा लेहु रे बंक/ निअहि बोहिमा जाऊ रे लांक"।[१]

सिद्ध कण्हपा भी भारतीय रूढ़ियों का खण्डन किया-

"आगम वेअ पुराणे, पण्डित मान बहंति।
पक्क सिरिकल अलिस, जिम वाहेरित भ्रमयंति।।[२]

गोरख नाथ को नाथ साहित्य के आंरभ कर्ता माने जाते हैं। इसके अन्य कवि है, चौरंगीनाथ, गोपीचंद, चगुकरनाथ, भरभरी, जलंघ्रीपाव आदि प्रसिद्ध है। गोरखनाथ शूद्रों को भी शिक्षा देने के पक्षधर थे। गोरखनाथ के कई सिद्ध निम्नवर्ग के भी हैं, वे कहते हैं-

"वैसन्दर मुनि मुषि ब्रह्म जो होते, सुद्र पढ़ाऊँ बानी।
असंवेद विधि ब्रह्म जग निपजा मैंने जुगाति जमाया पानी"[३]

मन्दिर-मस्जिद के सम्बन्ध में वे कहते हैं-

"हिन्दु धयावे देहूरा, मुसलमान मसीत।
जोगी धयावै परम पद जहाँ देहुरान मसीत"।[४]

---

१ डॉ.नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल (सं.), *हिन्दी साहित्य का इतिहास*, पृ. ५९.

२ वहीं, पृ. ६०.

३ माताप्रसाद, *हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा*, पृ. ४०.

४ माताप्रसाद, *हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा*, पृ. ४०.

सिद्धादि तांत्रिक संप्रदायों की सामान्य प्रवृत्तियों के बारे में बताते हुए डॉ. शिवकुमार शर्मा का कहना है कि, "प्रत्येक संप्रदाय में वैदिक देवताओं के प्रति अनास्था प्रकट की गई है और उनके स्थान पर स्थानीय देवताओं और उनकी असंस्कृत पूजन पद्धतियों को प्रक्षय दिया गया है। सब संप्रदायों ने ब्राह्मवाद की पौराणिक रूढियों का खण्डन और वेदों के प्रति असम्मान दर्शाया है।"[१] सिद्ध साहित्य में बौद्ध तांत्रिक सिद्धांतों को मान्यता मिली थी। "इसके चौरासी सिद्ध रचयिताओं में कुछ शीलपा, छत्रपा, ततैया, कुसुलिया महिलापा, राहुलापा, धीकरिया, चेकुलपा, निर्गणपा, भिखनपा, कलकलपा, घहुरिपा, कमलपा, सर्वभक्षण, पुतुलिया, उपानहपा, अनगपा आदि अधिकांश सिद्ध जन्म के शूद्र क्षत्रिय थे। कुछ सिद्धों नें अपने समय की परिस्थितियों के परिणामस्वरूप अपनी कविताओं में विद्रोह का स्वर भर दिया था"।[२] समाज के सबसे निचले स्तर की जनता भी वर्ण-जाति के विरुद्ध आवाज़ उठाया था।

यद्यपि हिन्दी में इस चेतना का आरंभ पहले ही हुआ है। लेकिन संगठित एवं व्यवस्थित स्वरूप मध्यकाल में ही देखने को मिलता है। मध्यकाल में हिन्दू धर्म कर्मकांड तथा अंधविश्वास के जाल में थे। शूद्रों को अछूत एवं सछूत दो भागों में विभक्त कर दिया तथा अनेक जातियों में बांट दिया गया। ठीक उसी समय भक्ति आन्दोलन के कुछ साहसी संत सुधारक आगे आए जिन्होंने सामाजिक परिवर्तन में योगदान दिया। इनमें मुख्य है- संत रैदास, कबीर दास, नामदेव, गुरु नानक देव, संत तुकाराम आदि। संतों ने मानव और मानव के बीच समता का समर्थन किया। उन्होंने 'ईश्वर की दृष्टि में सब बराबर है' का प्रचार किया और वर्गहीन, वर्णहीन तथा जातिविहीन समाज के निर्माण में योगदान दिया।

---

१ डॉ. शिवकुमार शर्मा, *हिन्दी साहित्य:युग और प्रवृत्तियाँ*, पृ. ३२.

२ डॉ.बलवन्त साधु जाधव, *प्रेमचन्द साहित्य में दलित चेतना*, पृ. ५५.

संत रैदास का आर्विभाव ऐसे समय में हुआ जब देश के चारों तरफ जाति-पांति, उँच-नीच की दूषित मानसिकता दूर-दूर तक फैली हुई थी। इस मानसिकता को दूर करने केलिए तथा एक स्वस्थ समाज का निर्माण के लिए उन्होंने कठिन प्रयत्न किया। उनकी वाणी इसका प्रमाण है-

''एकै माटी के सभै भाडे, सब का एकै सिरजनहार।
रैदास व्यापै एकौ घट भीतर, सभ को एकै घडै कुम्हार।
रैदास एकै ब्रह्म का होई रहयों सगल पसार।
एकै माटी सब घट स्रजै, एकै सभ कूं सरजनहार।''[१]

रैदास की जाति चमार थी। इस तथ्य को उन्होंने बार-बार अपनी रचनाओं में स्पष्ट किया है-

''नागर जना मेरी जाति विख्यात चमार/कहे रैदास खलास चमार।''[२]

यही नहीं रैदास ने अपनी वाणी में खुलकर अपने पेशे और जाति का वर्णन किया है-

'जाके कुटुम्ब के ढेढ़ सभ ढोर ढोत/फिरहिं अजुह बनारसी आस-पास'[३]

संत-कवियों में अधिकांश तथाकथित निम्न जातियों से आए थे। रैदास ने अपनी सामाजिक स्थिति का चित्रण दो साखियों में इस प्रकार किया है -

''जा देष्या धिन उपजै, नरक कुंड महं वास।
प्रेम भगति सौ ऊबरै, प्रकट जान रैदास।
रैदास तू कांवचि फली, तुझं हुं न छिवे कोई।
तै निज नावं न जाणियाँ, बला कहाँ ते होई।''[१]

---

१ डॉ.एन सिंह, रैदास ग्रन्थावली, पृ. ९०.

२ डॉ.एन सिंह, रैदास ग्रन्थावली, पृ. ८५.

३ वहीं, पृ.५०

रैदास जैसे लोगों को देखते ही शेष समाज में घृणा व्याप्त हो जाती है, और उसे रहने के लिए गाँव का बाहरी तथा अंतिम हिस्सा ही हमेशा उपलब्ध होता है। इसलिए रैदास कौंच की फली जैसा अछूत को मानते हैं। ऐसे लोगों के लिए शिक्षा, ज्ञान और उपासना के सब द्वार बंद थे। ऐसे संदर्भ में संतों ने प्रभु को अपने मन के अंदर ढूँढ़ा और पाया तथा हिंदू धर्म की असमानता पर आधारित वर्णव्यवस्था और पाखंड पर चोट की। संत कवि रैदास जाति-पांति की विचारधारा को नकारते हुए सामाजिक परिवर्तन की विचारधारा को गति प्रदान करते हैं। जब भारत विदेशियों के हाथों से गुलाम हो चुका था उस स्थिति में रैदास ने आन्तरिक विषमताओं से ही नहीं बाहरी शक्तियों से भी लडने की प्रेरणा थी-

''पराधीनता पाप हे जान लेहु रे मीत।
रैदास दास प्रधीन सौ करे है प्रीत।''[२]

संत रैदास ने तो १५ वीं सदी में ही कह दिया था कि-

''जनम जात मत पूछिये, का जात अरु पात
रैदास पूत सभ प्रभु के, कोउ नहिं जात कुजात।
जात पात के फेर महि, उरझि रहई सब लोग
मानुषता कूं खात हुइ, रैदास जात का रोग''।[३]

संत रैदास की इन पंक्तियों से उनके व्यापक और मानवतावादी दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। रैदास भगवान को अपने मन के अंदर ही पूजा करते हैं। इसलिए रैदास कहते हैं –

''का मथूरा का द्वारिका का काशी हरिद्वार।

---

१ डॉ.एन सिंह, *रैदास ग्रन्थावली,* पृ. १३७.

२ डॉ.एन.सिंह, *रैदास ग्रन्थावली,* पृ. १२८.

३ वही, पृ. १५२.

रैदास खोजा दिल आपना तउ मिलिया दिलदार।।"[१]

रैदास जानते थे कि यह पराधीनता की स्थिति हिन्दू धर्म के नियन्ताओं द्वारा निर्मित समाज व्यवस्था की देन है, जिसका आधार वर्ण व्यवस्था है। अतः रैदास ने अपने काव्य में वर्ण व्यवस्था के निर्माताओं को मूर्ख करार देते हुए लिखा है कि -

"रैदास एक बूंद सौं सब ही भयो वित्थार।
मूरिख हौं जो करत हो, वरन अवरन विचार।।"[२]

रैदास आगे व्यक्त करते हैं कि एक ही बूंद से जन्म लेकर भी एक व्यक्ति ऊँचा हो जाता है। दूसरे नीच हो जाता है। ऐसा क्यों होता है? रैदास का यह प्रश्न हमारी संपूर्ण चेतना को झकझोर देता है-

"रैदास एक ही नूर ते जिमि उपज्यो संसार।
ऊँच नीच किहि विधि भए ब्राह्मण और चमार।।"[३]

उपर्युक्त वाणी से यह स्थापित हो जाता है कि संतों में प्रमुख रैदास के मन में तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था के प्रति कितना आक्रोश था, साथ ही उसकी मानवतावादी दृष्टिकोण स्पष्ट दिखाई देता है।

संत कबीर दास का युग सामाजिक विश्रृंखलता का युग था। संत कवियों की धारणा थी कि ईश्वर भक्ति पर सबका अधिकार हैं। वह किसी जाति विशेष की वस्तु नहीं है। ऐसी स्थिति में उन्होंने निर्गुण, निराकार, अगम अगोचर ब्रह्म की स्थापना की। संत कबीर इस असमानतामूलक व्यवस्था के प्रति गहरा आक्रोश व्यक्त करते हैं -

---

१ डॉ. एन सिंह, *रैदास ग्रन्थावली,* पृ. १५२.

२ डॉ.एन सिंह (सं.), *रैदास ग्रन्थावली*, पृ.८९.

३ वहीं, ८९.

''जाति पांति पूछै नाहीं कोई/हरि को भजै सो हरि का होई।''[१]

''काशी का जुलाहा चीन्ह न मोर गियाना।

तू जो बामन बामनी जाया और राह है क्यों नहीं आया''।।[२]

कबीर ने अपने इस पद में ईश्वर को जाति-पांति से परे की वस्तु बताया है। कबीरदास कहते हैं-

''ना मंदिर में, ना मस्जिद में, ना काबा कैलास में

मुझको कहाँ ढूढ़े रे बन्दे, मैं तो तेरे पास में।''[३]

कबीर दास समाज में पाये जानेवाले जातपात का विरोध करते थे। वे कहते हैं-

''संतन जात न पूछे निरुगुनियाँ/ साध ब्राह्ण साध छतरी

साधै जाती बनियाँ/ साधन माँ छतीस कौम है टंडी तोरपुछनियाँ

हिन्दु तुर्क दुई दीन बने हैं कुछ नहीं / पचानि याँ।''[४]

दादू दयाल ने कबीर के समान खण्डन और वाद-विवाद न करते हुए उन्हीं प्रसंगों को लिया है जो निर्गुण मार्गियों की वाणी हैं -

''कोई रोम कोई अलह सुनावै, पुन अलह रोम

का भेद न पावै/कोई हिन्दु कोई तुरक करि मानैं, पुनि हिंदू

तरक की खबरि न जानैं।''[५]

गुरु नानक ने भी कहा-

---

१ आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ. १००

२ वहीं, पृ. १०७.

३ आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ. १०२.

४ वहीं, पृ.१७९.

५ पुन्नी सिंह, भारतीय दलित साहित्य परिप्रेक्ष्य, पृ.६३

"अव्वल अल्ला नाम है पाया, मालिक दे सब बंदे

एक मूर ते सब जग उपजिया, कौन भले कौन मंदे"[१]

"क्षत्री, ब्राह्मण, शूद्र, वैश, उपदेश चौ वरणों के सांझा"।[२]

संत नामदेव भी समाज के ऊँच-नीच भेद-भाव के प्रति प्रश्न चिह्न लगते हुए पूछते हैं-

"नाना वर्ण गावा उनका एक वर्ण दूध।

तुम कहाँ के ब्राह्मण हम कहाँ के सूद"।[३]

संत चोखामेला अछूत होने का कारण समाज उनको हीन समझकर उन पर अत्याचार, व अन्याय करता था। इस स्थिति में वे पूछते हैं-

"हमारी की हीन जाति/तू क्यों न समझता श्रीमती

जन्म गवाया जूठन खाते/क्यों लाज

तुम्हें नहीं आती हमारे घर नहीं भात

खाकर कहते कहीं नहीं, कर्म मेरा कहे चोखा से

क्यों मुझे जन्म दिया"[४]

संत तुकाराम भी वर्णव्यवस्था से तंग आकार इस प्रकार अपने दुःख प्रकट करते हैं-

"शूद्र वंश में जन्म लिया/इसलिए दंभ से मुक्त हूँ

---

१ श्री गुरुग्रन्थ साहब, पद, महला -१

२ वही, १

३ माताप्रसाद, हिन्दी काव्य में दलित काव्य धारा, पृ. ४२.

४ श्री. स. भा. कदम द्वारा संपादित चोखमेला महाराज की अभंगगाथा से उद्घृत

शब्दोच्चार करने का मुझे नहीं अधिकार
सर्व और सेदीन तुका कहे याति हीन''[१]

इस प्रकार सिद्ध, नाथ एवं संतों ने वर्ण, जाति, आडंबर आदि का विरोध किया साथ-साथ सामाजिक व्यवस्था पर अपना विचार प्रकट किया।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दी दलित कविता का आरंभ पंरपरागत दलित गीत से माना जा सकता है। इसी परंपरा को सिद्ध-नाथ-संत साहित्य ने आगे बढाया। मध्यकाल में साहित्य का मूल स्वर संतों की वाणी हैं। इसी पृष्ठभूमि में दलित कविता के आधुनिक काल का विवेचन संभव हो सकता है।

२.३.४ दलित कविता और आधुनिक काल

हिन्दी में दलित कविता का आधुनिक काल कब से माना जाए? ये विद्वानों में मतभेद हैं। नाथ, सिद्ध, रैदास, कबीर, दादू, नानक आदि कवियों के बाद कई दशक तक हिन्दी दलित कविता लगता है, मौन धारण कर लिया। वास्तव में इस अवधि में भी समाज के वही स्थिति थी जो पहले था। संतों ने वर्ण, जाति और आडंबर के खिलाफ विद्रोह करते रहे। स्वतन्त्रता संग्राम के आन्दोलन के साथ मिलजुलकर सामाजिक कुरूति एवं अनीति के खिलाफ सच्चे कवि विद्रोह करते रहे। इसका विस्तार से विवरण दलित आन्दोलन के संदर्भ में आगे चर्चा करेंगे। जो भी हो हिन्दी में दलित कविता का आधुनिक काल इसी बीच माना जा सकता है। दलित कविता के आधुनिक काल में हीरा डोम, स्वामी अछूतानन्द हरिहर, बिहारीलाल हरित आदि कवियों का महत्वपूर्ण स्थान हैं।

२.३.४.१ हीरा डोम

---

१ डॉ. बी.आर अंबेडकर ब्रहिष्कृत भारत (मूल मराठी) अंक ९, २९ जूलाई १९२७.

आधुनिक काल में दलित कविता का प्रारम्भ सितम्बर, १९१४ में 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित श्री हीरा डोम की भोजपुरी कविता से माना जाता है। जिसका शीर्षक था 'अछूत की शिकायत'इस कविता की कुछ पंक्तियाँ हैं। कवि दलित संस्कृति का परिचय कराते हुए कहते हैं-

''बभने के लेखे हम भिखिया न मांगबजा,
ठकुरे के लेखे नाहिं लउरि चलाइबि।
सहुआ के लेख नहिं गइया चोराइबि!
भटऊ के लेखे न कबित्त हम जोरबजां,
पगडी न बान्हि के कचहरि में जाइबि।
अपने पसिनवा कै पड़सा कमाइबजां,
घर भर मिलि जुलि बांटि चोंटि खाइबी''।

आशय यह है कि, दलित अपने रोजी रोटी श्रम और ईमानदारी से कमाता है। वह ब्राह्मण की तरह न भीख माँगता है, ठाकूर की तरह न लाठी चलाता है, अहीर की तरह न गाय चुराता है। तथा न पगड़ी बांधकर कचहरी में जाता है। वह सिर्फ अपने पसीने की रोटी परिवार के साथ मिलजुल कर खाता है।[१] इसी कविता की अन्य कुछ पंक्तियाँ हैं-

''हमनी के इनदा के निगिचे न जाइलेजा
पाके में भरी-भरी पि अतानी पानी
पनही से पिटि-टिपि हाथ गोड़ तुज़ि दैले
हमनी के इतनी काही के हलकानी''।

---

१ कंवल भारती, *दलित कविता का संघर्ष,* पृ. ४०. (से उद्धृत)

मतलब यह है कि हम लोग डोम है, कुँए के पास नहीं जा सकते। गंदला कीचड़ का पानी हम पीते हैं। जूतों से पीट-पीट वे हमारे पैर तोड़ देते हैं। हम लोगों को इतना यातना क्यों उठानी पड़ती है? जिस- हाड़-माँस का हमारा शरीर बना है उसी का इन ब्राह्मणों का इन ठाकुरों का बना हुआ हैं तो क्या बात है कि जो ये पूजे जाते हैं, और हमारी पूजा जूतों से होती हैं।''[१]

हीरा डोम ने इस कविता में भगवान को भी उस रूप में न लेकर अपने भगवान को भी हिन्दू उच्च वर्ग के भगवान से भी अलग कर दिया है। हीरा डोम की कथनी, उसका काव्य, दलित की मर्मान्तक कहानी है, उसका आर्तनाद है, उसका आक्रोश है, उसकी आह है, साथ-साथ उसका विलाप है।

अतः हम कह सकते हैं कि इस कविता का ऐतिहासिक महत्व है। अछूत लोग अपने भगवान को भी अलग करना चाहते हैं। कारण स्पष्ट है उनकी पूजा जूतों से होती है। कीचड पानी पीती है। कुएँ के पास नहीं जा सकते। इस संदर्भ में आक्रोश है और भगवान को भी अलग करना चाहते हैं। आज भी भारत के कुछ इलाकों में सामाजिक स्थिति भिन्न नहीं हैं। इसलिए 'अछूत की शिकायत' आज भी प्रासंगिक है।

२.३.४.२ स्वामी अछूतानन्द हरिहर

हीरा डोम के ही समकालीन दूसरे महत्वपूर्ण कवि है स्वामी अछूतानन्द हरिहर। स्वामी जी कवि, लेखक, समाज सुधारक, दलित, शोषित, सर्वहारा समाज के मध्य जन जागरण करने वाले, आदि हिन्दु आन्दोलन के प्रवर्तक थे। स्वामी जी का असली नाम हीरालाल था। वे आर्य समाज की विचार धारा से प्रभावित तथा उसके प्रवर्तक थे। आर्य समाज के प्रवर्तकों ने उन्हें हीरालाल के स्थान पर पण्डित हरिहरानन्द नाम दिया। जब वे १९१७ को आर्य समाज के प्रचार के लिए जाटव बस्ती आगरा में आये थे वहाँ के समाज

---

१ कंवल भारती, *दलित विमर्श की भूमिका*, पृ. १११.

सुधारक सुन्दरलाल सागर के नेतृत्व में 'अखिल भारतीय जाटव महासभा' की स्थापना किया। आर्य समाज तथा जाटव महासभा के प्रचार प्रसार के लिए वे सिरसागंज जिला मैनपुरि में गये थे। वहाँ के जाटव समाज के अछूत बच्चों को शिक्षा देने केलिए पाठशाला खोले। उद्घाटन के समय अछूत बच्चों को ज़मीन पर तथा सवर्ण बच्चों को फर्श पर बिठाने की भेदभाव को देखकर उन्होंने आर्य समाज को छोड दिया। इसके बाद उन्होंने दिल्ली में 'अखिल भारतीय अछूत महासभा' की स्थापना की और 'अछूत हिन्दी मासिक पत्रिका' का संपादक बने। तब से स्वामी जी ने अपना नाम स्वामी अछूतानन्द हरिहर रखा। देश के विविध भागों में इस पत्रिका के ज़रिए 'अखिल भारतीय अछूत महासभा' की स्थापना होने लगी। सन् १९२३ में रामदयाल जाटव की अध्यक्षता में 'आदि हिन्दु सम्मेलन' का आयोजन हुआ। सन् १९२८ के अंत में स्वामी जी ने 'आल इण्डिया आदि हिन्दु महासभा' की स्थापना की। स्वामीजी का यह कार्य सिर्फ जाटव को ही नहीं बाकि अछूतों को भी जागृत किया। उन्होंने अछूतों पर हो रहे अन्याय एवं अत्याचार को संगठित होकर सामना किया।

स्वतंत्रता संग्राम के समय दलितों में शिक्षा नहीं के बराबर थी, पर उनमें जागृति आना प्रारम्भ हो गई थी। वे अधिक पढ़े-लिखे न थे, इसलिए आंचलिक गीतों में अपनी भावनाऐं अभिव्यक्त कर रहे थे। अछूतानंद जी ने एक गज़ल में यह फरियाद करते हैं-

"मैं अछूत हूँ, छूत न मुझमें फिर क्यों जग ठुकराता है।
छूने में भी पाप मानता छाया से घबराता है।
मुझे देख नाक रिकोड़ता दूर हटा वह जाता है।
हरिजन भी कहता है मुझको 'हरि' से विलग करता है।"[१]

---

१ डॉ. राजपाल सिंह राज, *स्वामी अछूतानन्द हरिहर*, पृ.६०

आजकल भारतीय संदर्भ में इस कविता का महत्वपूर्ण स्थान है। अछूतों को छूने तथा देखने में पाप माना गया है। उसे देखते ही दूर हट जाते हैं। जिन्हें हरिजन कहकर बुलाते हैं उन्हें मंदिर में प्रवेश नहीं करने देते। आज के वैज्ञानिक एवं इलक्ट्रोणिक युग में भी मनुष्य को अपनी मानसिक बदलाव की ज़रूरत है।

अछूतानंद जी की कविताओं के संग्रह का नाम है 'आदि वंश का डंका'। इस काव्य संग्रह की एक कविता की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार है-

"निसिदिन मनुस्मृति हमको जला रही है।
ऊपर न उठने देती नीचे गिरा रही है।।
हमको बिना मजूरी, बैलों के संग जोते
गाली व मार उस पर हमको दिला रही है।"[१]

मनुस्मृति के सामाजिक नियमों के कारण दलित ओर भी पद-दलित हो रहे हैं। अछूत वर्ग मनुष्य के साथ नहीं बल्कि बैलों के साथ जी रहे हैं। आज भी भारत की कुछ प्रदेशों में इनकी स्थिती बहुत बुरा है। मनुस्मृति पर उनकी कविता में दलित पीड़ा मानवीय संवेदना के रूप में प्रकट होती है। उनके लेखनी का असर उत्तर भारत के कवियों पर पडा होगा।

२.३.४.३. केवलानंद तथा अन्य कवि

ऐसा माना जाता है कि केवलानंद जैसे कवियों ने इनकी धारा को आगे बढ़ाया। केवलानंद का कुछ कवितांश यहाँ प्रस्तुत है-

"मनुजी तुमने वर्ण बना दिए चार।

---

१ वही, पृ. ६३.

जा दिन तुमने वर्ण बनाए, न्यारेक रंग बनाये क्यों ना।
गोरे ब्राह्मण, लाल क्षत्रिय, बनिया पीले बनाये क्यों ना।
शूद्र बनाते काले वर्ण के, पीछे को पैर लगवाए क्यों ना
कैसे हो पहचान पोप जी दो अक्षर डालवाये क्यों ना।
लोहे के बर्तन पर पानी कंचन को दयौ डार।। मनुजी.....''[१]

इस कविता में केवलानंद ने भी मनु के सामाजिक संरचना और वर्णव्यवस्था पर प्रश्न चिन्ह लगाया है। वर्णव्यवस्था को भयानक रूप देने वाला यह गीत आज भी प्रासंगिक है। इनके अतिरिक्त मंगलाप्रसाद विश्वकर्मा की कविता 'अछूत' तथा शोभाराम धेनुसेवक की 'अछूत आवेदन' हिन्दी साहित्य की पत्रिका 'चाँद' के मई १९२७ में प्रकाशित हुई।

२.३.४.४ बिहारीलाल हरित

अछूतानन्द और केवलानन्द के बाद का आक्रोश एवं विद्रोही स्वर बिहारीलाल हरित के काव्य में देखने को मिलता है। स्वातंत्र्योत्तर काल से लेकर अस्सी के दशक तक का समय एक तरह से बिहारीलाल हरित और उनके शिष्यों का समय था। दलित समाज के प्रसिद्ध नारा 'जय भीम' की सर्जना का श्रेय श्री बिहारीलाल हरित को है। राम की तरह ही बाब अंबेडकर को घर-घर तक पहूँचाने तथा जन मानस को बाबा अंबेडकर के प्रति श्रद्धा से भरने के लिए हरित जी ने 'भीमायण' नाम से एक महाकाव्य लिखा। वे दलित स्वाभिमान के कवि थे। उन्होंने 'हरित साहित्य मंडल' बनाकर बहुत सारे लोगों को लिखने को प्रेरित किया। उनके लिए डॉ. अंबेडकर देवता और मसीहा बन चुके थे। वे कहते हैं-

---

१ कंवल भारती, *दलित विमर्श की भूमिका*, पृ. ११३.

''सुनो भारत के नर नारी हम पुजारी बाबा भीम के।
कोई पूजे दई देवता कोई पूजे चन्डी।
गलिहारे का सय्यद पूजे जाकर के मुसटन्डी।।
बूत पूजे दोंगा चारी, पूजारी बाबा भीम के।।
भारत की अछूत जाति को अब अपना घर सूझा।
भीमराव भारत में अपना सही देवता पूजा।।
जिसे पूजे गोर्धन बिहारी, पूजारी बाबा भीम के।।''[१]

इस पंक्तियों से हमें पता चलता हैं कि अछूतों के बीच अंबेडकरीय विचारधारा का असर बहुत गहराई से जुडा हुआ है। आधुनिक संदर्भ में बिहारीलाल जी ने अछूतों के भीतर 'जय भीम' का प्रचार प्रसार करते हुए उनमें ऊर्जा प्रधान किया है।

२.३.४.५ दलित कविता और गैर दलित

आधुनिक दलित कविता को अपनी पहचान देने में गैर दलितों का योगदान महत्वपूर्ण है। समाज सुधार आन्दोलन तथा राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन की पृष्ठभूमि में गैर दलित साहित्यकारों का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। हम जानते हैं कि हज़ारों सालों तक दलित समाज अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक आदि अभिव्यक्ति से वंचित रहा है। इसका मूल कारण भारत के वर्ण एवं जाति व्यवस्था है। प्राचीन काल से ही चाहे वो समाज में हो या साहित्य में हो, प्रमुख स्थान सवर्णों को ही हैं। इसी कारण से दलित और भी पद दलित होता रहा। क्योंकि उसमें अपना अस्मिता की पहचान नहीं के बराबर है। जब बाबा साहब तथा महात्मा फुले से प्रेरणा पाकर मनुष्य को केंद्र बनाकर वर्णव्यवस्था के विरुद्ध दलित कविता रचा गया तब से दलितों में नई

---

१ कंवल भारति, *दलित कविता का संघर्ष*, पृ. ९० (से उद्धृत)

चेतना का नीव फूट पड़ा। दलितों में चेतना लाने में दलित आंदोलनों का भी महत्वपूर्ण भूमिका हैं।

भारतीय समाज में पहली बार दलित अस्मिता की पहचान आधुनिक काल में ही संभव हुआ। देश में अनेक परिवर्तनों के साथ बीसवीं सदी का प्रारंभ हुआ। स्वतंत्रता आंदोलन तथा समाज- सुधार आदोलन देश के वातावरण को बदलने में अपना-अपना भूमिका निभाई। आर्य समाज तथा गाँधिवाद से प्रभावित होकर अनेक कवियों ने समाज-सुधार तथा अछूतों के प्रति सहानुभूति पूर्ण कविताएं लिखने लगी। राष्ट्रीय संवतंत्रता आन्दोलन के द्वौरान दलितों के राजनैतिक संघर्ष के परिणामस्वरूप दलित कविता की गाँधीवादी धारा अस्तित्व में आई। जैसे मैथिलीशरण गुप्त की 'अछूत' अयोध्या सिंह उपाध्या हरिऔध की 'छूत-छात के चौपदे', आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की 'अछूत की आह' निराला की 'दलित जनों पर करो करुणा' आदि प्रमुख है।

कवि मैथिलीशरण गुप्त ऊँच - नीच का भेदभाव छोडने केलिए कहते हैं कि-

''अपने चातुर्वर्ण्य विधान/ हे गुण-कर्म -स्वभाव प्रधान।
छोड़ो ऊँच - नीच का दम्भ/ सम है हम सबका आरंभ''।[१]

कवि मानते हैं कि मानव के उन्नति का आधार गुण, कर्म, स्वभाव से ही है। 'भैंसागाडी' नामक कविता में भगवतीचरण वर्मा शोषित, पीड़ित किसान का यथार्थ चित्र अंकित किया है, वे लिखते हैं -

''चाँदी के टुकड़ों को लेने/प्रतिदिन पिसकर, भूखों मरमर
भैंसागाडी पर लदा हुआ/जा रहा चला मानव जर्जर,
है उसे चुकाना सूद कर्ज/ है उसे चुकाना ऊपना कर

---

१ मैथिली शरण गुप्त, *चातुर्वर्ण्य हिन्दू*, पृ. १२०.

जितना खाली है उसका घर/ उतना खाली उसका अन्तर''।[१]

खाली हाथ, खाली पेट से पशु के समान काम करने दलित वर्ग जा रहे हैं। फिर भी उसे उचित वेतन नहीं मिलते हैं। उपर्युक्त कविताएँ दलितों के प्रति जो सहानुभूति है उसे व्यक्त करती है।

इसके बाद सन् १९३६ ई में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना हुई। मुंशी प्रेमचन्द वह पहले साहित्यकार था जिन्होंने यथार्थवाद तथा प्रगतिशील आदर्श भरे साहित्य की रचना की। प्रगतिशील साहित्य के जनवादी धारा ने दलितों के सामाजिक तथा आर्थिक पहलुओं पर कविताएँ लिखी। धूमिल की 'मोचीराम' नागार्जुन की 'हरिजन गाथा', डॉ. रामविलास शर्मा की 'कार्यक्षेत्र' आदि प्रमुख है।

दलित की दयनीय दशा का यथार्थ चित्रण नगार्जुन इस प्रकार करते हैं-

''ऊपर देखने हैं बाल्टियों के/ पितरों की प्यास रूहें।
अँगूठा चूसती है नवजात बच्ची
खिड़की से लटका दिया गया है लाल खिलौना''।।[२]

इस प्रकार नागार्जुन ने दलितों के प्रति सहानुभूति प्रकट किया है। इस तरह के साहित्य को विद्वानों ने सहानुभूति साहित्य के अन्तर्गत विश्लेषण करने का प्रयास किया है। उनका मानना है कि गैर दलित होने के कारण इनमें स्वानुभूति नहीं के बराबर है। उल्लेखनीय बात यह है कि लेखकों द्वारा पौराणिक साहित्य के मिथक कथापात्रों की पुनर्व्याख्या भी होने लगी। डॉ. रामकुमार वर्मा की 'एकलव्य', धनजय अवस्थी की 'शबरी' जगदीश गुप्त की 'शंबूक' आदि प्रमुख रचनाएँ हैं।

---

१ भगवतीचरण वर्मा, *भैंसागाडी, विस्मृति के फूल,* पृ. ५५.

२ नागार्जुन, *प्यासी पथराई आँखें*, पृ. १८.

जगदीश गुप्त का शंबूक खण्ड काव्य में शंबूक के माध्यम से आज दलितों के साथ होने वाले अन्याय को दर्शाया है। शम्बूक राम से कहता है-

''मारते हो और कहते हो उसे उद्दार
चलेगा कब तक तुम्हारा यह घृणित व्यापार''।[१]

प्रस्तुत पंक्तियाँ पौराणिक कथापात्रों की पुनर्व्याख्या करते हैं।

२.३.४.६ बाबा साहब अंबेडकर के विचार तथा दलित कविता

आज़ादी के बाद संवैधानिक अधिकारों और जनतांत्रिक मूल्यों तथा लोकतांत्रिक प्रक्रिया के बीच से दलित कविता साहित्य आंदोलन की प्रमुख प्रवृत्ति बनकर उभरी। ठीक उसी समय दलित कविता डॉ. बाबा अम्बेडकर के जीवन-दर्शन और विचारों से प्रेरणा और शक्ति लेकर एक जन आंदोलन बन गयी तथा बाबा अंबेडकर के स्तुति-वन्दना भी करने लगे। इसमें दलित और गैर दलित साहित्यकार भी शामिल थे। जैसे लक्ष्मीनारायण सुधाकर का महाकाव्य 'भीम सागर', माता प्रसाद का 'भीमचरित्र', रामदास निमेष का 'भीमकथामृतम्', बाबुलाल सुमन का महाकाव्य 'अंबेडकर' आदि प्रमुख है। लक्ष्मीनारायण सुधाकर का 'भीमसागर' (१९८५) नामक वृहद काव्य डॉ. बाबा अंबेडकर के जीवनवृत्त पर केंद्रित है। उनकी रचना का एक उदाहरण अग्रलिखित है-

''अंबेडकर का लेख 'मूकनायक' में हुआ प्रकाशित था।
हिन्दु समाज में दलितों का स्थान पूर्ण अभिशापित था।
बहुमंजिल गुम्बद सम समाज सीढियाँ-द्वार नहीं पाएगा।
जो जिस मंजिल में जन्मा है वह उसमें ही मर जाएगा।
ब्राह्मण है, गैर- ब्राह्मण है तीसरा अछूत कहलाता है।

---

१ डॉ. जगदीश गुप्त, *शम्बूक*, पृ. १३.

उपजाति-जाति में जाति, बिखर वह पात-पात सम जाता है''।। [१]

अतः हम कह सकते हैं कि इसमें मध्यकालीन काव्य पंरपरा का प्रभाव दिखाई पड़ता है। समाज में दलितों का अभिशाप पूर्ण जीवन स्थिति की व्याख्या किया है, जो आज के संदर्भ में भी दिखाई देती है। यूँ अनेक दलित रचनाकार कविता, नाटक, कथा एवं पत्रकारिता के जरिए स्वयं को अभिव्यक्त करते रहे, किन्तु इस अभिव्यक्ति का स्वर धीमा और सीमित रहा। साठ के दशक में आकर इस स्वर में व्यापकता और तेजी आनी शुरू हुई । डॉ. बाबा अम्बेडकर और बौद्ध धर्म के प्रचार में संलग्न होने वाले और कुछ बाबा अंबेडकर के क्रांतिकारी विचारों की ऊर्जा लेकर उतरे नई पीढ़ी के रचनाकारों ने साहित्य सृजन के क्षेत्र में हस्ताक्षेप करना शुरू किया। लेकिन बाद में बदली हुई परिस्थितियों में दलित कवि डॉ. बाबा अंबेडकर की स्तुति वंदना और प्रचार के महत्व उद्देश्य से विमुख होकर दलित समाज के लोगों की पीड़ा दुःख तथा हज़ारों साल के सामाजिक, आर्थिक उत्पीड़न और शोषण से अपने आक्रोश और विद्रोह को ईमानदारी से अभिव्यक्त करने लगे।

२.३.४.७ दलित पैंथर तथा दलित कविता

दलित स्वत्व बोध का निर्माण में दलित पैंथर का विशेष स्थान है। दलित पैंथर के सब कार्यकर्ता लेखक थे, जैसे नामदेव ढसाल, अरुण कांबले, रामदास आठवले, ज. वि. पवार, उमाकांत, राजा ढाले, रणदेव आदि ने दलित कविता को नया स्वर दिया। दलित शब्द के प्रचार प्रसार में दलित पैंथर का योगदान महत्वपूर्ण है। वे अपने अनुभूति, अनुभव और अभिव्यक्ति के स्तर पर पूरे लगन से लेखनी चलाई है। पैंथर के अधिकांश मूल कृतियाँ मराठी साहित्य में देखने लायक है। दलितों में आत्मसम्मान, आत्मविश्वास और स्वाभिमान लाने में दलित पैंथर का योगदान प्रमुख है।

---

१ श्री. लक्ष्मीनारायण सुधाकर, *भीमसागर*, पृ. २२.

नामदेव ढसाळ भारतीय समाज व्यवस्था को बदलकर नये समतावादी समाज निर्माण करना चाहते हैं। वे लिखते हैं-

''रक्ताल पेटलेलया अगणित सूर्योनो
किती दिवस सोसायची ही घोर नाकेबंदी?
मरेपर्योत राहयचे का असेय युद्धकैदी
ती पाहा रे ती पाहा, मातीची अस्मिता अभाळभर झालीय
माईयाही आत्मयाने झिंदाबादची गर्जना केलिए
रक्ताल पेटलेलया अगणित सूर्योनो
आता या शहरा शहराला आग लावीत चला।''[१]

अनुवादः - ''मेरे लहू में (खून में) प्रज्वलित (जन्मे) अगणित सूर्यबिंब

''कितने दिन रहोगे यह घोर बंदीवास।
कच बने रहोगे इस तरह युद्ध कैदी।
वह देखो रे देखो मिट्टी की अस्मिता
आकाश भर में फैल गई। मेरी आत्मा भी
जिंदाबाद की घोषणा कर बैठी / मेरे रक्त में
प्रज्वलित अगणित सूर्यों, अब इन /नगरों नगरों को आग लगाते चलो''।[२]

कवि अपनी प्रतिशोध एवं विद्रोही स्वर को मुखरित किया है। दलित वर्ग मिट्टी का संतान है। जब वह अपनी अस्मिता को पहचानते हैं, गुलाम के कैद से स्वतंत्र होने

---

१ नामदेव ढसाळ, *गोलापिठा*, पृ.१३.

२ विमल थोरात्त, *मराठी दलित कविता और साठोत्तरी हिन्दी कविता में सामाजिक और राजनीतिक चेतना*, पृ. १००.

लगते हैं तब समाज में क्रांति उत्पन्न होती है। इसी क्रांति के माध्यम से दलित पैंथर समतावादी समाज की स्थापना करना चाहते हैं।

२.३.४.८ प्रकाशकों की भूमिका

हिन्दी दलित कविता ने एक आन्दोलन का रूप १९८० के बाद से ही लेना शुरू किया। १९८० में 'भारतीय दलित साहित्य मंच'और १९८२ में 'भारतीय दलित साहित्य अकादमी' की स्थापना से हिन्दी में दलित कविता को एक पहचान पाने में मदद मिली। विभिन्न भाषाओं में दलित कविता का सृजन होने लगा। जिससे न केवल स्वयं को स्थापित किया बल्कि परम्परागत साहित्य की जड़ों को हिलाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाहन किया। दलित साहित्य के जितने किताबें हैं उसे प्रकाशित करने में प्रकाशन संस्थाओं का महत्वपूर्ण स्थान एंव भूमिका है। १९८० में भारतीय दलित साहित्य मंच द्वारा प्रकाशित 'पीड़ा जो चीख उठी' हिन्दी में दलित कविताओं का पहला संकलन था जिसमें २५ कवियों की कविताएँ संकलित थी। दलित साहित्य प्रकाशन संस्था द्वारा प्रकाशित मंसाराम विद्रोही और कर्मशील भारती की कविताओं का संग्रह 'दलित मंजरी' (१९८२) तथा 'भारतीय दलित साहित्य अकादमी' द्वारा डॉ. बाबा अम्बेडकर जन्म शताब्दि के अवसर पर प्रकाशित सौ दलित कवियों की कविताओं का संग्रह 'अंबेडकर शतक' (१९९०) तथा डॉ.एन. सिंह द्वारा संपादित 'दर्द के दस्तावेज' आदि विशेष उल्लेखनीय है। इसके अलावा गौतम बुक सेन्टर, हिन्दी बुक सेन्टर, वाणी प्रकाशन, राजकमल प्रकाशन आदि संस्थाओं की भूमिका प्रमुख है। १९९० तक आते-आते हिन्दी के दलित कवियों की एक पूरी पीढ़ी तैयार के साथ साहित्य में प्रवेश किया। लगभग दो दर्जन कवि आज रचनात्मक संघर्ष कर रही है।

१.३.४.९ दलित कविता : वैश्विक परिवेश

दलित कविता की भावभूमि का अध्ययन वैश्विक तथा भारतीय परिवेश के अध्ययन के बिना अधूरा रहेगा। अतः दलित कविता के वैश्विक परिवेश पर प्रकाश डालना संगत लगता है। दलित कविता के वैश्विक संदर्भ में नीग्रो साहित्य का प्रमुख स्थान है। नीग्रो साहित्य और भारतीय दलित साहित्य स्थान एवं काल की दृष्टि से ही भिन्न है। उनके भोगे हुए अनुभव, वेदना, शोषण, साहित्य तथा आंदोलनों की प्रवृत्तियों में समानता है। दोनों का केंद्र मनुष्य है। नीग्रो को आफ्रिकी खंड से जानवरों के जैसे पकडकर गुलाम बनाते हुए अमेरिका में लाकर बिक्री करते थे। उन्हें कभी संगठित होने न देते । इसकेलिए नीग्रो को उनके परिवार से अलग कर बेचता था। नीग्रो ने अपनी वेदना ब्ल्यूज़ (poem) बैलेड, कथा, संगीत, नृत्य आदि के माध्यम से व्यक्त किया था। श्वेत लेखिका स्टेव ने 'अंकल टॉम्स केबिन' नामक उपन्यास लिखा। इसमें नीग्रो के जीवन का मार्मिक चित्रण किया है। इसका अनुवाद कई भाषाओं में हुआ। कई संस्थाओं ने नाटकीय प्रस्तुति भी की। नीग्रो ने 'नीग्रो' शब्द के बदले 'ब्लैक' शब्द को अपनाया। १९०१ में बुकर टी वाशिंगटन की 'अप फ्रॉम स्लेवरी' नामक पुस्तक प्रकाशित हुआ। इसके बाद डब्ल्यू. ई. बी. डयुबाईस की 'द सोल ऑफ ब्लैक फॉक' नामक पुस्तक भी प्रकाशित हुआ। एक में नीग्रो का परंपरा शरण के भाव है तो दूसरे में समाज के प्रति विद्रोही भूमिका थी। पहला महायुद्ध के बाद नीग्रो के विचारों में नयी चेतना आ गयी। हैर्लेम शहर नीग्रो के आर्थिक एवं सांस्कृति केंद्र बन गया। १९२० में 'हार्लेम जागृति आंदोलन' का आरंभ हुआ। लॉगस्टन हयूजेस की 'रेशियल हिदम' और जिन ट्यूमर की 'केन' नामक पुस्तकें विद्रोही और स्वाभिमानी चेतना से भरे हुए थे। इसके बाद भी अनेक ब्लैक लेखकों की रचनाएँ आने लगी। अपने जीवन का यथार्थ चित्रण और निषेध का स्वर १९४० के बाद के काले लेखकों के लेखन में देखने को मिलते हैं। १९६६ में नीग्रो युवकों के 'ब्लैक पैंथर' नामक संगठन स्थापित हुआ। नीग्रो लेखकों का कहना हैं

कि ''हमारे अनुभव हमें लिखने केलिए प्रेरित करते हैं।''[१] भारतीय दलित साहित्य के उत्भव की पृष्ठभूमि में वैश्विक स्थर पर ब्लैक साहित्य और नीग्रो संगठन ब्लैक पैथर की प्रेरणा रही है। इस दृष्टि से देखें तो दलित कविता को एक वैश्विक आधार प्रधान करने में ब्लैक साहित्य का विशेष योगदान रहा है।

२.३.४.१० दलित कविता : भारतीय परिवेश

भारत में दलित कविता का आरंभ दलित आंदोलन के साथ जुडा हुआ है। दलित आंदोलन में मराठी भाषा प्रदेश के साथ-साथ मराठी साहित्य का विशेष महत्व है। इसी के प्रभाव से हिन्दी प्रदेश में भी दलित लोग संगठित होने लगे और परिणाम स्वरूप दलित साहित्य का विशेषकर दलित कविता का निर्माण कर आंदोलनों को शक्ति प्रधान करने लगे। हिन्दी के अनेक बोलियों में दलित कविता प्रकाशित होने लगी और हीरा डोम से लेकर अब तक के हिन्दी दलित कविता दलित आंदोलनों को प्रेरित करते रहे हैं। पूरे भारतीय परिवेश के साथ हिन्दी दलित कविता का प्रणयन आधुनिक काल का महत्वपूर्ण घटना है।

भारत के अन्य प्रादेशिक भाषाओं में भी दलित कविता अपनी रचनाएँ प्रकाशित और हिन्दी में अनुवाद करके हिन्दी दलित कविता को आगे बढाने का सफल प्रयास कर रहे हैं। जैसे पंजाबी, मराठी, मलयालम, सिंधी, गुजराती आदि अनेक देश के प्रादेशिक भाषाओं में दलित कविता का प्रचार- प्रसार प्रचुर मात्रा में हो रहे हैं। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि दलित कविता समता, स्वतंत्रता, बंधुता की स्थापना चाहती है, और टूटे पिछड़े लोगों को उठाना चाहती हैं। ऐसा कहा जा सकता है कि हीरा डोम से लेकर आज के दलित कवियों के कविताओं का स्वर न्याय का स्वर है। जबकि स्वामी अछूतानन्द तथा बहुत से अन्य कविताओं का स्वर अन्याय के प्रति विद्रोह और अधिकार-चेतना का

---

१. शरणकुमार लिंबाले, *दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र,* पृ. ९५.

स्वर है जो दलित कविता की प्रमुख विशेषता है। दरअसल दलित कवियों की भूमिका सिर्फ वर्ण व्यवस्था और मनुस्मृति के विरोध तक ही सीमित नहीं थी, बल्कि उनका मकसद एक नये विमर्श स्थापित करके मनुष्यता को स्थापित करना है।

२.४. दलित कविता की विचारभूमि

पाश्चात्य नवजागरण से प्रभावित होकर बीसवीं सदी के प्रारंभ में जनता में देश भाक्ति एवं राष्ट्रीय भावना का विचार प्रभल होने लगे। हम जानते हैं कि भारतीय समाज वर्ण एवं जाति में बाँटा हुआ है। ब्राह्मणों एवं उच्च जातियों के विरुद्ध निम्न जातियों के संघर्ष आंदोलन का रूप धारण करते आये हैं। जिसके माध्यम से समाज में समता, स्वतंत्रता, बन्धुत्व और सामाजिक न्याय आदि मूल्यों का प्रतिष्ठा कर सकें। इस प्रक्रिया में लोकायती दर्शन यानि 'पथार्थों परमों धर्मः' का वैज्ञानिक आधार देखने को मिलते हैं। नाकि देवता की। उसके बाद महात्मा बुद्ध ने समाज में समता की भावना ले आने का प्रयास किया। महात्मा गौतम बुद्ध, स्वामी अच्छूतानन्द, महात्मा फुले, डॉ. भीमराव बाबा साहब अम्बेडकर, रामस्वामी पेरियार, श्री नारायण गुरु जैसे दार्शनिक नेता तथा सामाजिक सुधारकों के विचारों का महत्वपूर्ण स्थान हैं। जिसके विवेचन किये बिना दलित कविता की विचारभूमि का विश्लेषण पूर्ण नहीं होंगे। भारतीय समाज में पहले समता समानता की कामना भरपूर देखने को मिलता है। बाद में इस व्यवस्था को जानबूझकर उल्ट-फेर कर दिया। सबसे पहले महात्मा बुद्ध ने ही समाज में समता की भावना ले आये थे। इससे प्रेरणा पाकर डॉ. बाबा अंबेडकर के विचारों से ओत प्रोत होकर आज दलित कविता आगे बढ़ रहा है। मार्क्स की क्रान्ति दृष्टि तथा मराठी दलित साहित्य दृष्टि ने भी हिन्दी के दलित विमर्श के कवियों को प्रभावित किया ।

अछूतों की अभाव-ग्रस्त एवं दयनीय स्थिति को देखते हुए उनकी सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक स्थिति में सुधार लाने तथा हिन्दू समाज व्यवस्था में परिवर्तन करने

हेतु, देश के अनेक भागों में कई समाज सुधार आंदोलन हुए। उत्तरप्रदेश में 'जाटव आंदोलन', महाराष्ट्र में 'महात्मा फुले का आन्दोलन', दक्षिण भारत के केरल में श्री नारायण गुरु के नेतृत्व में 'वैक्कम सत्याग्रह' तथा तमिलनाडु में पेरियार नायकर का 'आत्म-सम्मान सम्बन्धी आंदोलन' आदि प्रमुख रहे हैं। इन आन्दोलनों के मूल में धार्मिक आडंबर तथा सामाजिक कुरीतियों का विरोध ही रहा है। उल्लेखनीय बात यह है कि ये आंदोलन सिर्फ समाज सुधार के लिए रहा है, न कि परिवर्तन केलिए है।

२.४.१ धर्म और भारतीय समाज

धर्म और भारतीय समाज परस्पर पूरक है। प्रत्येक धर्म की एक सामाजिक व्यवस्था होती है। धर्म हमेशा अन्य समाज के साथ-साथ दलित समाज से भी जुडी हुई विषय है। चूँकि दलित हमेशा अन्त्यज रहे हैं। इसलिए धार्मिक क्रम में भी स्वाभाविक रूप से वे अन्त्यज ही है। एक ओर विशेष बात है कि धर्म के बिना दलित जीवन के अस्तित्व को परिभाषित नहीं किया जा सकता। प्रत्येक समाज व्यवस्था के पीछे धार्मिक अनुमति पाई जाती है और उसे देवी प्रदत्त समझा जाता है, क्यों कि धर्म को एक सामाजिक शक्ति माना गया है। भारत में देव-देवताओं के साथ धर्म का सीदा संबन्ध हैं। देव- देवताओं का संबंध विश्वास के साथ है न कि वैज्ञानिक के साथ। धर्म की परिभाषा अनेक विद्वानों ने किया है और ये अनेकार्थी शब्द है। धर्म का सीदा संबन्ध मानव तथा मानवतावादी से होना चाहिए। डॉ. अम्बेडकर ने साफ-साफ बताया है कि "धर्म एक दिव्य प्रशासन की व्यवस्था का समर्थन करता है। वह व्यवस्था समाज के लिए एक अनुकरणीय आदर्श बन जाती है। वह आदर्श इस अर्थ में अस्तित्वहीन हो सकता है कि वह ऐसा कुछ है जिसे सृजित किया गया है। जो यद्यपि अस्तित्वहीन, पर वास्तविक है। आदर्श होने के नाते उसमें पूर्ण क्रियात्मक शक्ति है जो किसी भी आदर्श में अन्तर्निहित होती है। किसी लौकिक आदर्श की तुलना में धार्मिक आदर्शों का अधिक प्रतिष्ठा होती

है, क्यों कि उसके पीछे दैविक मंजूरी होती है। इसका अर्थ है कि किसी धार्मिक आदर्श का मानव जाति पर प्रभाव होता है, चाहे सांसारिक प्राप्ति कुछ भी हो। यह बात किसी विशुद्ध लौकिक आदर्श के बारे में नहीं कही जा सकती।"[१] इस प्रकार डॉ. अम्बेडकर ने धर्म और समाज का अटूट सम्बन्ध स्वीकार किया। बाबा अम्बेडकर ने धर्म को जीवन की आवश्यकता एवं भलाई केलिए माना है। उन्होंने धर्मों को अपने ही मानदण्ड़ों से मूल्यांकित करने का प्रयास किया। उनके राय में धर्म मानव के लिए है, मानव धर्म के लिए नहीं।

आज धर्म को सार्थक बनने केलिए आदमी को प्रेरित करते हुए इन्सान में इन्सानियत पैदा करनी चाहिए। व्यक्ति स्वयं अपने विचारों, मान्यताओं, आदर्शों और रीतियों द्वारा समाज-व्यवस्था का नियमन करता है। परिस्थिति के अनुरूप व्यक्ति स्वयं निर्मित नियमों को तोड़कर नए आदर्शों, विचारों, मान्यताओं, रीतियों, नीतियों को बनाता हैं। जो धर्म सभी मनुष्यों को समान दृष्टि से देखता है वही सही धर्म है। लेकिन हिन्दू धर्म इन भावनाओं के गुणों को पैदा करने वाली नहीं हैं। समाज को भिन्न-भिन्न वर्णों में विभाजित करने के पक्ष में रहा है। इस विभाजन के कारण आज करोड़ों दलित विकास की स्थिति में नहीं रहे हैं, हमेशा अन्त्यज रहे हैं।

२.४.२ वर्ण व्यवस्था तथा मनुस्मृति

भारतीय समाज जातीय दृष्टि से विभाजित समाज है, जिसमें कई प्रकार के अंतर्विरोध विद्यमान है। सबसे अधिक अंतर्विरोध शूद्र या अछूत कहे जानेवाले समुदाय और सवर्ण कहे जानेवाले समुदायों के बीच हैं। हिन्दू धर्म की एक विशेषता है वर्ण-विभाजन । वर्ण व्यक्तियों के एक समूह को कहा जाता है। वर्ण का विभाजन हिन्दू धर्म में कर्म, जन्म एवं जाति के अनुसार किया गया है। सबसे ऊपर ब्राह्मण, फिर क्षत्रिय फिर

---

१ डॉ. बाबा साहब अंबेडकर, *राइटिंग्स एण्ड स्पीचेस १९८७*, खण्ड ३. पृ. २३.

वैश्य और सबसे नीचे शूद्र है, जिनके बीच किसी प्रकार की बराबरी नहीं है। शूद्र का कर्तव्य इन तीनों वर्णों की सेवा करना है। डॉ. बाबा अम्बेडकर ने वर्ण व्यवस्था को असमानता एवं अन्याय का मूलाधार मानकर वर्णाश्रम धर्म का निषेध किया। उनके अनुसार ''वर्ण व्यवस्था जातिवाद एवं छुआछूत की जननी है। जिनके कारण करोड़ों हिन्दू भाइयों को नरकीय जीवन जीना पड़ता है हिन्दू धर्म में वर्ण, जाति एवं छुआछूत ऐसी स्थाई संस्थाएँ बन गई हैं, जो इन्सान और इन्सानियत की घोर शत्रु है''[१]।

मानवीय उत्पत्ति व विकास का मूलभूत आधार समाज है। समाज व्यवस्था सुचारू रूप से चलने तथा हर व्यक्ति अपने कर्म को करते रहे। इसी उद्धेश्य को दृष्टि में रखते हुए वैदिक संस्कृति में वर्ण विभाजन की व्यवस्था की सूत्रपात हुआ।

२.४.२.१ वर्ण

आरंभ में वर्ण का शाब्दिक अर्थ रंग था जिसका मूल रूप से प्रयोग 'आर्ती और दासों' के बीच अंतर स्पष्ट करने के लिए होता था। इस संदर्भ में प्रो.धुर्य का मत सर्वमान्य है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'कास्ट एण्ड क्लास इन इंडिया' में लिखा है, ''ऋग्वेद में वर्ण शब्द का प्रयोग किसी वर्ग (ब्राह्मण क्षत्रिय आदि) के लिए कभी नहीं हुआ, वहाँ केवल आर्य वर्ण या आर्य जन का दास वर्ण से अंतर स्पष्ट किया गया है। पहले भारत में वर्ण व्यवस्था नहीं थी इसका प्रमाण यह है कि महाभारत में शांति से पहले भीष्म कहते हैं-

''न तै राज्यम् न राजासीत्र चदण्डोन दण्डिन,
धर्मेपैव प्रजा सर्वा रसन्तिस्म परस्परम।''[२]

---

१ डॉ. श्याम सिंह शशि (प्र.सं), *बाबा साहब डॉ. अंबेडकर, संपूर्ण वाङमय खण्ड- ६*

२ प्रो. धुर्य, *कास्ट एण्ड क्लास इन इंडिया*, पृ.४७

अर्थात् उस युग में न तो राज्य या और न राजा, न दंड-विधान था और न दंड देनेवाला। धर्म के आधार लेकर एक दूसरे की रक्षा करते थे। ऋग्वेद में जो वर्ण शब्द का प्रयोग किया है वहीं शब्द किसी वर्ग के लिए भी प्रयोग नहीं किया जाता था।

प्रो.एम.एन. श्रीनिवास का भी यही मत है। उन्होंने लिखा है कि "एक शब्द जिस का मूलतः प्रयोग विजेता आर्य तथा विजित आदिम जातियों 'दस्यु' के बीच रंग रूप में भेद करने के लिए किया गया था, बाद में समाज के श्रेणी क्रमात्मक विभाजन के लिए प्रयुक्त हुआ।"[१] मार्क्सवादी समाज शास्त्रियों के अनुसार वर्ण व्यवस्था श्रम विभाजन का परिणाम है। श्रम का विभाजन उत्पादन शक्तियों के विकास तथा युग की आवश्यकता के फलस्वरूप होता है। इस संदर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा के विचारों की चर्चा करना संगत लगता है। उनके अनुसार "वर्णव्यवस्था समाज में श्रम विभाजन का परिणाम है इसलिए उसकी रचना के लिए अनाथों की विजय की कल्पना आवश्यक नहीं है। जिस समाज के सदस्य स्वयं को आर्य कहते थे उसमें द्विज आर्य थे। शूद्र भी आर्य थे।"[२]

हिन्दू धर्म से पूर्व वैदिक धर्म की मान्यता थी जिसमें अनेक देवी-देवताओं को स्वीकार किया गया। अतः वैदिक धर्म बहुदेववाद का पोषक था। वैदिक धर्म की मुख्य विशेषता उसके 'वर्णाश्रम धर्म' में निहित है जो संपूर्ण समाज को चार वर्णों में विभाजित करता है। यहीं वर्णाश्रम धर्म मनुस्मृति के पश्चात् ब्राह्मणवाद में बदल गया और यही ब्राह्मणवाद जातिवाद में परिवर्तित हो गया जो हिन्दू धर्म के अभिन्न अंग बने गये हैं जिसका समय-समय पर समाज सुधारकों द्वारा विरोध होता रहा। हिन्दू धर्म को 'सनातन धर्म' भी कहा गया है। सनातन का अर्थ जो सदा बना रहे।

---

१ श्रीनिवास एम.एन, *आधुनिक भारत में जातिवाद तथा अन्य निबंध*, पृ.६८

२ शर्मा रामविलास, *मार्क्स और पिछडे हुए समाज*, पृ.४३

भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक परम्परा में 'श्रुति' एवं 'स्मृति' का महत्वपूर्ण स्थान है। स्मृति ग्रन्थों में प्रमुख 'मनुस्मृति' है, जो हिन्दुओं के धार्मिक ग्रन्थ है। यह मनु द्वारा बारह अध्यायों में लिखी गयी रचना हैं। जिसमें धर्म का लक्ष्य, वर्णव्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, न्याय व्यवस्था, राजधर्म आदि अनेक विषयों पर विस्तार से विचार किया गया है। 'मनुस्मृति' के प्रथम अध्याय में मनु वर्णव्यवस्था को इस प्रकार वर्णित करते हैं-

''लोकानान्तु विवृद्धयर्थ मुखाबाहूरूपादतः।
ब्राह्मण क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्त्तयत्।। ''[१] (३१)

जिस प्रकार मनुष्य शरीर के हिस्से गुण कर्म से अलग-अलग है ऐसे ही सारे जगत् में मनुष्य जाति के चार विभाग गुण कर्म से अलग-अलग है। इस प्रकार वैदिक कालीन वर्ण व्यवस्था जो कर्म पर आधारित थी, धीरे-धीरे वर्ण व्यवस्था का स्वरूप लुप्त होता गया तथा समाज में शूद्रों की स्थिति निम्न से निम्नतर होती गयी। इस धार्मिक ग्रन्थ में शूद्रों का जीवन, कर्तव्य, दासता, दण्ड आदि के बारे में सर्व स्वीकृत नियम बनाया है। इसका उदाहरण मनुस्मृति के दशमोंध्याय में हैं वह नीचे दिये हैं-

''चण्डालश्चपचानां तु बहिर्ग्रमात्प्रतिश्रयः।
अपपाश्रच कर्तव्य धनमेषा रवगर्दभम[२] ''।। (५१)
''वासांसि मृतचेलानि भिन्नमाण्डेषु भोजनम्।
कर्ष्णायसमलङ्कारः परिव्रज्या च नित्यश''[३]।। (५२)

---

१ प्रवीण प्रलयङ्कर, मनुस्मृति, पृ. ३३.

२ प्रवीण प्रलयङ्कर, मनुस्मृति, पृ.१०९८.

३ वहीं, १०९८.

अर्थातः चण्डाल और श्वपच का निवास गाँव से बाहर होते हैं और यह पात्रों से रहित करना चाहिए। कुत्ते, गंधे इनका धन हैं और वस्त्र मुर्दे के कफन होते हैं। फूटे सकोरे आदि में इनका भोजन कहा गया है और लोहे के अभूषण इनके अलङ्करण होते हैं। श्वपच और चंडालादि से भंगी का भी ग्रहण होता है।

मनुस्मृति के अष्टमोडध्याय में शूद्रों के लिए दण्ड नियम के बारे में बताया है।

"पाणिमुद्यमय दण्ड वा पाणिच्छेदनमर्हति।
पादेन प्रहरूकोपात्पादचछेदनमर्हति[१] "।। (२८०)

अर्थातः यदि शूद्र मारने के निमित्त हाथ अथवा दंड को उठाए तो वह हाथ काटने के दंड योग्य होता है। यदि वह क्रोध से पैर से प्रहार करे तो पैर काटने योग्य होता है।

"सहासनम भिप्रेत्सुरुत्कृष्टस्यापकृष्टजः।
कटयां कृताङ्को निर्वास्यः स्फिचं वास्यावकर्तायेत्[२]"। (२८१)

अर्थातः शूद्र यदि ब्राह्मणादि उत्तम वर्ण के साथ एक आसन पर बैठने की इच्छा करे तो राजा उसकी कमर पर दाग देकर देश से निकाले अथवा उसके चूतड़ को चिन्ह के लिए दाग दे।

"अवनिष्ठिवतो दर्पाद्वावोष्ठौ छेदयेन्नृपः।
अवभुत्रयतो भेद्रवशर्धयता गुदम्"[३]। (२८२)

अर्थातः अभिमान से ब्राह्मणों के ऊपर थूकते हुए शूद्र के दोनों होंठ, पेशाब करते हुए लिंग और अपान वायु करते हुए गुदा को राजा कटवा ले। यह विधान जान बूझकर

---

१ प्रवीण प्रलयङ्कर, मनुस्मृति, पृ. ८५५.

२ वही, पृ. ८५५

३ वही, ८५६

अपराध के विषय में है। वस्तुतः मनुस्मृति ने शूद्रों के लिए अमानुषिक दण्डविधान का नियम बनाकर सामाजिक संरचना में कैद किया है।

मनुस्मृति के दशमोध्याय में शूद्र किस तरह अपना जीवन-यापन करना है इसका उदाहरण मिलते हैं।

''वर्णापेतम विज्ञांत नर कलुषयोनिजम्
आर्थरूपमिवानार्य कर्मभिः सर्वेर्विभावयेत्[१]'' ।। (५७)

अर्थातः जो मनुष्य वर्णों से पतित हो जगत में प्रसिद्ध न हो और सज्जन के समान दीखता हो वस्तुतः दर्जन हो, किसी नीच से पैदा हो उसको निन्दित कर्मों से जान ले।

''शूद्रस्तु वृत्तिमाकाङक्षन्क्षत्रमाराधयेद्यदि।
धनिनं वाप्युपाराध्य वैश्यं शूद्रो जिजीविषेत्''[२] ।। (१२१)

अर्थातः ब्राह्मण की सेवा से नहीं जीता हुआ शूद्र यदि जीविका की इच्छा करे तो क्षत्रिय की सेवा करे और क्षत्रिय के न मिलने पर धनी वैश्य की सेवा करके जीवनयापन करें।

''उच्चिष्टमन्नं दातव्यं जीर्णानि वस्नानि च।
पुलाकाश्कराचैव धान्ययानां जीर्णाश्चैव परिच्छादाः[३]'' ।। (१२५)

अर्थातः ब्राह्मण अपने सेवक शूद्र को भोजन से शेष अन्न और फटे पुराने वस्त्रों को तथा अन्न के फटकन और पुरानी चीज़ों को दें।

---

१ प्रवीण प्रलयङ्कर, *मनुस्मृति,* पृ. ११००

२ वही, पृ. ११३०

३ वही, पृ. ११३१.

''शक्तेनापि हि शूद्रेण न कार्यो धनसंचयः
शूद्रों हि धनमासाद्य ब्राह्मणानेव बाधते''[१]।। (१२९)

अर्थातः धन के संचय में समर्थ शूद्र भी धन के संचय को न करे क्योंकि शूद्र धन को प्राप्त होकर ब्राह्मणों को ही पीड़ा देता है। आशय यह है कि शूद्र कुटुम्ब के पालन पोषन मात्र धन रखें। अधिक धन रखकर शास्त्र का धर्म न जानने से मद के कारण वे उच्च जाति का तिरस्कार करेंगे। छोटी जाति थोड़े धन से ही घमण्डी हो जाते हैं।

''यो लोभादधमो जात्या जीवेदुत्कृष्टकर्मभिः
तं राजा निर्धनं कृत्वा क्षिप्रमेव प्रवासयेत्''[२]।। (९६)

अर्थातः यदि जाति से अधम पुरुष लोभवश उत्कृष्ट जाति के कर्मों से आजीविका करता है तो राजा उस मनुष्य को निर्धन करके उसी समय अपने देश से निकाल दें।

वस्तुतः मनुस्मृति ने शूद्रों के जीवन में गुस्कर उसे कठिन नियमों से बँधकर उनसे नाइन्साफ किया है। धर्मों और शास्त्रों भी स्त्रियों की गुलामी को बढाने में एक बडी भूमिका निभाई है। मनुस्मृति में कहा गया है-

''नास्ति स्त्रीणां क्रिया मत्रैरिति धर्मे व्यवस्थितिः।
निरिन्द्रिया हयमंत्राशय स्त्राये/नृतमिति स्थिति''[३] ।। (१८)

अर्थातः धर्मशास्त्र की आज्ञा है कि स्त्री का जाति कर्मादि संस्कार मंत्र विहीन हो, क्योंकि वह अज्ञानी होती है। मंत्र की अनाधिकारिणी होने से उसकी स्थिति मिथ्या ही

---

१ प्रवीण प्रलयङ्कर, मनुस्मृति, पृ. ११३३

२ वही, पृ. १११८.

३ वही, पृ. ९२२

होती है। एक तरफ स्त्री पवित्रता का प्रतीक देवी जैसा चित्रण किया है तो दूसरी तरफ उसे गुलाम बनाकर उसका अस्तित्व ही मिथ्या बताया है।

अतः हम कह सकते हैं कि मनुस्मृति एक धार्मिक ग्रन्थ नहीं है, वह अधार्मिक ग्रन्थ है। साथ में वर्णव्यवस्था के पोषक, असमानता, अमानवीयता, भेद-भाव का जनक एवं संचालक भी है। डॉ. बाबा अंबेडकर ने इस सत्य को समझा और एक साथ वर्णव्यवस्था के विरुद्ध सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक लड़ाइयाँ लड़ी। मनुस्मृति के विषय में बाबा अम्बेडकर कहते हैं कि "भारत को जो अभिशाप है, मनुस्मृति उनमें से एक है और वह अभी भी हमें सता रही हैं। पाँच हज़ार साल बीत गए हैं, लेकिन मनु अभी भी हमें सता रहा हैं। उसने हिन्दू समाज को चार वर्णों में बाँट दिया-बहुत कुरुप-उसने स्त्री का अवमूल्यन किया। उसने समाज के एक चौथाई हिस्से को मनुष्यता से भी नीचे गिरा दिया। उनको गुलाम बनाया और वह अभी भी जारी है...तो मैं मनुस्मृति के पक्ष में नहीं हूँ। मैं तो सिर्फ यही चाहता हूँ कि मनुस्मृति की सब किताबें जला दी जाएँ और मनु की प्रेतात्मा से हम मुक्त हो जाएँ। उसने हमें बहुत सता लिया।"[१] उन्होंने सन् १९२७ में मनुस्मृति को सार्वजनिक रूप में जला दिया। ये भारत के इतिहास के लिए एक अविस्मरणीय घटना है। साथ में उन्होंने भारतीयों के लिए एक अच्छा व्यवस्थित संविधान भी बनाया।

२.४.२.२ दलित और जाति

दलितों के समस्त दुःखों के मूल में ज़हर रूपी जाति है। यह भारतीय समाज की सबसे बड़ी सच्चाई है। वर्णाश्रम व्यवस्था से निकली जाति व्यवस्था कालान्तर में जन्म पर आधारित हो गई और अपने को सर्वोच्य मानने वाली ब्राह्मण जाति ने अन्य जातियों के इतिहास को धीरे-धीरे धकेल दिया। भारतीय समाज में जाति एक महत्वपूर्ण अंग है।

---

१ डॉ. बाबा साहब अंबेडकरः *रैंटिंगस एण्ड स्पीच्चस खंड*. ५, पृ. २८६.

जाति का नाम जानते ही लोगों का व्यवहार और आचरण बदल जाता हैं। इस जाति के कारण हज़ारों सालों से दलित समाज शिक्षा से वंचित है। भारत स्वतंत्र होने के बाद, शिक्षा के प्रसार से भारतीय जन जीवन में परिवर्तन हुआ है। समकालीन दलित साहित्य इस शिक्षा की उपज है जिसने दलितों के अन्तनेत्र को खोल दिया था। इसलिए दलित साहित्य शिक्षित दलित वर्ग की अन्तरात्मा की पुकार है, जिसमें आत्ममुक्ति की अनुगूँज है।

दलितों की संवेदना और संग्राम आम आदमी की संवेदना और संग्राम से भिन्न है। उसकी समस्या केवल रोटी की समस्या नहीं है। उसकी अस्ली समस्या वर्ण और जाति को लेकर है। डॉ. अंबेडकर ने मनु और उसकी स्मृति को जाति व्यवस्था का समर्थक माना है। सब से पहले पुरोहितों या ब्राह्मणों का वर्ग बना, बाद में अन्य वर्णों तथा जाति की व्युत्पत्ति शुरु हुई। जिस का फल हिन्दु समाज को ही नहीं बल्कि सारे भारतीय समाज को भोगना पड़ता है। जाति-प्रथा के संबंध में विचार करने से पता चलता है कि उत्पादन और दस्तकारों की विकास के साथ जातियों का भी विकास हुआ। विभिन्न वर्ग के साथ विभिन्न पेशों जो वर्ण पर आधारित हुए। इस प्रकार जातियों का उदय होने के पश्चात लोगों को जातियों के साथ-साथ सामाजिक और आर्थिक पहचान भी होने लगी। समाज में कुछ जातियाँ काम अधिक करती थी। लेकिन आर्थिक रूप से कमजोर थी। क्योंकि वे समाज से बहिष्कृत थे। उन्हें छू तक नहीं सकते थे। उन्हें अस्पृश्य माना गया।

२.४.२.३ अस्पृश्यता

भारतीय समाज में अस्पृश्य जातियाँ संख्या में अधिक है। चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के आधार पर इनका स्थान समाज में हीन और निचले स्तर का रखा। उल्लेखनीय है कि शूद्र से भी नीचे समाज से बहिष्कृत यह जनता है। अछूत प्रथा अल्पमत द्वारा बहुमत पर सामाजिक बुराइयों थोपे जाने का प्रतीक है। अस्पृश्यता दलित समाज के लिए ही नहीं पूरे

भारत देश के साथ-साथ सारे संसार के लिए बुराई है। डॉ. बाबा अम्बेडकर अछूत प्रथा के संबंध में लिखते है-

> "गरीब होना बुरा है पर इतना नहीं, जितना की अछूत होना
> गरीब स्वाभिमानी हो सकता है किन्तु अछूत नहीं हो सकता
> निम्न होना बुरा है पर इतना नहीं, जितना की अछूत होना
> निम्न व्यक्ति ऊपर उठ सकता है किन्तु अछूत नहीं उठ सकता।"[१]

डॉ. बाबा अम्बेडकर ने अस्पृश्यता की भीतरी परिभाषा इस प्रकार दी हैं- "अस्पृश्यता आन्तरिक तिरस्कार की बाहरी अभिव्यक्ति है जो एक हिन्दू किसी निश्चित व्यक्ति के बारे में महसूस करता है।"[२] इस परिभाषा से हिन्दू का व्यवहार नहीं, बल्कि उसकी मानसिकता पकड़ी जाती है। गाँधीजी भी अस्पृस्यता को हिंदू समाज का कलंक कहा है। उन्हीं के शब्दों में "अस्पृस्यता हिंदू जाति पर एक लज्जाजनक कलंक है। हिंदू जाति जब तक, मिटाने में सफल नहीं होती तब तक हिंदू जाति खतरे में है।"[३] महात्मा गाँधी ने जिन जातियों को 'हरिजन' नाम दिया उन्हें अछूत अवर्ण पंचम आदि नामों से बुलाये जाते थे। हिंदुओं के द्वारा अछूत को छूने से, बात करने से, उनको देखने तथा रास्ते पर चलने से उच्च जाति वाले अपवित्र हो जाते थे। अछूत लोहे के भूषण पहने उन्हें फट पुराने वस्त्र पहनने, तुच्छ भोजन खाने, मजबूर किया गया था। इस तरह मनुस्मृति से जन्म के आधार पर उत्पन्न वर्ण/जाति/अछूतापन दलितों का झंझीर बन गया है। हिन्दू के मन में जाति वैमनस्य बहुत गहरा पड़ा है। इसको मिटाने के लिए

---

१ श्यौराज सिंह बेचैन, डॉ. देवेन्द्र चौबे,(सं) चिंतन की परंपरा और दलित साहित्य, पृ.११५

२ डॉ. धर्मवीर, *दलित चिंतन का विकास-अभिशप्त चिन्तन से इतिहास चिन्तन की ओर*- पृ.१०४

३ कान्ती मोहन, *प्रेमचंद और अछूत समस्या*, पृ.७.

वर्णव्यवस्था को समाप्त करके समाज में स्वतंत्रता, समता, भाईचारे का नया दीप जलाना होगा।

२.४.३ लोकायती दर्शन

भारतीय इतिहास और संस्कृति में लोकायती दर्शन का महत्वपूर्ण स्थान है। जिसके संबन्ध में अनेक ग्रन्थ रचे गये लेकिन अब अप्राप्य है। हम जानते हैं कि मनुस्मृति में स्पष्ट रूप से बलपूर्वक कहा गया है कि "पुरोहित अभिजात्य के प्रभुत्व एवं वर्ण पर आधारित सन्स्तरण की पुनस्थापना केवल धार्मिक आदेशों के माध्यम से ही नहीं वरना राजा एवं राज्य के पूरी शक्ति के माध्यम से होनी चाहिए। इस सर्वोचता को स्थापित करने केलिए शास्त्रों के उपयोग की खुली प्रशंसा की गयी। राजा को चाहिए कि वो वर्ण सन्स्तरण का दंण्ड की शक्ति के माध्यम से स्थापित करें। अन्य द्विज लोगों को भी इस बात केलिए प्रेरित किया गया कि यदि उनके वर्णगत कर्तव्य के पालन में कोई व्यवधान होता है तो वे शस्त्र उठाऐं"।[१] नाट्यशास्त्र के रचनाकार भरतमुनि शास्त्रीय रंगमंच के प्रवर्तक है। लेकिन हमारेलिए विचारणीय विषय ये हैं कि नाट्य कला के उत्भव और विकास के मूल में लौकिक धारणा रही है या धार्मिक या दैविक धारणा। प्रो. अच्युतन जी का मत सही है कि "इस द्वंद के पीछे मूल रूप से दो संस्कृतियों, परंपराओं या विचारधाराओं का संघर्ष हैं।"[२] लोकायती दर्शन लौकिक धारणा के पक्ष में है क्योंकि वे 'पदार्थ को परमसत्य' मानते हैं। अनेक विद्वान दैविक धारणा के बदले लौकिक अवधारणा के पक्ष में है। 'The making of theatory history' के लेखक Paul Kuritiz (१९८८) 'The root of theatory' के लेखक Eli Rojik (२००२) आदि विद्वानों का

---

१ Donigr wned and Vrain, K. Smith (Trans. 1912 मनुस्मृति)

२ देशी नाट्य परंपरा और दलितों की सांस्कृतिक अस्मिता, प्रपत्र, Presented by National Seminar, Dept. Hindi, Babasahib Bhimrav Ambedkar University, Aurangabad 2016.

कहना है कि "रंगमंच के उद्‌भव के एकल दैविक अवधारणा आदिम आदिवासियों के अविकसित रंग मंच के रूपों तथा अन्य तथ्यों के बाद स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए।"[१]

अभिव्यक्ति मानव का जन्मजात स्वभाव है। प्रकृति के हर जड़ चेतन वस्तुओं में अभिव्यक्ति हैं। आदिम मनुष्य के रूप, रंग, रुचि एवं वातावरण के अनुसार उसकी अभिव्यक्ति हुई है। इस अनुकरण का साधन प्रकृति ही है। भावाभिव्यक्ति केलिए उनके पास शब्द या भाषा नहीं थे। अपने शरीर से कई प्रकार के ध्वनियों से भावाभिव्यक्ति कर रहे थे। अभिव्यक्ति के प्रथम चरण के इस अंगसंचालन से आचार्यों ने बाद में नृत्य संबन्धी अवधाराणा रूपायित किया। मूलवासियों ने प्रकृति के हर वस्तु में ताल-लय देखा है। इस ताल-लय समन्वय ही प्रकृति को संतुलित बनाये रखा है। यह रहस्य हमारे पूर्वजों ने जान लिया था। हर जीवन में एक ताल और लय है। इस तथ्य को बाद में विभिन्न रीतियों में अभिव्यक्त करता है। जैसे "ताण्डव और लास्य; शिव और शक्ति दोनों प्रकृति में शामिल है। इसके सही अनुपात में बने रहना सृष्टि के लिए अनिवार्य है; सृष्टि का रहस्य है। अतः यह देशी नाट्य परंपरा का मूलाधार बन सकते हैं।"[२] इतना ही नहीं आचार्य बृहस्पति चार पदार्थों के एक निर्दिष्ट सम्मिश्रण से (भूमि, जल, वायु, अग्नि) से जगत के उत्पत्ति की ओर संकेत भी दे रहे हैं। अतः महात्मा गौतम बुद्ध के समता दर्शन के पहले लोकायती दर्शन का यह वैज्ञानिक सिद्धान्त दलित कविता की विचारभूमि के प्रथम चरण के रूप में ले सकते हैं।

---

१ देशी नाट्य परंपरा और दलितों की सांस्कृतिक अस्मिता, प्रपत्र, Presented by National Seminar, Dept. Hindi, Babasahib Bhimrav Ambedkar University, Aurangabad 2016.

२ वही,

२.४.४ समता दर्शन और गौतम बुद्ध

बौद्ध धर्म भारत का प्राचीन धर्म है। यह भारतीय संस्कृति एवं इतिहास का एक अंग है। इसके संस्थापक महात्मा बुद्ध माने जाते हैं। संसार के दुःखों को किस प्रकार दूर किया जाए यह चिन्ता सिद्धार्थ को निरन्तर सताने लगी। तत्वज्ञान अर्थात बोधि प्राप्त कर लेने के बाद वे बुद्ध की संज्ञा से विभूषित किये गये। इस नाम के अतिरिक्त उन्हें तथागत (जो वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप को जानता है) तथा अहेत की संज्ञा से भी सम्बोधित किया गया। संपूर्ण सत्य का ज्ञान प्राप्त हो जाने के बाद महात्मा बुद्ध ने लोक-कल्याण की भावना से प्रेरित होकर अपने सन्देश को जनता तक पहूँचाया। महात्मा बुद्ध के उपदेश के फल-स्वरूप बौद्ध धर्म का सूत्रपात हुआ। बौद्ध धर्म सर्वप्रथम भारत में फैला। उस समय भारत में ब्राह्मण धर्म था। जिसमें बलि-प्रथाओं की प्रधानता थी। इस भयानक वातावरण में बौद्ध धर्म का आविर्भाव हुआ, जो अहिंसा पर आधारित था। नृपों एवं भिक्षुओं की सहायता से दूसरे देशों में भी इसका प्रचार-प्रसार हुआ। इस प्रकार यह धर्म विश्व धर्म के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। भगवान बुद्ध ने कहा था-"अप्प दीपो भवः अत्त नाथो भवः"[१] अर्थात अपने दीपक स्वयं बनो, और अपना स्वामी स्वयं बनो। उन्होंने उन्होंने यह भी कहा-"हे मानव, तू स्वयं अपना कर्ता-धर्ता है, तेरी गति-सुगति अथवा दुर्गति तेरे ही हाथों में है, तू ही उसके लिए जिम्मेदार है।"[२]

महात्मा बुद्ध एक समाज सुधारक और दार्शनिक थी। बुद्ध के अनुसार संसार दुखों से परिपूर्ण है। दुःख के सम्बन्ध में जितने प्रश्न है उनके उत्तर जानने के लिए उन्होंने मानव को प्रेरित किया। अपने जीवन का उद्धेश्य को स्पष्ट करते हुए कहा है- "मैं दुःख

---

१ जयप्रकाश कर्दम (सं), *दलित साहित्य वार्षिकी*-२००४, - पृ.५३

२ वहीं, पृ.५३

और दुःख निरोध पर ही अधिक बल देता हूँ।"[१] बौद्ध धर्म कर्म सिद्धान्त में विश्वास करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार मानव का वर्तमान जीवन उसके अतीत जीवन के कर्मों का फल है तथा उसके भविष्य जीवन वर्तमान जीवन के कर्मों का फल होगा। साहित्य की सार्थकता अथवा अर्थवत्ता भी वहीं प्रमाणित होती है जहाँ बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय! के तत्व समाहित हो। बुद्ध धर्म समता एवं बंधुता पर आधारित है तथा जातिभेद व ऊँच-नीच को नहीं मानता। यह मानवतावादी धर्म है। महात्मा बुद्ध ने कहा था- "ऊँचे वर्ग के लोग आसमान से नहीं आते हैं, और न उस वर्ग की कोई विशेष जाति है। जितने प्राणी है, सब एक समान है, सब आपस में भाई-भाई है।"[२] भगवान बुद्ध के धर्म के बारे में डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि-"जीवन की पवित्रता, जीवन की पूर्णता, निर्वाण प्राप्ति, तुष्णा का त्याग और कर्म को नैतिक संस्थान मानना ही धर्म है।"[३] बुद्ध धर्म वास्तव में मनुष्य द्वारा मनुष्य के लिए निर्मित धर्म है।

दूसरे धर्मों और बौद्ध धर्म में बड़ा अंतर है। बौद्ध धर्म की महान और मूल आधार की बातें दूसरे धर्मों में नहीं मिलेगें। क्योंकि दूसरे धर्म मनुष्य और ईश्वर के गहरे संबंध को बताते हैं। ईश्वर और आत्मा के लिए बौद्ध धर्म में कोई स्थान नहीं है। दुःख से पीड़ित गरीब लोगों का उद्धार करना ही बौद्ध धर्म का मुख्य ध्येय है। भगवान बुद्ध ने कहा कि बौद्ध धर्म "बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय लोकानुकम्पाय आदि कल्याण, मध्य कल्याण पर्यवसान कल्याण अर्थात बहुत जनों के हित केलिए है और सब लोगों पर अनुकम्पा के लिए है। यह आदि मध्य और अन्त में कल्याणकारक है।"[४]

---

१ डी. आर, जाटव, *विश्व धर्म और अम्बेडकर*, पृ.१३२

२ राजमल सिंह राज, *अम्बेडकर बनाम सामाजिक परिवर्तन* - पृ.४१

३ माताप्रसाद, *दलित साहित्य दशा और दिशा,* पृ. ६१

४ डी. आर. जाटव, *विश्व धर्म और अम्बेडकर,* पृ.१६८

दलित साहित्य कई दृष्टि से बौद्ध साहित्य से समानता रखता है। क्योंकि दोनों का केंद्र मनुष्य और मानव कल्याण है। एक स्थान पर बुद्ध ने कहा है कि-"मेरे शब्दों को प्रमाण न मानो। तुम्हारी बुद्धि अथवा अनुभव से जो बात जांचती हो उसे ही सत्य मानो। इस विश्व में अंतिम और अपरिवर्तनीय कुछ भी नहीं हैं। परिवर्तन तथा सतत् परिवर्तन ही सत्य है।"[१] अतः बात स्पष्ट है कि बौद्ध धर्म रूढ़ीवादी विचारों को, विश्वासों पर भरोसा रखने वाला नहीं है। वास्तविक विचारों पर ध्यान देने वाली है।

२.४.५ महात्मा फुले और सावित्री बाई फुले

अस्पृश्यता निवारण और बहुजनसमाज के हित केलिए संपूर्ण जीवन भर कार्य करने वाला व्यक्ति है महात्मा ज्योतिबा फुले । उन्होंने सामाजिक विषमता के खिलाफ संघर्ष करने हेतु 'सत्यशोधक आन्दोलन' का नेतृत्व किया। जातिभेद और धर्मभेद की आलोचना करते हुए मानव की समानता का प्रचार किया। उन्होंने ब्राह्मणवाद को नष्ट करने की नीति को अपनाया। उनके सत्यशोधक आन्दोलन का मुख्य कार्य था-सामाजिक विषमता को नष्ट करना, ईश्वर और भक्त के बीच के दलालों को नष्ट करना, शिक्षा के द्वार सभी केलिए खोलना। सन् १८५१ में लड़कियों के लिए और सन् १८५२ में अछूतों के लिये इन्होंने अपनी पत्नी की सहायता से स्कूल खोले, सावित्री बाई फुले वहाँ की अध्यापिका बनी। सन् १८६४ में बालहत्या प्रतिबंधक गृह की स्थापना की जिससे विधवा माँओं के बच्चों को आश्रय मिला। उन्होंने अछूतों केलिए अपने घर का पानी का कुंड खोल दिया जिसके कारण उन्हें समाज और जाति से बहिष्कृत कर दिया गया। वे अनेक कष्टों को झेलकर जीवन के अंत अपने कार्य को पूरा करने हेतु संघर्ष करते रहे। ईश्वर तथा धर्म के नाम पर ब्राह्मण द्वारा आम आदमी को शोषण से बचाने के लिए सन् १८७३ में 'सार्वजनिक सत्य धर्म' की स्थापना कर सत्य ही ईश्वर है ऐसा घोषित किया।

---

१ डॉ. दोड्डा शेषु बाबु, *दलित कविता का यथार्थवादी परिदृश्य*, पृ.२२

२.४.६ डॉ. बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर

भारतीय मूल निवासियों की चेतना के प्रतीक पुरुष, बोधिसत्व-भारतरत्न डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्व के उन महापुरुषों में सम्मिलित हैं, जिन्होंने आदमी को आदमी का वास्तविक दर्जा दिलाने के लिए जीवन भर संघर्ष किया। उनका प्रसिद्ध नारा है- 'शिक्षित बनो, संगठित हो और संघर्ष करो'। नागपूर की 'डिप्रस्ड क्लास' की सभा में उन्होंने कहा, "My final words of advise to you is educate, agitate or organize, have faith in yourselves and never lose hope. I shall always with you as I know you will be with me."[१] शिक्षित होने का अर्थ है- अम्बेडकरवादी हो जाना। अम्बेडकरवाद भारत के बहुजनों की वैचारिक अथवा बुद्धिवादी क्रान्ति है। यह श्रमण संस्कृति है तथा यह करुणा, मैत्री, ज्ञान व त्याग पर आधारित है। कठिन संघर्ष से बाबा अम्बेडकर मानवता के मसीहा बने तथा वे करोड़ों दलितों पीड़ितों के पूजनीय बने। बाबा अम्बेडकर प्रेरित दलित साहित्य ने मनुष्य को केंद्र माना है। डॉ. बाबा अम्बेडकर ने भारत के संविधान में सबको समानता का अधिकार देकर इस व्यवस्था को संवैधानिक धरातल पर बदल दिया। लेकिन समाज में यह असमानता आज भी मौजूद है। सवर्णों के मस्तिष्क में 'मनु' आज भी जिन्दा है जो कहता रहता है-

"माङ्गल्यं ब्राह्मणस्य स्यात्क्षत्रियस्य बलान्वितम्।
वैश्यस्य धनसंयुक्तं, शूद्रस्य तु जुगुप्सितम् ।।"[२] (३१)

कि ब्राह्मण का नाम मंगल सूचक शब्द से युक्त, क्षत्रिय का नाम बल सूचक शब्द से वैश्य का नाम धन सूचक शब्द से युक्त तथा शूद्र का नाम घृणित शब्द से युक्त रखा जाना

---

१ Dr. Baba Saheb Ambedkar, Writing and Speeches, Vol. 3, Education Department, Govt. of Maharashtra, p. 51.

२ प्रवीण प्रलयङकर, मनुस्मृति (दूसरा अध्याय), पृ. १०३

चाहिए। डॉ.अम्बेडकर सामाजिक धरातल पर इसी व्यवस्था में परिवर्तन चाहते थे। वर्ष १९२७ में दलितों की अगुवाई करते हुए उन्होंने सार्वजनिक रूप से मनुस्मृति का बहिष्कार किया। १९४६ में प्यूपिल्स एजुकेशन सोसाइटी बनाकर तमाम स्कूल और कॉलेजों की भरमार कर दी। अम्बेडकर-दर्शन मानवीय संवेदनाओं, समतामूलक समाज की स्थापना, स्वतंत्रता के अधिकार, पारस्परिक बन्धुत्व भाव उत्पन्न करने और वर्ण-व्यवस्था से मुक्त होकर जीवन जीने के सरोकारों का दर्शन है। इसी विचार की प्रेरणा लेकर दलित अपना पहचान कराता है। बाबा साहब ने कहा था- "जो धर्म तुम्हें समानता न दे, बराबर के अधिकार न दे और सम्मान न दे, वह अंधे कुँए के समान है, उससे जितनी जल्दी तुम किनारा करोगे उतनी ही जल्दी तुम मानवता के नज़दीक आओगे।"[१] उन्होंने आज़ाद भारत का संविधान बनाने केलिए अधिक परिश्रम किया। इससे उन्हें 'संविधान के शिल्पकार' के रूप में गौरवान्वित किया जाता है। दलित को उनकी अस्मिता का अहसास सही मायनों में डॉ.अम्बेडकर ने कराया। उन्होंने ही उनकी अन्याय और शोषण के खिलाफ संघर्ष करने केलिए प्रेरित किया। उन्होंने सर्वप्रथम बम्बई में अछूतों की सभा लेकर 'अन्त्यज' संघ की स्थापना की। बाद में सन १९२४ में 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' की स्थापना की। प्रस्तुत सभा ने शिक्षा के प्रचार-प्रसार को प्रधानता दी थी। उन्होंने समाज में स्त्रियों की रचनात्मक भूमिका को स्वीकार किया और वे स्त्रियों को भी पुरुषों के समान अधिकार देने के पक्ष में थे। डॉ. अम्बेडकर ने अछूतों के बीच शिक्षा के प्रसार का व्यापक प्रयत्न किया। दलित विद्यार्थियों की शिक्षा के लिए अलग से विद्यालय तथा छात्रावास कायम किए। उन्होंने दलितों की स्थिति सुधारने तथा समाज में जागरूकता स्थापित करने के लिए तीन राजनीतिक दल बनाए- इंडिपेंडेड लेबर

---

१ राजमल सिंह राज, *अम्बेडकर बनाम सामाजिक परिवर्तन*, पृ.६

पार्टी-१९३६,आल इंडिया पार्टी आफ इंडिया-१९४२, रिपब्लिकन पार्टी आफ इंडेया-१९५६।

डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर के जीवन का सर्वप्रथम लक्ष्य सामाजिक क्रांति लाना था। वे वर्ण और जाति-प्रणाली को तोड़कर ऐसी व्यवस्था की स्थापना करना चाहते थे, जिससे प्रत्येक व्यक्ति को अपने विकास का पूरा अवसर मिले। इसके लिए उन्होंने लोकतांत्रिक समाजवाद का रास्ता अपनाया। उन्होंने कहा कि उदासीनता किसी समाज को लगनेवाली सबसे बुरी बीमारी है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति चेतनायुक्त होना चाहिए। वह एक नवीन समाज की स्थापना करना चाहते थे। डॉ.अम्बेडकर के अनुसार, 'आदर्श समाज वह होगा, जो स्वतंत्रता, समता, एवं भातृत्व पर आधारित है।"[१] डॉ.अम्बेडकर अपनी आदर्श-समाज-व्यवस्था में निजी संपत्ति के अधिकार को मान्यता देते थे। देश के कानून मंत्री के रूप में हिन्दू कोड बिल का प्रारूप बनाने में इनका अमूल्य व प्रमुख योगदान रहा है। बाबा अम्बेडकर कहते हैं कि- 'दूसरों के भरोसे मत बैठो हमें अपने लिए स्वयं ही लड़ना हैं। हमें अपनी ही शक्ति पर भरोसा करना है और यह संभव है कि हम इस ऊँच-नीच की खाई को खत्म कर देंगे।"[२] डॉ.अम्बेडकर दलितों की शिक्षा के लिए शिक्षण संस्थाऐं भी खोली जिन्में सिद्धार्थ कॉलेज बम्बई १९४६ मिलिन्द कॉलेज औरंगाबाद सिद्धार्थ कालेज आफ लो बम्बई १९५६ आदि थे। १९२० में उन्होंने मराठी भाषा में 'मूकनायक' साप्ताहिक शुरू किया था। १९२७ में 'बहिष्कृत भारत', १९३० में 'समता में जनता'और प्रबुद्ध भारत समाचार पत्र निकाले। दलितों के अधिकारों हेतु सन १९२४ में बहिष्कृत हितकारिणी सभा तथा १९२६ में समता सैनिक दल की स्थापना की। १९२५ में मलवाणा गाँव जिला रत्नागिरि महाराष्ट्र में बाम्बे प्रान्तीय अस्पृश्यता परिषद का

---

१ डॉ. बाबा अम्बेडकर, *लाइफ एड मिशन*, पृ.४५६

२ मोहनदास नैमिशराय (सं) बयान, दिसंबर २०१०, पृ.१८

पहला अधिवेशन डॉ. बाबा अम्बेडकर की अध्यक्षता में हुआ। इस अधिवेशन में सार्वजनिक कुँओं व मंदिरों में प्रवेश व पानी लेने के लिए अभियान की घोषणा की गई। सन १९२७ में असमानता व अस्पृश्यता की प्रतीक मनुस्मृति का सार्वजनिक दहन किया।

डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर ने लन्दन में आयोजित प्रथम गोलमेज सम्मेलन १९३० तथा द्वितीय गोल मेज़ सम्मेलन १९३९ में अंग्रेज़ी हुकुमत से अछूतों के लिए पृथक निर्वाचन तथा भारत के पूर्ण स्वराज्य की मांग की। ब्रिटिश सरकार ने इस माँग को मानते हुए कम्युनल अवार्डस की घोषणा करके अछूतों के लिए पृथक निर्वाचन तथा दो वोट का अधिकार दिया। जिससे वे एक वोट से अपना अछूत तथा दूसरे वोट से सवर्ण प्रतिनिधि चुन सकते थे। गाँधिजी ने इसे हिन्दू समाज का विघटन मानकर इसके खिलाफ पूना की यरवदा जेल में आमरण अनशन शुरु कर दिया। उसके बाद अम्बेडकर ने १९३२ में पूना पैकैट के माध्यम से समझौता कर लिया तथा अंग्रेज़ों द्वारा दी गई सहूलियतों को छोड दिया। पूना पैकैट के अनुसार शिक्षण तथा सरकारी सेवाओं में आबादी के हिसाब से आरक्षण तथा अछूतों के लिए विधान सभाओं में १४८ सीटे आरक्षित की गई।

डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर का सपना एक सुदृढ़, समुन्नत और सुखी-सम्पन्न राष्ट्र और समाज की सपना थी। इसके लिए उन्होंने जाति विहीन और वर्ग विहीन समाज की स्थापना की परिकल्पना की। उन्होंने ऐसे धर्म का चयन किया जो अनीश्वरवादी होते हुए भी शुभत्व, नैतिकता करुणा, समानता, मैत्री जैसे सदगुणों से ओतप्रोत था। यही मानवतावादी दर्शन उनके धर्मान्तरण की दिशा का मूलाधार बना। डॉ. बाबा अम्बेडकर ने स्पष्ट कहा कि आदमी को न केवल भूख मिटाने केलिए रोटी चाहिए, अपितु मानसिक संतुष्टि के लिए अच्छे विचार भी आवश्यक है। एक दार्शनिक तथा युगदृष्टा होने के नाते डॉ. अम्बेडकर ने आम आदमी की चिन्तन प्रक्रिया को सुदृढ़ किया ताकि एक नया वातावरण बने। उन्होंने १९५६ में येकला नासिक की आत्मसभा में अपने ९० लाख

अनुयायियों के साथ बैद्ध धर्म ग्रहण कर लिया। धर्मातरण संपन्न होने पर स्वयं बाबासाहब ने कहा था-"विषमता और तानाशाही पर आधारित परंपरागत धर्म का त्याग करने से मेरे पुनर्जन्म हुआ है तथा मुझे नर्क से मुक्त होने जैसा लगा रहा है।"[१] बाबा साहब अम्बेडकर बौद्ध धर्म को स्वीकार करने का एक कारण यह है कि भारतीय समाज के इतिहास में बौद्ध धर्म और दर्शन ने जिस दृढ़ता और गम्भीरता से जाति व्यवस्था का विरोध किया था वैसा किसी अन्य धर्म में दिखाई नहीं देता। डॉ. अम्बेडकर ने अपने मन में जिस धर्म की अवधारणा को संजोया और परिलक्षित किया वह भगवान बुद्ध के धर्म में निहित है। उसकी समाज व्यवस्था हिन्दु, वर्ण, जाति और छुआछूत से भिन्न, समतावादी है।

२.४.७ महात्मा गाँधी

महात्मा गाँधी ने अस्पृश्यता निर्मूलन कार्य को महत्वपूर्ण मानकर सन १९३२ में 'हरिजन सेवक संघ' की स्थापना की। सवर्ण लोगों के हृदय परिवर्तन के लिए वे प्रयासरत थे। उन्होंने अस्पृश्यों को भगवान का रूप मानकर 'हरिजन' नाम दे दिया। गाँधिजी ने अस्पृश्यता को हिन्दू धर्म पर लगी कालिख कहा था। जिसे मिटाना हर हिन्दू का कर्तव्य समझते थे। गाँधिजी ने हरिजन सेवक संघ तथा हरिजन साप्ताहिक को चलाया। उनके अनुसार समाज में स्त्री और पुरुष के अधिकार समान है। वे बाल-विवाह के विरोधी और विधवा पुनर्विवाह का समर्थक थे। डॉ. बलवत साधु जाधव उनके अछूतोद्वार कार्य के संबंध में लिखते हैं-"महात्मा गाँधी की अस्पृश्यता उद्धार की नीति में वे तेवर नहीं दिखाई देते जो डॉ. अम्बेडकर के विचारों में कृतियों में दिखाई देते हैं। वस्तुतः गाँधिजी वर्णव्यवस्था के समर्थक थे। उन्होंने सनातन हिन्दुओं पर कड़े प्रहार कभी

---

१ जयप्रकाश कर्दम,(सं) दलित साहित्य वार्षिकी- २००९-१०, पृ.१८

नहीं किये ना ही प्रचलित कुरीतियों की तीव्र आलोचना की।"[१] वे सामजस्य की भूमिका अपनाए हुए थे।

महात्मा गाँधिजी दलितों का उद्धार भारतीय जाति व्यवस्था और वर्ण-व्यवस्था को कायम रखते हुए ही करना चाहते थे। वे जाति व्यवस्था को कायम रखते हुए छुआछूत को भी दूर करना चाहते थे। अतः बाबा अंबेडकर आदि दलित नेताओं ने महात्मा गाँधी के दलितोद्धार के कार्यक्रम का विरोध किया। गाँधिजी के दलित जागरण से दलित चेतना को एक सकारात्मक दिशा मिली। उनका विचार था कि पहले राजनैतिक आज़ादी की ज़रूरत है बाद में दलितों को सामाजिक आज़ादी दे दी जाएगी, जब कि डॉ. अम्बेडकर का कहना था कि यदि सामाजिक आज़ादी दे दी जाती है तो राजनैतिक आज़ादी अपने आप मिल जाएगी। गाँधीजी वर्ण को जन्मना मान कर अपने इस तर्क को अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं - "मेरा वर्ण-भेद का मानना सृष्टि के नियमों का समर्थन करता है। हम अपने माता-पिता के कुछ गुण-दोष जन्म से ही विरासत में प्राप्त करते हैं। मनुष्य योनि में मनुष्य ही पैदा होते हैं, इसे जन्मानुसार वर्ण का ही सूचक समझिए। हम जन्मतः प्राप्त गुण-दोषों में थोड़ा-बहुत परिवर्तन कर सकते हैं, इस दृष्टि से कर्म को भी स्थान है। एक ही जन्म में पूर्वजन्म में अर्जित संस्कारों को सर्वथा मिटा देना शक्य नहीं है। इस अनुभव को देखते हुए तो जो जन्म से ब्राह्मण है उसे ब्राह्मण मानने में ही सब प्रकार से लाभ है। विपरीत कर्म करने से ब्राह्मण इसी जन्म में शूद्र बन जाए ओर संसार उसे फिर भी ब्राह्मण मानता जाए तो इससे संसार की कोई हानि नहीं।"[२] गाँधिजी ने अस्पृश्यता को जाति संघर्ष की चीज़ न मानकर केवल ज्ञान से समाप्त होने वाली चीज़ माना है। अस्पृश्यता को उन्होंने अपराध नहीं माना बल्कि अंधविश्वास माना हैं।

---

१ डॉ. संजय मुनेश्वर, *हिन्दी का दलित आत्मकथा साहित्य*, पृ.६७

२ डॉ. भीमराव अंबेडकर, *अछूत कौन और कैसे*- पृ.२०७

२.४.८ कारल मार्क्स

मार्क्सवाद 'द्वद्वात्मक विकासवाद' और 'ऐतिहासिक भौतिकवाद' पर आधारित है। मार्क्स के अनुसार आज तक का इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास है और ये वर्ग उत्पादन संबंधों के कारण निर्मित होते हैं। कार्ल मार्क्स ने अतिरिक्त मूल्यों का सिद्धांत रखकर, पूँजीवाद में मज़दूरों का शोषण कैसे होता है, यह सिद्ध किया। शोषण मुक्त वर्गहीन समाज का निर्माण करना मार्क्सवाद का लक्ष्य है। कार्ल मार्क्स ने वर्ग संघर्ष द्वारा श्रमिक वर्ग की आर्थिक शोषण से मुक्ति का आह्वान किया। लेकिन डॉ. बाबा अम्बेडकर ने माना कि दलितों को प्रथम सामाजिक दासता से मुक्त करने से ही आर्थिक शोषण की प्रक्रिया खत्म हो जाएगी। भारतीय समाज व्यवस्था में अमूलचूल परिवर्तन के लिए वर्ण संघर्ष ही अनिवार्य है। दलित साहित्य और मार्क्सवादी साहित्य दोनों अनेक बातों में साम्य दिखाई देता है। आर्थिक विषमता नष्ट करने केलिए मार्क्सवादी लेखक शोषण आधारित पूँजीवाद को नष्ट करना चाहता है। सामाजिक विषमता नष्ट करने के लिए दलित लेखक वर्णव्यवस्था को मिटाना चाहता है। मार्क्सवादी लेखक मनुष्य के शोषण मुक्त को और दलित लेखक मनुष्य के तुच्छता मुक्त को प्रमुखता देते हैं। मनुष्य को मनुष्य के रूप में जीना चाहिए। इन दोनों साहित्य मानव केन्द्रित है। दोनों साहित्य जीवनवादी और यथार्थवादी है।

मार्क्सवाद मानव मुक्ति, नारी मुक्ति, सामाजिक प्रगति, सामूहिक चेतना, मानव लोक कल्याण की भावना आदि केलिए संघर्ष करते हैं। मार्क्स श्रमिकों, शोषितों, मज़दूरों के मसीहा है तो बाबा साहब दलितों, उपेक्षितों, अछूतों, सर्वहारा के प्रेरणा स्रोत है। दलित साहित्य की मूल चिन्ता मनुवाद का विरोध करते हुए असमानता और अस्पृश्यता का अन्त करना है। मार्क्स भारतीय वर्ण-व्यवस्था को भी वर्ग-व्यवस्था के अन्तर ही देखा है। उनके चिन्तन में और व्यवहार में भी आर्थिक वर्ग तो बदल जाते हैं, अर्थात धनी

व्यक्ति गरीब बन सकता है और गरीब व्यक्ति धनी। किन्तु भारतीय वर्ण और जाति-व्यवस्था अपरिवर्तनीय हैं। मार्क्सवाद ने भारतीय समाज की इस सच्चाई को नहीं समझा था। फिर भी कई कारण से दलित साहित्य और मार्क्सवादी साहित्य में समानता है।

२.४.९ श्री नारायण गुरु स्वामी तथा अन्य

आधुनिक युग के जिन महापुरुषों ने भारत की दलित-पीड़ित जनता को ऊपर उठाया उनमें श्री नारायण गुरु का नाम अग्रणीय है। उन्हें केरल के नवजागरण के अग्रदूत कहा जाता है। वे समाजसुधारक ही नहीं, बल्कि दर्शन, साहित्य, धर्मप्रचार आदि विभिन्न क्षेत्रों में भी उनकी देन है। नारायण गुरु ने 'इढ़वा' जातियों के उद्धार केलिए आंदोलन चलाया। केरल में सबसे बुरी स्थिति इढ़वा, थिया, चौवन, थडन आदि शूद्र और अछूत जातियों के थे। उन्होंने १९२१ में अपने जन्मदिन से ही शराबबन्दी केलिए आंदोलन चलाया और अपने जन्म -दिन को 'मद्य-निषेद दिवस' के नाम से घोषित किया। श्री नारायण गुरु मानवता के उपासक थे। उनका 'एक जाति, एक धर्म और एक ही ईश्वर' का सिद्धान्त केरलियों को बहुत प्रभावित किया। उन्होंने १९२४ में केरल के 'अलवये' नामक स्थान में 'सर्वधर्म सम्मेलन' करवाया जिनमें सभी धर्मों के विद्वानों ने भाग लिया। वैक्म स्थित शिव मन्दिर दलित और अछूतों के लिए बन्द था। उन्होंने इसके खिलाफ 'वैकम सत्याग्रह' चलाया। गुरु जी ने दलित-उत्थान, किसान-मजदूरों की आर्थिक दशा सुधारने के कार्यक्रमों, नारी शिक्षा, और प्रौढ़ शिक्षा पर ज़ोर दिया। उन्होंने अपना संस्था 'एस. एन. डी. पी. योगम' के ज़रिए अनेक स्कूल और पुस्तकालयों की स्थापना की। गुरु जी ने मिश्रभोजन और मिश्रविवाह का संकल्प लिया। इस तरह गुरु जी ने समाज में एकता, मानवता, समानता का संदेश फैलाकर मानव जाति को एक सूत्र में बाँधने का प्रयास किया।

भारत में 'आत्मसम्मान आन्दोलन' के जनक ई.वी रामस्वामी पेरियार नायकर को दक्षिण-पूर्व एशिया का सुकरात और दक्षिण भारत का भाग्यविधाता कहा गया है। पेरियार का आत्मसम्मान आन्दोलन १९२५ से शुरू होता है, जो अगले ४०-४५ वर्षों तक लगातार चलता रहा। उन्होंने 'वैकम सत्याग्रह' में शामिल होकर लम्बे संघर्ष के बाद केरल के 'वैकम मन्दिर' का मार्ग अछूतों के लिए खोल दिया। इसलिए पेरियार को 'वैकम वीर' भी कहा जाता है। १९४४ में पेरियार और उनके साथियों द्वारा 'द्रविड़ कड़गम पार्टी' की स्थापना की, जो बाद में 'द्रविड़ कड़ग्म' और फिर 'द्रविड़ मुनेत्र कड़गम' हो गई। इस पार्टी का उद्देश्य ब्रिटीश सरकार से पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करना और स्वतन्त्र द्रविड़ राज्य की स्थापना था। पेरियार की दृष्टि विश्वव्यापी थी। इनकी प्रतिबद्धता देश की दलित-पिछड़ी जनता और स्त्रियों के प्रति थी। उनकी समस्या के लिए वे जीवन भर लड़ते रहे। उनका झुकाव बौद्ध दर्शन की ओर था। अपने इरोड नगर में अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध सम्मेलन करवाया। बाबा साहब ने तो बौद्ध धर्म धारण ही कर लिया था। किन्तु पेरियार से जब धर्मान्तरण के लिए पूछा गया, तो उन्होंने साफ इनकार करते हुए कहा था कि हिन्दू धर्म में रहते हुए ही वे उसकी विसंगतियों को दूर करना चाहते हैं।

दलित कविता के विचार पक्ष को अपने-अपने ढ़ग से उपर्युक्त विद्वानों एवं आचार्यों ने स्पष्ट कर दिया, उल्लेखनीय है कि यहाँ कविता समाज के कुरीतियों तथा अत्याचारों को दूर करने के लिए एक सामाजिक एवं साहित्यिक आन्दोलन का रूप धारण कर रहा था। आधुनिक दलित आंदोलन को इसके एक परिणाम के रूप में देख सकते हैं।

२.४.१० दलित आन्दोलन

दलित आन्दोलन बुनियादी रूप में एक व्यापक सामाजिक और सांस्कृतिक आन्दोलन की अभिव्यक्ति है। अन्य प्रान्तों की तरह हिन्दी जगत में भी ये आंदोलन अपना जगह बना लिया है। दलित आंदोलन; भारतीय समाज को दलितों की दृष्टि से देखने, समझने और व्याख्या करने के साथ-साथ दलितों की पीड़ा, बेचैनी, पराधीनता के यथार्थ को प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति दे रहे हैं। दलित कौन है? समाज में अन्य जनों के साथ इसका संबंध क्या है? उसकी अस्मिता क्या है? अस्पृश्यता को कौन दूर करें? आदि बहुत से प्रश्नों को लेकर ये आंदोलन समाज में अपनी ऊर्जा का समीहरण कर रहे थे। यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि भारत में अकेला एक आंदोलन नहीं हुआ बल्कि अनेक प्रांतों में तरह तरह के आंदोलन हुई थी। इसके संबंध में घनश्याम शाह का मत उल्लेखनीय है।[१]

देश के इन्हीं दलित आंदोलनों को एक जुड होकर आगे बढ़ने केलिए वैचारिक आधार प्रदान करने का कार्य प्रमुख रूप से डॉ. बाबा साहब अंबेडकर ने ही किया था। उन्होंने कई आंदोलनों की शुरुआत की जैसे नारी मुक्ति आन्दोलन, मंदिर प्रवेश आन्दोलन, चोदार सरोवर से पानी पीने का आन्दोलन, बेकार पडी भूमि पर कब्जा कर उत्पादन बढ़ाने का आंदोलन, बेगार प्रथा को समाप्त करने का आंदोलन, महिला प्रसूति सुविधा आंदोलन, मलाबार की वन्य जाति सुधार आंदोलन आदि । एक ओर तो इन आंदोलनों ने शूद्र और दलित समाज को आत्म सम्मान और गौरव दिया। साथ में

---

१ Ganashyam Shah, *Dalit identity and politics,* (ed.)"There has not been a single, unified Dalit movement in the country, now or in the past. Different movements have highlighted. Different issues related to dalits, around different ideologies. However, all of them, overtly or covertly assert a dalit identity, though its meaning is not identical and precies for everone. Identity is concerned with the selfesteem and self-image of a community real or imaginary-dealing with the existence and role: 'Who are we?' 'What position do we have in society vi-a vis other communities?' 'Who are related to others'? Not with standing differences in the nature of dalit movements and the meaning of identity, there has been a common quest- the quest for equality, self-dignity and eradication of untouchability", p. 195.

अतीत के इतिहास को खोजने और समझने केलिए मजबूर कर दिया। बाबा साहब के सबसे बड़ा योगदान वैचारिक और भौतिक क्षेत्र में है। सामाजिक परिवर्तन के लिए समानता के दर्शन को वैचारिक आधार सबसे पहले उन्होंने ही प्रस्तुत किया।

भारतीय समाजिक व्यवस्था में सुधार लाने के लिए पिछली शताब्दि के उत्तरार्थ में देश के अनेक भागों में अनेक नेताओं ने 'समाज सुधार' आन्दोलन किये थे। उन्नीसवीं सदी में हिन्दू समाज सुधारकों ने हिन्दू धर्म में समाज सुधार लाने का सफल प्रयास किया। १८२९ में राजाराम मोहन राय ने 'ब्रह्म समाज' की स्थापना की। इसका उद्देश्य हिन्दू धर्म को स्वच्छ बनाना और एकेश्वरवाद की शिक्षा देना था। १८७५ में उत्तर भारत में स्वामी दयानन्द ने 'आर्य समाज' की स्थापना की। आर्य समाज के जनता में आत्म सम्मान तथा स्वावलम्बन की भावना जगाई जिससे राष्ट्रवाद को बढावा मिला। इसका एक उद्देश्य हिन्दुओं को धर्म परिवर्तन से रोकना भी था। धर्म परिवर्तन कर चुके हिन्दुओं को वापस लाने के लिए आर्य समाज ने 'शुद्धि आंदोलन' चलाया। भारत में अनेक समाज-सुधारक ने धर्म सुधार और समाज सुधार आंदोलन चलाया। सभी ने समाजिक सुधार चाहता था, सामाजिक परिवर्तन या क्रांति नहीं। जब महात्मा फुले और बाबा अंबेडकर ने ही समाज सुधार के स्थान पर सामाजिक परिवर्तन या क्रांति के लिए प्रयास किया और हिन्दू धर्म में व्याप्त वर्णव्यवस्था को जड़ से मिटाने का भरसक प्रयास किया।

इसी पृष्ठभूमि में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को दलित दृष्टि से देखने की आवश्यकता महसूस होती है। क्योंकि इस अवसर पर जितने भी आंदोलन समाज के निचले वर्ग और दलितों के नेतृत्व में हुआ इसका सही दृष्टि से मूल्यांकन नहीं हुआ है या मुख्यधारा इतिहास और साहित्य से ये वंचित रहे। ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो इन्हीं आंदोलनों को लेकर अलग से समाजशास्त्रीय अध्ययन करने की ज़रूरत हैं। भारतीय संदर्भ में इस तरह के आंदोलनों का क्रमबद्ध विवेचन प्रस्तुत किया गया है। जैसे- बंगाल के नरभस और बरबस क्षेत्र के जन जातियों का 'चुआर विद्रोह' (१७६८- १८३२), बिहार

में तिलका मांझी के नेतृत्व में 'दामिन विद्रोह' (१७६८), गोली मांझी के नेतृत्व में 'पंचेट विद्रोह' (१७८९-९०), 'दीनापुर का विद्रोह' (१७८३), राँची में 'तमाड विद्रोह' (१७८९), छोटा नागपुर में 'कोल विद्रोह' (१८१८), गुजरात में 'भीलों का विद्रोह' (१८१८), छोटा नागपुर क्षेत्र में 'होस जन जातियों का विद्रोह' (१८२०), छत्तीसगढ़ में संत गुरुघासी दास की प्रेरणा से हुई 'सातनामी आन्दोलन' (१८२० - ३०), केरल में १८५९ में वस्त्र पहने की अनुमति के लिए हुई 'चान्नार आन्दोलन' (१८२८), तिरुत सिंह और बार माल्लिक के नेतृत्व में हुई 'असम और मेघालय के खासी जन जातियों का विद्रोह' (१८२९- ३२), सिंहराय और विन्दराय के नेतृत्व में 'झारखण्ड के मुण्डा और उरावों का विद्रोह' (१८३२), गुजरात का 'नायक विद्रोह' (१८४२), महाराष्ट्र का 'कोली विद्रोह' (१८४६) खोण्डमल क्षेत्र में 'उड़ीसा के खोण्ड जन जातियों का विद्रोह' (१८४६ - ४८- ५५), महात्मा फुले के नेतृत्व में 'सत्य शोधक समाज' (१८४८ में पहला स्त्री स्कूल, १८६० में पहला विधवा विवाह), बड़ौदा के महाराज सयाजीराव गायकवाड- अछूतों के लिए स्कूल खोला 'मुसलमान अध्यापक' (१८५३), सिद्ध कमन्हु - नीलाम्बर- पिताम्बर, गोची माची बिरसा मुण्ड आदि के नेतृत्व में 'झारखण्ड के संथालों का विद्रोह' (१८५५), केरल में श्रीनारायण गुरु के नेतृत्व में 'ईष़वा शिवलिंग प्रतिष्ठा' (१८५८), छत्रपति शाहु महाराणा के नेतृत्व में शिक्षा अनिवार्य बनाया (१८७०), नागालैंड में नागाओं का विद्रोह (१८८२), रत्नगिरी का गोपालबाबा बलंग के नेतृत्व में 'अनार्य दोष परिहार मण्डली' (१८८६) आदि द्रविड़ महारज सभा का 'द्रविड़ लैंड आन्दोलन' (१८९०), आम रास्ते पर चलने का आन्दोलन १८९३ (पहली पाठशाला अय्यनकाली केरल १९०५), केरल में अय्यनकाली के नेतृत्व में 'साधु परिपालन संघ' (१९०७), श्यामसुन्दर का 'भीमसेना का आरंभ' (१९०८ - १९७५), राजस्थान के बाँसवाड़ा और डूँगापुर में 'भील विद्रोह' (१९१३), आध्रा प्रदेश में 'आदि आंध्रा आंदोलन' (१९१७), आगरा में पंण्डित सुंदरलाल सागर के नेतृत्व में 'जाटव महासभा' (१९१७), स्वामी अछूतानंद हरिहर के नेतृत्व में

'आदि हिन्दू आन्दोलन' (१९२२), गोरखपुर का 'चौरा-चौरी आन्दोलन' (१९२२), पंजाब में बाबा मगूंराम मुगोवालिया के नेतृत्व में 'आदि धर्म आन्दोलन' (१९२६), तमिलनाडु में पेरियार रामस्वामी नायकर के नेतृत्व में 'ओम सम्मान आन्दोलन' (१९२५), डॉ. बाबा साहब अंबेडकर के नेतृत्व में 'महाड़ आन्दोलन' (चावदान तालाब, १९२७), 'कर्नाटक संघ आन्दोलन' (१९३०), 'चिरनार आन्दोलन' (१९३०), डॉ. बाबा साहब अंबेडकर द्वारा 'बौद्ध धर्म स्वीकार करना' (१९५६)[१]

'नाम शूद्र आन्दोलन' बंगाल में हुआ। 'चांद गुरु' इस आंदोलन का प्रमुख प्रवर्तक था। समाज के गलत फहमियों को दूर करना इसका लक्ष्य था। बंगाल में शूद्र के लिए 'चंडाल' कहा जाता था। ब्रिटिश सरकार को सन् १८९१ इन लोगों ने एक निवेदन दिया; इसका विषय था, 'चंडाल' शब्द के विरुद्ध 'नाम शूद्र' शब्द प्रयुक्त करवाना। सन् १९१२ ई में. 'चाँद गुरु' ने 'नमः शूद्र' पत्रिका का प्रकाशन किया। इस प्रकार शूद्रों में व्याप्त अंधविश्वासों को मिटाने में यह आंदोलन सफल निकले। दलितों के बीच के जातीय भेदभाव दूर करने केलिए मध्य प्रदेश छत्तीसगढ़ इलाके में 'सतनामी आंदोलन' गुरु घासीदास द्वारा चलाया गया। उन्होंने 'सतनामी संप्रदाय' की स्थापना की। 'सतनामी बने, संगठन बनाओ और संघर्ष करों' उनके आंदोलन के तीन सूत्र थे। रामस्वामी नायकर के नेतृत्व में तमिलनाडु में आत्मसम्मान आंदोलन की शुरुआत हुई। इसका मुख्य उद्देश्य आम जनता के हित में सामाजिक सुधार लाना था। वे अछूत, पिछड़ी जातियों तथा स्त्रियों की शिक्षा के समर्थक थे। वे हिन्दू वर्णवादी व्यवस्था के विरोध करने के साथ-साथ हिन्दुत्व को खतम कर देने की बात की। उन्हीं के शब्दों में- ''हिन्दुत्व एक मायने में अन्य धर्मों से भिन्न है। इस धर्म में सभी ब्राह्मण शिक्षित हैं और सिर्फ वे ही ज्ञान और बौद्धिकता की बागडोर संभाले हुए हैं। दूसरे लोगों में ९० प्रतिशत से भी अधिक अशिक्षित और मूर्ख हैं। एक ही धर्म को मानने वाले समाज में यदि सिर्फ एक समुदाय

---

[१] डॉ. हरिनारायण ठाकूर, *दलित साहित्य का समाज शास्त्र,* पृ. ३१५-३२०.

शिक्षित और प्रभावी बन सकने का अधिकार रखता है तो क्या हमें यह नहीं समझना चाहिए कि यह धर्म अन्य समुदायों केलिए अनिष्टकर है? इसलिए मैं कहता हूँ कि हिन्दुत्व एक घटिया धर्म है। इसका नाश हो जाना चाहिए''।[१] सन् १९२५ ई. में गैर ब्राह्मणों और दलित वर्ग के नेताओं को साल में लेकर-कांग्रस के कांचीपुरम अधिवेशन में एक मसविदा तैयार किया। इसका विषय था ब्राह्मणों को उनकी आबादी के अनुपात से आरक्षण कर दिया जाय। पेरियार के इस क्रांतिकारी चिंतन ने ब्राह्मणों को उलझा दिया। बाद में उन्होंने कांग्रस पार्टी को ब्राह्मणवाद के वर्चस्व से प्रभावित मानकर उसे छोड दिया। १९२७ ई में पेरियार की अध्यक्षता में 'तमिलनाडु कांग्रस' का अधिवेशन हुआ। इसमें उन्होंने दलित अधिकारों की वकालत की। सन् १९९४ ईं में द्रविड़ कष़गम की स्थापना किया। उनका समाज सुधार आंदोलन धीरे से दलितों में चेतना, जागृत तथा आत्मसम्मान की ओर ले चले।

सन् १९२६ ईं में पंजाब में आदि-धर्म आन्दोलन का प्रारंभ हुआ। समान अधिकार प्राप्ति ही इसका लक्ष्य था। इस आन्दोलन का दावा था कि वे भारत के आदि या मूल निवासी हैं। पंजाब के संगठन चलाने वाले नेताओं ने यह माँग किया कि आगामी जनगणना (१९३१) में उन्हें हिन्दू की बजाय 'आदि धर्मी' लिखा जाना चाहिए। सरकार ने उनकी बात मानकर नए शीर्षक में आदि-धर्मी लिखने का आदेश दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि पंजाब के अछूतों की जनसंख्या में कमी आ गयी। इसके संबंध में डॉ. अंबेडकर ने कहा ''इसकी वजह आदि-धर्म आन्दोलन है। सन १९३१ ईं की जनगणना में भाग लेने वाले आन्दोलन के कार्यकर्ताओं ने अपने लोगों और स्वयं को आदि-धर्मी लिखवाया था, हिन्दु नहीं, जैसा कि पहले होता आया था''[२]। इस प्रकार पंजाब का आदि-

---

१ शंभुनाथ (सं), ई. वी.रामस्वामि नायकर, *सामाजिक क्रांति का दस्तावेज, भाग,* २, , पृ. १२२२.

२ डॉ. श्यामसिंह राशि (प्र. सं), डॉ. अंबेडकर, बाबा साहेब डा. अंबेडकर संपूर्ण, वाङ्मय, खण्ड २, पृ. ४९१.

धर्म आन्दोलन बहुआयामी आन्दोलन था। ये आंदोलन केवल दलित समाज की मानसिकता बदलने केलिए ही नहीं शुरू किया गया था बल्कि पूरे भारतीय समाज की मानसिकता बदलना इसका लक्ष्य था। दलित आंदोलन भारतीय संस्कृति की पुनर्व्याख्या द्वारा उसका परिष्कार करना चाहता है। इसलिए यह एक सांस्कृतिक आंदोलन भी है। भारत की संस्कृति प्राचीन साहित्य एवं धर्म ग्रन्थों की व्याख्या पर आधारित है। भारत की प्राचीन संस्कृति को लेकर आर्य और अनार्य के संबन्ध में विद्वानों में मत भेद है। संस्कृति की व्याख्या भाग्य और भगवान की दृष्टि से नहीं बल्कि तर्क और ज्ञान की दृष्टि से करना चाहता है। संस्कृति की पुनर्व्याख्या के माध्यम से वर्ग-वर्ण, श्रेष्ठ-अश्रेष्ठ आदि चिंताओं से दूर होकर मानव-मानव को सम्मान समानता एवं भाईचारे की मूल्य को समझाना चाहते हैं। इन आंदोलनों ने दलितों पर अस्मिता एवं चेतना को जगाया। इसी प्रकार लगभग पूरे भारत में दलित आंदोलन का प्रचार और प्रसार हो रहा था। अतः हम आसानी से कह सकते हैं कि इसी संदर्भ से लेकर दलित आंदोलनों का भारतीय स्वरूप सामने आ रहा था। जिसके नेतृत्व में महात्मा फुले, डॉ. बाबा अंबेडकर के विचारों के आधार प्रमुख थी।

२.४.१०.१ दलित आंदोलन तथा डॉ. बाबा साहब अंबेडकर

समाज में परिवर्तन लाने केलिए बाबा अंबेडकर-पूर्व दलित आंदोलनों ने प्रयत्न किया उसका ज़्यादा असर समाज में नहीं हुआ क्योंकि इन आन्दोलनों ने प्रतिरोध, सुधार तथा अप्पीलों में ज्यादा ज़ोर दिया था। फिर भी इन आंदोलनों ने आगे के आंदोलनों को प्रेरणा दी और पृष्ठभूमि भी प्रस्तुत की। महात्मा फुले से प्रेरणा पाकर डॉ. बाबा साहब अंबेडकर सन् १९१९ ई से लेकर दलित आन्दोलन के प्रमुख प्रवर्तक बने। इनके आन्दोलन की विशेषता व्यक्त करते हुए कंवल भारती का कहना है- ''इन आन्दोलन की विशेषता यह है कि इसने हिन्दू व्यवस्था के विरुद्ध सीधी कार्यवाही (डायरक्ट एकशन) के रूप में खुला विद्रोह किया। खुले शब्दों में आप समझ सकते हैं कि सामूहिक रूप से हिदू

व्यवस्था का उल्लंघन किया था। यह परिवर्तन सन् १९२०ई आसपास आया''।[१] डॉ. बाबा अंबेडकर ने अपना निबंध 'अछूतों का विद्रोह' में इस परिवर्तन के कारणों को यूँ व्यक्त किया है- ''पहला कारण यह था कि दलितों को यह अनुभव होने लगा था कि अपीलों और प्रतिरोध हिन्दू व्यवस्था को बदल नहीं सकते, क्योंकि हिन्दुओं के दिलों पर इसका कोई असर नहीं होता था। दूसरा कारण यह था कि सरकार ने सभी सार्वजनिक सुविधाएँ और संस्थाएँ दलितों केलिए खोलने की घोषणा कर दी। परन्तु हिन्दुओं के विरोध के कारण दलित उसका उपयोग नहीं कर पा रहे थे। अंततः सीधी कार्यवाही करने के सिवा अपने अधिकार को पाने के लिए अन्य कोई रास्ता दलितों के पास बचा नहीं था''[२]। इसलिए बाबा अंबेडकर आदोलन सीधी तथा खुले विद्रोह से युक्त है।

बाबा साहब अम्बेडकर ने सन् १९१९ में 'साउथ ब्यूरो कमीशन' के सामने अस्पृश्यों के राजनीतिक अधिकार की कैफियत प्रस्तुत कर अपने सार्वजनिक जीवन की शुरूआत की। १९२० में उन्होंने अस्पृश्यों के प्रश्न को मंच प्रदान करने हेतु 'मूकनायक' पत्र शुरु किया। इसके ज़रिए उन्होंने व्यक्तिगत स्वतंत्रता मताधिकार, राजनैतिक अधिकार आदि केलिए दलितों को अवगत कराया। १९२४ में उन्होंने 'अखिल बहिष्कृत हितकारिणी सभा' की स्थापना की। इसका उद्देश्य दलित युवकों को शिक्षित कराना, आन्दोलन के लिए संगठित करना तथा अपनी परिस्थितियों के बारे में जागृति लाना था। दलितों द्वारा पीने का पानी के अधिकार के लिए किया गया 'महाड तालाब मार्च' (चौदार तालाब) दलित आन्दोलन के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है। ''बंबई विधान परिषद में ए. के बोले ने एक प्रस्ताव के ज़रिए अस्पृश्यों हेतु सार्वजनिक जल-स्रोतों, कुओं, सरकारी कार्यालयों, स्कूलों-कचहरियों, सरकार द्वारा निर्मित धर्मशालाओं दवाखानों के

---

१ कंवल भारती, *दलित विमर्श की भूमिका*, पृ. ५८.

२ डॉ. बी.आर. अंबेडकर, *अछूतों का विद्रोह,* पृ. १५

उपयोग की माँग की। ११ सितंबर १९२३ को सरकारी आदेशानुसार इस प्रस्ताव को कार्यान्वित किया गया।''[१] तीन वर्ष के बाद सन् १९२६ ईं में पुनः प्रस्ताव रखने के फलस्वरूप महाड़ तालाब सभी के लिए खोल दिया। १९२७ को डॉ. अंबेडकर के नेतृत्व में दलित जातियों का सम्मेलन हुआ। इसके प्रतिनिधियों ने अपने मौलिक अधिकार हेतु चौदार तालाब से पानी पिया। सवर्णों द्वारा संघर्ष तथा कष्ट होने पर भी वे अपने काम में सफल निकले।

दलित मुक्ति आन्दोलन की शुरूआत को हम डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर द्वारा २४ दिसंबर १९२७ को मनुस्मृति के दहन और दलित मुक्ति संग्राम से जोड़कर देख सकते हैं। मनुस्मृति दहन के द्वारा डॉ. अम्बेडकर ने मनु द्वारा निर्मित हिन्दू धर्म के विषम समाज रचना की मूल विचारधारा को नष्ट करने तथा उसके प्रति विरोध प्रकट करने का प्रयत्न था। बाबा साहब ने 'साइमन कमीशन' को निवेदन प्रस्तुत कर अस्पृश्यों के राजनीतिक अधिकारों की माँग की थी। इसका उद्देश्य भेदभाव के खिलाफ संरक्षण, विधान मंडल तथा नौकरियों में दलितों का प्रतिनिधित्व, कानून, विधायिका और कार्यपालिका में पर्याप्त अधिकार प्राप्त करना था। फलस्वरूप कमीशन ने १९३० में ब्रिटीश सरकार की ओर से लंदन में गोलमेज़ परिषद का आयोजन किया। यह इसलिए है कि ब्रिटीश सरकार भारत केलिए भारतीयों से परामर्श करके नया संविधान बनाना चाहता था। सन् १९३० में उन्होंने नासिक के 'कालाराम मन्दिर' में सत्याग्रह किया। यह सत्याग्रह केवल मन्दिर प्रवेश के लिए नहीं था अपितु इसके पीछे हम हिन्दू है, हमें भी अन्य हिन्दुओं की तरह हिन्दू के मन्दिर में जाने का अधिकार है यह भूमिका थी। सन् १९३२ में जातीय निर्णय घोषित हुआ और सिक्ख, मुस्लिम, ईसाई, ऍग्लो इण्डियन तथा रियासतदारों के साथ अस्पृश्यों के लिए स्वतंत्र निर्वाचन क्षेत्र की माँग की। बाबा

---

१ कन्हैया लाल चंचरीक, *भारत में दलित आंदोलन,* खण्ड- पृ. १०८

अम्बेडकर ने घोषित किया- "मैं हिन्दू के रूप में पैदा हुआ जो मेरी मजबूरी थी, लेकिन मैं हिन्दू के रूप में मरूँगा नहीं।"[१]

बिट्रीश प्रधानमंत्री ने १७ अगस्त १९३२ को 'कम्यूनल अवार्ड' की घोषणा की। इसमें दलित जातियों को आम निर्वाचन में मत देने तथा पृथक निर्वाचन का अधिकार भी मिला। इसके विरोध में गाँधिजी ने आमरण अनशन शुरु किया। डॉ. अंबेडकर और कांग्रस नेताओं के बीच चर्चा के नाते बाबा साहब गाँधिजी के साथ समझौता करने के लिए मजबूर हुए। अछूतों केलिए पृथक निर्वाचन से मंडल की अपनी माँग से हटने के लिए तैयार हुआ। इन दो नेताओं के बीच के समझौता दलित इतिहास में 'पूना पैकट' के नाम से जाना जाता है। पूना पैकट के अनुसार कम्यूनल अवार्ड के बदले अछूतों केलिए कुछ सीटें रखी जहाँ अछूत के अलावा हिन्दू-मुसलमान या अन्य धर्म लोग चुनाव न लड सकें। बाबा साहब अंबेडकर ने दलित, पिछडे, भूमिहीन, श्रमिक आदि की ओर सरकार का ध्यान लाने केलिए १९३६ में 'इंडिपेडेंट लेबर पार्टी' की स्थापना किया। शिक्षा के महत्व को समझकर डॉ. अम्बेडकर ने सन् १९४५ में बंबई में 'पीपुल्स एज्युकेशन सोसायटी' की स्थापना की, जिसके अंतर्गत बंबई में सिद्धार्थ कालेज और औरंगावाद में मिलिंद कालेज की स्थापना हुई। ये दोनों ही शिक्षा संस्थान डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा को आगे बढ़ाने वाले दो महत्वपूर्ण केन्द्र बन गये। अप्रैल १९४२ में शेडयूलड कास्ट फेडरेशन तथा १९५६ में रिपब्लिकन पार्टी को जन्म दिया।

सन् १९४६ ई में बाबा साहब अंबेडकर संविधान प्रारूप समिति के अध्यक्ष बने। उन्होंने अछूतों तथा पिछडे लोगों केलिए संविधान सभा में आरक्षण करवाया। अस्पृश्यता के उन्मूलन को लेकर डॉ. अंबेडकर का कथन हैं- "संविधान समिति ने भावि संविधान की जो मसौदा तैयार किया है, उसमें अस्पृश्यों के अधिकार का प्रावधान है। नए संविधान

---

१ शरणकुमार लिंबाले (सं), *दलित साहित्य वेदना और विद्रोह*, पृ.

की ९ वीं धारा द्वारा अस्पृश्यता को समूल नष्ट कर दिया गया है। किसी प्रकार का जातिभेद, ऊँच- नीच की भावना रद्ध कर दी गयी है''[१]। डॉ. अंबेडकर वह पहला महान व्यक्ति है जिन्होंने अस्पृश्यता निवारण को संविधान के अन्तर्गत लागू किया। डॉ. अंबेडकर सन् १९४७ ईं में भारत के पहले कानून मंत्री बने। उन्होंने लोकसभा में सन् १९४८ को हिन्दू कोड बिल पेश किया। पंडित नेहरु की सलाह से बाबा अंबेडकर ने इस बिल का संशोधन किया। ''The bill embodied several basic principles of women's rights: It sought to abolish different marriage systems prevalent among Hindu and to establish monogamy as the only legal system. It aimed at conferment of right to property and adoption on women. It provided for restitution of conjugal rights and judicial separatism. It attempted to unify the Hindu code in tune with progressive and modern thought."[२] लेकिन इस बिल का विरोध होने के कारण नाकामयाब रहा।

बाबा साहब अंबेडकर के संपूर्ण कार्यक्रम समाज के दलित और पिछडे वर्ग के लोगों के उद्दार तथा अस्पृश्यता निवारण को लक्ष्य करते थे। लेकिन इन आंदोलन का मूल स्वर समानता का रहा न कि भेद भाव का। हिन्दू धर्म की वर्णव्यवस्था को समाप्त करने केलिए बाबा अंबेडकर के सामने कोई रास्ता नहीं था। इसलिए उन्होंने बौद्ध धर्म (१९५६) को स्वीकार करने का निश्चय किया। बौद्ध धर्म स्वीकार करने के बाद भी दलितों में या भारतीय समाज में समानता कहाँ तक लागू हुआ है यह भी आज विचारणीय एवं अध्ययन का विषय है।

---

१ डॉ. अंबेडकर, *सामाजिक क्रांति के दस्तावेज*, शंभुनाथ, (सं) पृ. ८८९.

२ Thomas Mathew, Ambedkar: Reformer revolution, p. 72.

२.४.१०.२ दलित साहित्यिक आंदोलन

दलित आंदोलन को सही ढंग से आगे बढ़ाने केलिए एक ऐतिहासिक और साहित्यिक पृष्ठभूमि की ज़रूरत है। क्योंकि मुख्यधारा साहित्य में उनकी अपनी कोई गरिमा और अस्तित्व की बात नहीं कहीं गई है; मूल कारण वर्णाश्रम व्यवस्था ही है। अतः दलित साहित्यिक आंदोलन का महत्व अपने आप में स्वयं सिद्ध हो जाता है। दलित साहित्यिक आंदोलन वस्तुतः दलित आंदोलन का ही एक अंग है। हम जानते हैं कि मानव समाज में जातिगत भेदभाव अपने आप नहीं पैदा हुआ। अतः समाजिक वर्णव्यवस्था तथा दण्डविधान की नियमावली के अंतर्गत इसका उदय हुआ।

महात्मा फुले अस्पृश्यता निवारण और बहुजन समाज के हित के लिए जीवन भर कार्य करनेवाले महत् व्यक्ति है। उन्होंने अपना पूरा जीवन मूल निवासी बहुजन समाज के मान-सम्मान और स्वाभिमान की भावना जगाने के लिए समर्पित कर दिया। १९ वीं सदी के मध्य में एक महान सामाजिक आंदोलन का सूत्रपात उन्होंने किया। किसानों, मज़दूरों, महिलाओं और सारे पिछड़े लोगों को, उनके अधिकार दिलाने केलिए वे जीवन भर संघर्ष करते रहे। महाराष्ट्र के पूणे शहर हमेशा ही ब्राह्मणवाद का गढ रहा था। पूणे में महात्मा फुले ने अपने क्रांतिकारी सामाजिक कार्य का आरंभ किया। उनकी पत्नी सावित्री बाई फुले भी वर्ण व्यवस्था एवं जाति-व्यवस्था के कट्टर विरोधी थी। हिंदुओं में असमानता की भावना पैदा करनेवाली इस व्यवस्था पर उन्होंने निरंतर आवाज़ उठायी। मानव जाति की स्वतंत्रता ही उनके चिंतन का विषय था। ज्योतिराव फुले के विचारों और उनके क्रांतिकारी कार्यों से भारत समाज को निरंतर उर्जा मिली। उन्होंने 'सत्यशोधक आंदोलन' का नेतृत्व किया। इस आंदोलन का मुख्य कार्य-ईश्वर और भक्त के बीच के दलालों को नष्ट करना, शिक्षा में समानता का भाव उत्पन्न करना था। इसी के साथ उन्होंने साहित्यिक रचनाओं के ज़रिए आंदोलनों को शक्ति प्रदान कर रहे थे।

उन्होंने 'तृतीय रत्न' (नाटक १८५५), 'पवाड़ा छत्रपति शिवाजी भोसले चान्चा' (१८६९), 'ब्राह्मणाचे कसब' (१८६९), 'गुलामगिरी' (१८७३), 'शंतक याचा आसूड' (१८८३), 'सत्सार अंका' (१८८५), 'इशारा' (१८८५), 'सार्वजनिक सत्यधर्म' (१८९१) तथा 'अखण्ड' आदि काव्य रचना कर स्त्री शूद्र तथा अतिशूद्रों की व्यथा-वेदना को वाणी दिया। उनके साप्ताहिक पत्र का नाम 'दीनबन्धु' था। मनुस्मृति एक विषवल्ली है -ऐसी उनकी ठोस राय थी। मनुस्मृति ने स्त्री, शूद्र, अतिशूद्रों की मनुष्यता को नकारा इसलिए उसे जला देना चाहिए ऐसा स्पष्ट मत उन्होंने प्रकट किया था। महात्मा फुले ने दलितों को ललकारते हुए कहा कि डरो मत, मेरी तरह निडर बनो। शिक्षा से ही तुम्हारा उद्धार व सुधार होगा। उन्होंने शूद्रों की दुर्गति का खास कारण बताते हुए कहा-

"अशिक्षा से बुद्धि गयी/ बुद्धि के बगैर नीति गयी/
नीति के बगैर प्रगति गयी।/ और प्रगति के बगैर/शूद्रों की दुर्गति हुई।"[१]

महात्मा फुले ने स्वयं लिखा-

"शूद्र जर्जर/चलता लकड़ी के सहारे पर।
तीन पांव के पशु बन गये।/ पीड़ा यह रोकर बतलाया।
द्विजों ने शूद्रों को सताया।"[२]

महात्मा फुले का प्रसिद्ध ग्रंथ है 'गुलामगिरी'। डॉ. मैनेजर पाण्डेय ने 'गुलामगिरि' ग्रंथ को दलितों का घोषणा पत्र कहा है। उन्हीं के शब्दों में "उन्होंने १८७३ ई. में 'गुलामनारी' नामक पुस्तक लिखी थी। जिसे दलित आंदोलन का घोषणा पत्र और बुनियादी दस्तावेज कहा जाता है।"[३] "महात्मा फुले एक संघर्षशील नेता और चातुर्वर्ण्या

---

१ राजमल सिंह राज, *अम्बेडकर बनाम सामाजिक परिवर्तन*, पृ.३४

२ माताप्रसाद, *दलित साहित्य दशा और दिशा,* पृ.१२४

३ दलित चेतना विशेषांक, पृ.१८३

तथा जातिभेद पर कठोर प्रहार करके मानवीय समानता की घोषणा करने वाले प्रथम लोक नेता थे।"[१] इस तरह महात्मा फुले दलित समाज को अपने अधिकारों के प्रति अवगत कराते हुए दलित आन्दोलनों को वैचारिक पृष्ठभूमि तैयार करने में सफल हुए।

हिन्दू समाज में जाति व्यवस्था और अस्पृश्यता का इतिहास जितना पुराना है, उसके विरोध की परंपरा भी उतनी ही पुरानी है। बाबा अंबेडकर एवं उनके राजनैतिक सहयोगियों ने देश के इतिहास में अस्पृश्यता एवं अस्पृश्यों की समस्याओं की पहली बार एक राजनैतिक तथ्य के रूप में प्रस्तुत किया और उसके समाधान के लिए राजनैतिक प्रक्रिया को अपनाया। उन्होंने दलितों के लिए राजनीति में 'एक आदमी एक वोट' के सिद्धान्त को लागू करवाया। १९४७ में डॉ. भीमराव अम्बेडकर नेहरू मंत्रिमंडल में कानून मंत्री बने तथा १९४८ में ड्राफ्टिंग कमेटी के अध्यक्ष के रूप में संविधान असेम्बली में मसौदा प्रस्तुत किया। २६ जनवरी १९५० को देश में लोकतांत्रिक शासन प्रणाली बनाकर मताधिकार का प्रावधान बनाया। मण्डल कमीशन के तहत पिछड़े वर्ग के लोगों को जो भी आरक्षण और सुविधाएं प्राप्त हैं यह सब संविधान की धारा ३४० की ही देन है। हिन्दू कोड बिल पास न होने के कारण १९५१ में डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने मंत्रिमण्डल से त्याग-पत्र दे दिया था। धर्म के क्षेत्र में डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने 'द बुद्धा एण्ड हिज़ धम्म' पुस्तक लिखी जो बौद्ध बाइबिल के नाम से जानी जाती है। दिनांक १४ अक्टूबर, वर्ष १९५६ को डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने नागपुर में बौद्ध धर्म की दीक्षा ली। डॉ. बाबा अम्बेडकर अर्थशास्त्र में विशेष रुचि रखते थे। शुरू में उन्होंने 'Problems of the Rupee' यह शोध परख आलेख लिखा। डॉ. अम्बेडकर ने दलितों से आह्वान किया था कि वे अपनी आय का पाँचवा हिस्सा समाज पर खर्च करें। इससे उनका आशय था कि दलितों में जो लोग आराम से अपनी रोजी-रोटी चला रहे हैं, वे समाज के अपने

---

१ लक्ष्मण शास्त्री जोशी, *महात्मा फुले समग्रय प्रस्तावना,* प्रथम संस्करण, पृ.१

दूसरे भाइयों के उत्थान की ओर ध्यान दें, तथा उसके लिये दान दें। दलित साहित्य, दलितों में उनके दलित होने का अहसास दिला रहा है। डॉ.बाबा अम्बेडकर कहते हैं कि-"मनुष्य मात्र को एक तर्कशील जमात बनना होगा। मनुष्य को मनुष्य बनना होगा, जिसमें प्रेम, सहिष्णुता सच्चाई, करुणा, विवेक, और मेहनत करने का मादा हो, जिसमें आत्म-सम्मान हो और दूसरों को सम्मान देने की आदत हो, जो छद्म से दूर एक खुली किताब हो।"[१]

उन्होंने सभी ग्रन्थ अंग्रेज़ी में लिखे, उनके सभी ग्रंथ मौलिक हैं। 'Caste in India', 'Annihilation of caste', 'Who are the Shudras?', 'Untouchables', "who were they and why they became untouchables', 'Philosophy of Hinduism', 'India and pre requistics of communism', 'Revolution and counter revolution on Ancient India', 'Riddites in Hinduism', 'Ranalle Gandhi and Jnnha', 'Thoughts of Pakistan', 'Buddhism and Communism' इन सभी ग्रन्थों में वे समाज व्यवस्था को समाजशास्त्रीय नज़रिये से अनुसंधान परक गहराई से अध्ययन प्रस्तुत किया हैं। डॉ.बाबा अम्बेडकर एक महान ज्ञानी पुरुष थे। उन्होंने मनुष्य को मनुष्य के रूप में जोश देनेवाले विचार और उससे निष्पन्न होनेवाले मूल्यों को आत्मसाथ किया था। उनके संपूर्ण व्यक्तित्व पर महात्मा बुद्ध, कबीर व ज्योतिबा फुले जैसे आदर्श पुरुषों का गहरा असर रहा है। डॉ. अंबेडकर को 'दलितों का महीसा' कहते हैं।

सन् १९५९ ईं तक आते-आते भारतीय रिपब्लिक पार्टी का विघटन होने से दलित जनता भी विघटित हुई। इन दलितों को एकीकृत करके संघर्ष एवं जागरूक बनाने केलिए दलित पैंथर आंदोलन महाराष्ट्र में शुरु हुआ। अमरिका 'ब्लैक पैंथर आन्दोलन' से प्रभावित होकर वे अपने आंदोलन केलिए 'दलित पैंथंर आंदोलन' नाम दिया। अनुसूचित जातियों पर प्रत्यक्ष रूप में सन् १९७० ईं के आस पास अत्याचार होने के कारण दलित

---

१ डॉ. हरिनारायण ठाकुर, *दलित साहित्य का समाजशास्त्र*- पृ.९८

पैंथर एक 'मानिफेस्टो' के रूप में संगठित हुआ। राजा ढ़ाले इसका प्रेसिडेंट, नाम देव ढ़साल इसके प्रतिरोधमंत्री और जे. वी. पवार जेनरल सेक्रटरी बने। उनके मानिफेस्टो में अठारह माँगें सूचित थीं। उनका लक्ष्य सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्तर पर अपना अधिकार स्थापित करना था। इसकी शाखाएँ शहर तथा गाँव में खुली। पैंथर ने एक हथियार के रूप में बाबा साहब अंबेडकर की विचारधारा का उपयोग किया। स्वतंत्रता की २५ वीं वर्षगांठ मनाने के विरोध में १५ अगस्त १९७२ को पैंथरों ने मोर्चा निकालते हुए काला स्वतंत्रता दिवस मनाया। 'काला स्वतंत्रता दिन' नामक लेख के लिए राजा ढाले पर केस थोपा गया। इसके विरोध में पूणे में कांडनसिल हाल में तीन दिन की केबिनट बैठक के समय १० सिदंबर १९७२ को पैंथरों ने मोर्चा निकाला। दलित पैंथरों का विद्रोह सामंतवादी राजनीतिक अधिकारों तथा पूँजीवादी से है। बाद में दलित पैंथर 'ढ़ाले गुट' तथा 'ढसाल गुट' नाम से दो गुटों में बांट गए। ढसाल गुट दलितों की आर्थिक न्याय के पक्ष पर थे। ढाले गुट दलितों पर हो रहे अत्याचारों के खिलाफ दो ज्ञापन मुख्य मंत्री को प्रस्तुत किये गये। पहला ज्ञापन सन् १९७५ दिसंबर की मांग है-"अवैधानिक तरीके से छीनी गई ज़मीन का पुनर्वितरण द्वारा अधिकार असली मालिकों को दी जाए। जातिवादी अत्याचारों में लिप्त अपराधियों को 'मीसा' के अन्तर्गत गिरफतार किया जाए। दलित छात्रों की छात्रावृत्तियों और दलितों केलिए रोज़गार बढाए जाए। डॉ. बाबा अंबेडकर के लेखों को दूसरी भाषाओं में अनुवादित किया जाए। दलितों की आवास-ऋण सुविधाएँ बढ़ाया जाए और को- ओपरेटीव- सोसाइटियों में दलितों को ,शेयर धारकों के रूप में पंजीकरण है।"[१] दूसरा ज्ञापन सन् १९७६ ई जनवरी को प्रस्तुत किया गया जिनकी प्रमुख मांगें हैं- "दलित पैंथरों के विरुद्ध सभी केसों को वापस लिया जाए। बारहवीं कक्षा के दलित छात्रों केलिए छात्रवृत्तियाँ बढ़ाया जाए। डॉ. अंबेडकर जयंती पर

---

१ अजय कुमार, *दलित पैंथर आंदोलन*, पृ. ६७.

बंदिशें हटाया जाए और दलितों केलिए अलग से एक रोजगार कार्यक्रम हो''[१]। इन ज्ञापनों के फलस्वरूप सरकार की ओर से दलित पैंथर सफल निकले। सन् १९७७ईं तक कई गुटों में पैंथर संगठन बांटा गया तथा अपना-अपना अलग-अलग आंदोलन चलाये गये। इसमें प्रमुख थे, मास मूवमेंट, महाराष्ट्र दलित पैंथर आदि। मास मूवमेंट का मांग थी कि ''नौकरी लगाने की आयु के अन्तर्गत ही बेरोज़गार युवकों को कुछ सत्ता दिया जाए''[२] दलित पैंथर ने दलितों को जाति व्यवस्था तथा दासता से लड़ने के लिए सशक्त बनाया। 'दलित' शब्द को अछूत तथा हरिजन शब्द के बदले प्रचार करने में पैंथर ने बडी भूमिका निभाई।

मराठी दलित साहित्यकारों में पद्मश्री दयापवार के प्रथम कविता संग्रह 'कोडवाडा' १९७४ में, 'बलुंत' (अछूत) १९७८ में 'विटाक' कथा संग्रह, तथा 'चावडी' (विविध लेखों का संग्रह, १९८३) आदि, अर्जुन डांगले के 'छावणी हल्ते आहे' (छावनी उठने लगी है १९७७) कविता संग्रह, 'उदवस्त क्षितिज' (१९७६) और 'बांधावरची माणसे' (हाशिए के लोग, १९७९) दोनों कहानी संग्रह, शरणकुमार लिंबाले के 'अक्करमासी' आदि, वामन निंबालकर के 'गाँव कुसाबा हेटिल', 'महायुद्ध' (काव्य संग्रह) 'अस्मिता दर्शयी नऊ वर्षे' आदि, केशव मेश्राम के 'पोखरण' (१९७९) 'एकीकत व जटायू' (उपन्यास, १९८०) 'जुगलबंदी', 'अकस्मता और चरित्र' (कविता संग्रह) आदि रचनाएँ प्रकाशित हुई है। इनके अलावा देश, विदेश की भाषाओं में दलित साहित्य लेखन एवं अनुवाद आज प्रचुर मात्रा में हो रहा है।

---

१ अजय कुमार, *दलित पैंथर आंदोलन*, पृ. ६७-६८.

२ वही, पृ. १११.

२.४.११ दलित चेतना और अस्मिता (नई दृष्टि)

चेतना का मतलब दृष्टि से होता है। दलित को किन बातों से सरोकार रखना है किससे नहीं, इस विचार का ज्ञान दलित चेतना कहलाती है। चेतना से तात्पर्य है अपने आप को पहचानना कि हम क्या हैं? ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित चेतना को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि-"दलित चेतना का सीधा सरोकार-मैं कौन हूँ? से बहुत गहरे तक जुड़ा है। चेतना का संबंध दृष्टि से होता है जो दलितों की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक भूमिका की छवि के तिलिस्म को तोड़ती है। अधिकारों से वंचित, अधिकारों से नकार दिया जाना यानी दलित होना और उसकी चेतना यानी दलित चेतना।"[१] दलित चेतना डॉ. बाबा अम्बेडकर के जीवन दर्शन, विचार तथा महात्मा बुद्ध के भौतिकवादी दार्शनिकता से ऊर्जा ग्रहण करती है। यह स्वानुभूति और परिवर्तनकामी चेतना है। दलित चेतना के बारे में डॉ. सुमनाक्षर कहते हैं- "दलितों के अन्दर, जो उनके मौलिक अधिकार हैं, उनके प्रति चेतना जाग्रत करें, वह है दलित चेतना।"[२] सदियों से अपने मौलिक मानवीय अधिकारों से वंचित दलितों में चेतना जागृत करने केलिए जहाँ भगवान बुद्ध ने कहा कि-अपने दीपक स्वयं बनो। वही बाबा साहेब ने तीन मूल मंत्र दिए-शिक्षित बनो, संगठित हो, संघर्ष करो।

दलित चेतना से मतलब वर्गहीन, वर्णहीन और जातिविहीन मनुष्य है। मानव धर्म की प्रतिष्ठा करना उसका लक्ष्य है। दलित साहित्य में दलित चेतना के दो प्रमुख बिंदु है। प्रथम दलित साहित्य मनुष्यता की माँग करता है। द्वितीय दलित जीवन की भयावह यातनाओं का खुला और निर्मम चित्रण करता है। अनुभवों और निष्कर्षों को प्रकट करना तथा वेदना जगाने का काम अस्मिता ही करती है। चेतना के स्तर पर जब कोई

---

१ ओमप्रकाश वाल्मीकि, *मुख्यधारा और दलित साहित्य*, पृ.५०.

२ धीरजभाई वणकर, *दलित विमर्श,* पृ.१०

तर्क जागृत हो जाता है वही अस्मिता का पहला चरण है। इसी शक्ति के दम पर दलित लेखन यथार्थ (वस्तुतिथि) को व्यक्त करता है। अस्मिता समाज में समानता लाना चाहती है। यही कारण है कि अस्मिता आत्मकेन्द्रिता से दूर होकर सब केलिए धरातल के निर्माण का कार्य करती है। अस्मिता जब जागृत होती है तो तीन कदम उठाती है- अस्वीकार, विरोध और विद्रोह। ये तीनों कदम उठाने के लिए जिस समझ की आवश्यकता होती है वह भीतर ही भीतर पनप रहे, आक्रोश से प्रेरित होकर क्रियाशील होती है। दलित-अस्मिता का उद्देश्य अथवा लक्ष्य मानवता की भावना को समता के आधार पर स्थापित और सुदृढ़ करना है। दलित चेतना और अस्मिता की नई दृष्टि जातिविहीन दलित व्यक्ति से है । जो अपनी सारी हीनता भाव को त्याग कर स्वयं अपना विकास करने और अधिकार पाने के प्रति जागरूक है। वह समाज में भेदभाव खत्म कर समता एवं मानवता कायम करने केलिए प्रतिबद्ध है।

आज के हिन्दी दलित साहित्यकारों में; मलखान सिंह का 'सुनो ब्राह्मण' (कविता संग्रह), ओमप्रकाश वाल्मीकि का 'सदियों का संताप' (१९८९), 'बस्स! बहुत हो चुका' (१९९७), 'अब और नहीं' (कविता संग्रह), जूठन (१९९७, आत्मकथा), 'सलाम' (२००० कहानी संग्रह), सूरजपाल चौहान का 'तिरस्कृत' (आत्मकथा), 'हैरी कब आएगा' (कहानी संग्रह) 'प्रयास', 'क्यों विश्वास करू' (कविता संग्रह), मोहनदास नैमिशराय का 'अपने-अपने पिंजरे' (आत्मकथा) 'सफदर एक बयान', 'आग और आंदोलन' (कविता संग्रह), 'अदालतनामा', 'हलो कामरेड' (नाटक), जयप्रकाश कर्दम का 'छप्पर' (उपन्यास), 'गुंगा नहीं था मैं' (कविता संग्रह), ईश कुमार गंगानिया का 'हार नहीं मानूगा' (कविता संग्रह), जयप्रकाश लीलवान का 'समय के आदमखोर धुन' (कविता संग्रह), सुशीला टाकभौरे का 'स्वति बूंद और खारे मोती', 'अपने हिस्से का सूरज', रजनी तिलक का 'पदचाप', 'हवा सी बेचैन युवतियाँ' (कविता संग्रह) आदि रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। इनके अलावा और भी दलित साहित्यकार हैं जिन्होंने दलित साहित्य को

आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं। इन रचनाओं में दलित चेतना और अस्मिता की नई दृष्टि देख सकते हैं। जो मनुष्य और मनुष्य के बीच की असमानता को खतम करके मानवता की बात करती है।

२.१२ निष्कर्ष

आज दलित कविता का प्रसार देश के कोने-कोने में देखने को मिलता है। भारत की सभी प्रमुख भाषाओं में दलित साहित्य पढ़ने को मिलता है। अनेक दलित कवि और गैर दलित कवि इस पर कलम चला रहे हैं। दलितों के प्रेरणा-स्रोत में प्रमुख है 'समता दर्शन'। भारतरत्न डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर ने तीन मूल मंत्र दिए- शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो। दलित सदियों की दासता और शोषण, दमन, उत्पीड़न के कारण, हीन भावना से ग्रसित थे। इसी हीन भावना को तोड़कर एक मनुष्य के रूप में उसकी पहचान और स्वाभिमान को स्थापित करना दलित कविता का प्रमुख उद्देश्य मान सकते हैं। वर्ण व्यवस्था से पीड़ित समुदाय की वेदना ही हिन्दी दलित कविता का मूल स्वर है, जिसका तेवर विद्रोही और प्रतिशोधात्मक है। हिन्दी दलित कविता समय के दौर में दलित आंदोलन को स्थायित्व प्रदान करने वाली कविता है। नारी का भी उत्पीड़न एक लम्बे समय से हो रहा है, परन्तु दलित समाज की नारी और गैर दलित समाज की नारी की स्थिति और दशा में काफी अन्तर है। जहाँ तक शोषण और उत्पीड़न का प्रश्न है वह दोनों क्षेत्रों से आयी नारी झेल रही है पर इस उत्पीड़न की प्रकृति और सुविधाओं के धरातल पर दोनों समान नहीं मानी जा सकती। फिर भी नारी किसी न किसी रूप में दलित ही है।

दलित कविता की भावभूमि और विचारभूमि के विस्तृत विवेचन से ही हम इस निष्कर्ष तक पहूँच सकते हैं कि यह कविता मुख्यधारा कविता से भिन्न है। अतः स्पष्ट रूप से दलित शब्द, अर्थ, परिभाषा, भाषा, भारतीय सामाजिक व्यवस्था में दलितों की

स्थिति, अस्मिता, चेतना आदि की अभिव्यक्ति मुख्यधारा कविता से बिलकुल अलग है। दलित कविता को सही ढ़ंग से परखने केलिए उसकी भावभूमि और विचारभूमि पर विवेचन किया है। दलित कविता की भावभूमि को सही ढंग से विवेचन करने से लोकगीत विशेषकर परंपरागत दलित गीत का महत्व सर्वाधिक है; क्योंकि दलित कविता का मूल प्रतिरोधात्मक सांस्कृतिक स्वर इन्हीं गीतों में मिलता है। अतः ऐसा माना जा सकता है कि इन्हीं दलित गीतों से दलित कविता का आरंभ हुआ है। ये गीत मानव के नैसर्गिक ताल-लय और मौखिक वाणी से संपन्न हैं। जो हमेशा प्रकृति के साथ रहता है, खिलाफ नहीं। दलित कविता के ऐतिहासिक परिवेश के क्रमबद्ध विवेचन से यह सिद्ध होता है कि संघकालीन कृतियों, नाथ-सिद्ध, संत साहित्य से लेकर आधुनिक काल में हीरा डोम, स्वामी अछूतानन्द हरिहर, बिहारीलाल हरित आदि कवियों का योगदान दलित कविता के जड़ को मज़बूत बनाया है। इस दृष्टि से आधुनिक काल में ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, जयप्रकाश कर्दम, कंवल भारती, सूरजपाल चौहान, पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, हरिकिशन सन्तोषी, माता प्रसाद, डॉ. एन सिंह, असंगघोष, मुकेश मानस आदि का नाम महत्वपूर्ण है। दलित कविता के क्षेत्र में महिलाओं का योगदान भी रहा है जैसे सुशीला टाकभौरे, रजनी तिलक, कुसुम मेघवाल, पूनम तुषामड़, कावेरी कान्ता भीमराव आदि । उल्लेखनीय है कि इसकी पृष्ठभूमि में गैर दलित कवियों का योगदान भी महत्वपूर्ण हैं।

दलित कविता की विचारभूमि में महात्मा गौतम बुद्ध, महात्मा फुले, बाबा साहब अंबेडकर, मार्क्स, पेरियार रामस्वामी नायकर, श्री नारायण गुरु आदि महात्माओं का योगदान दलित समाज को नया ज़ोर एवं ताकत देने में सफल निकले। दलित अस्मिता एवं चेतना के प्रचार- प्रसार में विशेष रूप से दलित पैंथर का नाम उल्लेखनीय है। दलित समाज को नया मोड देने में दलित आन्दोलन और साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है। इन आंदोलनों तथा साहित्य ने दलितों को अपनी अस्मिता एवं चेतना का अहसास दिलाया।

साथ में अपना हक लेने में क्रांति तथा विद्रोह करने केलिए प्रेरित किया। दलित कविता एक ऐसे सूर्योदय के लिए प्रतिबद्ध है, जो केवल दलित के लिए ही नहीं बल्कि पूरे मानव के लिए समता तथा भाईचारे का संदेश दे रही है।

तीसरा अध्याय

दलित कविता का वस्तुपक्ष : समाजशास्त्रीय अध्ययन

दलित कविता का वस्तुपक्ष : समाजशास्त्रीय अध्ययन

दलित कविता के वस्तुपक्ष को समझने से पहले हमें मुख्यधारा कविता का वस्तुपक्ष तथा दलित कविता के वस्तुपक्ष में क्या अंतर है? यह समझना समीचीन होगा।

कवि और काव्य संस्कृति-निष्ठ जागृत समाज की अत्यन्त परिचित संज्ञाएँ हैं। ऋग्वेद में 'कवि' शब्द का प्रयोग कई अर्थों में हैं। उन अर्थों से मानव के आदि समाज में कवि की महिमा पर प्रकाश पडता है। ''कवि अग्नि है, कवि सूर्य है, कवि सोम है, कवि में धावी है, अनुचान (वेदज्ञ, वेद मंत्रों का गायक) है और क्रान्तदर्शी है। उपनिषद युग में फिर वही कवि ब्रह्म बन गया। आज कल हम जिस कर्म में 'कवि' शब्द का प्रयोग करते हैं, उसकी बहुत कुछ संगति अनुचान अर्थ से भी है। अनुचान से ही मिलते-जुलते अर्थ स्तोता -स्तुतिगायक में भी 'कवि' शब्द प्रयुक्त हुआ''।[१]

भारतीय काव्यशास्त्र का आरंभ सामान्यतः भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' से माना जाता है। जैसे अनेक भारतीय आचार्यों ने काव्य को अपने -अपने ढंग से परिभाषित किया है। आचार्य भामह का कहना है -'शब्दाथो सहितौ काव्यम्'' [२] अर्थात शब्द और अर्थ से युक्त रचना को काव्य कहते हैं। आचार्य वामन के अनुसार-

> ''काव्यं ग्राह्यं अलंकारात्
> सौन्दर्यमलंकार सदोषगुणालंकार हानादाभाभ्याम्''[३]

---

१ डॉ. जयशंकर त्रिपाठी, *आचार्य दण्डी एवं संस्कृति काव्यशास्त्र का इतिहास दर्शन, पृ.४६.*

२ डॉ. विजयपाल सिंह, *भारतीय काव्यशास्त्र*, पृ. २५. (से उद्धृत)

३ वही

अर्थात- काव्य अलंकार से ग्राह्य होता है। सौंदर्य ही अलंकार है। वह 'काव्य' गुणालंकार के ग्रहण तथा दोष के परित्याग से युक्त होता है।

आचार्य विश्वनाथ का कहना है- 'वाक्य रसात्मकं काव्यम्''[१] अर्थात रसात्मक वाक्य ही काव्य कहलाता है। पंडितराज जगन्नाथ के अनुसार- 'रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्'[२] अर्थात रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाले शब्द को काव्य कहते हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं से हमें पता चलता है कि ओज, प्रसाद, माधुर्य इन तीनों गुणों का समन्वय रूप ही काव्य कहलायेंगे। पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों ने भी कविता के लिए अनेक परिभाषाएँ दी हैं।

पी. सिडनी ने कहा है कि ' कविता तो अनुकरण की कला है। या इसे रूपक की भाषा में कहा जाय तो वह बोलता हुआ चित्र है। उसका उद्देश्य है शिक्षा और आनन्द देना''।[३] विलियम वर्डसवर्थ के अनुसार 'कविता सम्पूर्ण ज्ञान की सांस और सूक्ष्मातर चेतना है। कविता शक्तिशाली भावोद्वेगों की कृत्रिम अभिव्यजना है।''[४] एम. टी ने कविता को साहित्य रचना का वह प्रकार मानते हैं। जिसका तात्कालिक उद्देश्य आनन्द देना है, सत्य नहीं''।[५] ड्राइडन का मत है कि ''कविता आनन्दानुभूति के सहारे ही शिक्षा दे सकती है। वह कवि की सर्वाधिक सफलता इस बात में मानता है कि वह

---

१ डॉ. विजयपाल सिंह, *भारतीय काव्यशास्त्र,* पृ. २८. (से उद्धृत)

२ वही, पृ. २८.

३ वही, पृ. २१.

४ डॉ. कन्हैयालाल अवस्थी, डॉ. अमित अवस्थी, *काव्यशास्त्रः भारतीय एवं पाश्चात्य*, Poetry is the spontaneous over flow of powrferful feelings, p. 5.

५ वहीं, Poetry is the emtion for the purpose of immediate pleasure through the medium of beauty, p. 5.

आत्मा पर प्रभाव डाले और श्रोता के मनोभावों को उद्वेलित करने में समर्थ हो।''[१] पी. वी. शैली के अनुसार ''व्यापक अर्थ में कविता को हम कल्पना की अभिव्यक्ति कह सकते हैं, क्योंकि वह सदा आनन्द से संयुक्त रहती है।''[२]

आचार्च रामचन्द्र शुक्ल का कहना है 'जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान-दशा कहलाती है उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आयी है उसे कविता कहते हैं''।[३] महादेवी वर्मा के अनुसार 'कविता कवि विशेष की भावनाओं का चित्रण है और वह चित्रण इतना ठीक है कि उससे कैसे ही, भावनाएँ किसी दूसरे के हृदय में आविर्भूत हो जाती हैं''।[४]

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह व्यक्त हो रहा है कि मुख्य धारा कविता के आस्वादन, रस, आनंद कल्पना को ही बल देते हैं। इनकी कविताएँ सहानुभूति से युक्त हैं। धीरोदात्त व्यक्ति ही इसका नायक है। मुख्यधारा कविता समाज के वर्चस्ववादी पक्ष को ही लिया है। ये पूरे समाज का प्रतिनिधित्व नहीं करता है, समाज की वास्तविकता को अनदेखा किया है। उनके काव्य सिद्धान्त दलित कविता के विश्लेषण में लागू करने में स्वाभाविक रूप से दिक्कत रहेगी। भरतमुनि नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय के एक सौ पच्चीसवाँ श्लोक में स्पष्ट कहा है कि ''जो व्यक्ति यथाविधि और यथाशास्त्र पूजा करेगा, वह शुभ फल प्राप्त करेगा और अंत में स्वर्ग लोक जाऐगा''[५]। यह मनुवादी विचार है तथा स्वर्ग

---

१ डॉ. कन्हैयालाल अवस्थी, डॉ. अमित अवस्थी, *काव्यशास्त्रः भारतीय एवं पाश्चात्य*, Delight is the chief, if not the only end of poesy, instruction can be but in the second place, for poesy only instrults as a delights, p. 25-26.

२ वही, पृ. २२

३ डॉ. विजयपाल सिंह, *भारतीय काव्यशास्त्र,* पृ. ३०. (से उद्धृत)

४ वही. पृ. ३१.

५ हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, *नाट्यशास्त्र की भारतीय परंपरा और दशरूपकम*, पृ ५६

प्राप्ति की अवधारणा मनुवादी मूल्य है, जिसके बल पर दभंग जातियाँ और वर्चस्ववादी समुदाय सदियों तक उत्पीडन का अमानवीय कार्य कर रहे हैं। उस समय के वर्चस्वादी विचार धारा के काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों में उपर्युक्त प्रकार के विचार ही देखने को मिलता है। जिसमें समाज के शूद्र जाति या असुर कहने वाले अन्यान्य जाति को समाज में कोई स्थान नहीं है। उल्लेखनीय है कि भारतीय संदर्भ में काव्य/नाटक के उद्भव और विकास के संदर्भ में वर्ग विशेष के खिलाफ नस्लीय भेद भाव और हिंसा की वर्चस्ववादी राजनीति रही है। मनुस्मृति में भी ये स्पष्ट रूप से कहा गया है कि शूद्र यदि ब्राह्मणादि उत्तम वर्ण के साथ एक आसन पर बैठने की इच्छा करें तो राजा उसकी कमर पर दाग देकर देश से निकाले अथवा चूतड़ को चिन्ह केलिए दाग दे''।[१]

अतः दलित कविता के समाजशास्त्रीय अध्ययन में वस्तुपक्ष को उस दृष्टि से देखना चाहिए जिस दृष्टि से दलित जैसे अन्यान्य समाज देखते हैं। जिसमें सांस्कृतिक प्रतिरोधी स्वर प्रमुख रहेगा।

३.१ दलित कविता का वस्तुपक्ष

दलित कविता अपने समय और समाज का चित्रण सच्चाई के साथ करती है। समाज के हर एक व्यक्ति, परिवार, व्यवस्था, घटना आदि दलित कविता की वस्तु हो सकता है। दलित कविता के वस्तुपक्ष का विवेचन काव्य के शास्त्रधर्मी दृष्टि से करना उचित नहीं लगता है। आज के संदर्भ में दलित शब्द आधुनिक स्वत्व बोध निर्माण के साथ जुडा हुआ शब्द है। दलित कविता का विषय भारतीय एवं वैश्विक संदर्भ में अलग-अलग होते हैं। दलित कविता के विषय की भावभूमि यद्यपि एक जैसे होने पर भी अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग दिखाई पडते हैं। दलित कविता की वस्तु में गरीबी, पीडा, शोषण तथा अस्पृश्यता आदि है। वह दलित या पीडित जनता का है इसलिए ये

---

१ प्रवीण प्रलयङकर, मनुस्मृति (अनु)- अध्याय १०, श्लोक २८१, पृ- ८५५

सब दलित कविता के वस्तु पक्ष में होना स्वाभाविक ही है। दलितों का अपना एक इतिहास है, संस्कृति है, उनका अपना एक प्रतिरोधी संस्कार है। लेकिन आधुनिक-सामाजिक संदर्भ में अशिक्षित होने पर वह अपने इतिहास एवं संस्कृति को पहचानने में असमर्थ होते हैं। दलित कविता के वस्तु पक्ष में अपनी अस्मिता को पहचानने की प्रक्रिया प्रमुख है। अतः दलित कविता या साहित्य इस तरह के मूक नायकों की वाणी बन जाती है। दलित कविता हृदय के सहज भाव या नैसर्गिकता से उत्पन्न होती है और कम शब्दों में समाज में अधिकतम अभिव्यक्त कराती है। इसकी वस्तु शास्त्रीय वैयाकरण से हटकर एक दलित की अपनी खुद की बात कहते हैं। समाजिक असमानता के कारण वे अपनी बात को (वस्तु) कहने के लिए मजबूर हुई है। यह वस्तु उनके खुद के जीवन के कष्ट, दुःख, दर्द आदि भावनाओं के अनुभवों से फूटती है। ऐसी रचनाओं में जीव-ताल है, नैसर्गिक-लय है, अलंकार है तथा अनुभवजन्य कठोर सत्य है। दलित कविता के वस्तु पक्ष के केन्द्र में अन्य विषयों के साथ ग्रामीण जीवन के उपेक्षित/बहिष्कृत वर्ग के साथ -साथ महानगरीय सभ्यताओं की धूमिल तस्वीरें भी हैं। दलित समाज की वेदनाओं को साहित्यिक अभिव्यक्ति देने में हिन्दी के दलित कवियों का महत्वपूर्ण स्थान है। इसलिए उसका नियम भी उनका अपना होता है जैसे मिख्यैल बक्तिन के 'कार्निवल सिद्धान्त' में कार्निवल का अपना नियम रहता है।

भारत के सभी हिन्दू समुदायों में निम्न स्तर के लोगों को अछूत या अस्पृश्य माना गया है। वे विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग नामों से जाने जाते हैं। इस तरह के अछूत या अस्पृश्यों को 'दलित' नाम से पुकारा जाता है। हिन्दू अछूत अनेक जातियों एवं उपजातियों में बँटे होने के कारण उनमें आपसी समानता एवं भाई-चारे का अभाव है। इन जातियों और उपजातियों में बन्धुत्व, विवाह सम्बन्ध, नातेदारी आदि न होने के कारण सैद्धान्तिक या व्यावहारिक दृष्टि से वे एक बंद सामाजिक व्यवस्था में बाँधी हुई है। ऐसी व्यवस्था में सदियों से अछूतों की सामाजिक सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं आर्थिक स्थिति

दयनीय रही है । स्पष्ट है कि इसका मूल कारण वर्ण व्यवस्था में केन्द्रित भारतीय समाज है। दलित कविता के समाजशास्त्रीय अध्ययन से ही दलित जीवन के ऐतिहासिक संदर्भ, सांस्कृतिक प्रतिरोध के विविध आयाम तथा अन्त्यज की अस्मिता की सही अभिव्यक्ति संभव हो सकती है। भारतीय समाज की असमानता के मूल में वर्ण, जाति, अस्पृश्यता के तत्व ही प्रमुख रहे हैं। स्वाभाविक है कि इन तत्वों के खिलाफ प्रतिरोध प्रस्तुत करना दलित कविता के वस्तु पक्ष के केंद्र में रहेगा।

३.१.१ दलित कविता में वर्ण व्यवस्था : प्रतिरोधी स्वर

हमेशा दबाये गये जो समाज है उसके अन्तर एक चिंगारी रहती है। उनके स्मरण में अपने पूर्वजों की खोये हुए स्वत्व की याद रहती है। उनकी स्मृतियों में अपनी अस्मिता और सत्ता का बोध ही प्रतिरोधी स्वर का मूलाधार है। इस प्रतिरोधी स्वर का एक ऐतिहासिक क्रम है। उसकी ओर आचार्य अच्युतन जी ने संकेत किया है। "वर्चस्ववादी परंपरा के साथ सांस्कृतिक प्रतिरोध देश के लघु पंपराओं के वाहक हमेशा करते आ रहे हैं। ऋगवेद की ऋचाओं में आर्य तथा आर्य पूर्व लोगों के संघर्ष, इन्द्र तथा नागाधिपति शंबर के बीच के संघर्ष से लेकर भक्तिकालीन अंडाल, कबीर, रैदास आदि संतों में तथा संवतंत्रता आन्दोलन के समय के चुहार विद्रोह, चान्नार आन्दोलन, महार आन्दोलन आदि को इन लघु पंरपराओं के सांस्कृतिक प्रतिरोध ही मान सकते हैं।"[१]

आदिवासी तथा दलित जन-समाज इस भूमि के जल- जंगल के स्वामी थे, जिनको कालांतर में अन्त्यज बना दिया है। अतः उनके प्रतिरोधी स्वर के सांस्कृतिक पक्ष का भी महत्व है। स्वाभाविक है कि यहाँ प्रतिरोध अपनी अस्मिता को प्रतिष्ठित करने के साथ-साथ वर्ण व्यवस्था के प्रति विद्रोह और समता के लिए आह्वान भी है। हिन्दू समाज

---

१ Folklore telling and retellings: Sahitya Akadami seminar में प्रस्तुत प्रपत्र, २४-२६, February, 2017

में लोगों की योग्यता का तटस्थ मूल्यांकन नहीं हो पाता। भारतीय समाज में लोगों की योग्यता के मूल्यांकन का मानदण्ड जन्म, वर्ण, जाति और धर्म के आधार पर तैयार होते हैं। जब कि बहुत पहले से ही तिरुकुरल में तिरुवल्लुवर चंडालत्व को नहीं मानते बल्कि इसे स्वभाव जन्य मानते हैं। स्वभाव के अनुसार ही एक आदमी श्रेष्ठ या निकृष्ट हो जाते हैं। लेकिन बाद में ब्राह्मणवादी सोच इस विचार को उलट फेर कर दिया। जिसके विस्तार से अध्ययन दूसरे अध्याय में कर चुके हैं।

अतः कोई शक नहीं है कि वर्ण, जन्म, जात और कर्म के आधार पर समाज को बाँटना या इन तत्वों के आधार पर सामाजिक संरचना की निर्मिति वास्तव में ब्राह्मणवादी सोच या वर्चस्ववादी राजनीति का प्रतिफलन है। क्योंकि पुरुष सूक्त या मनुस्मृति के पहले भारत में ऐसा भी एक समाज था जहाँ वर्ण, जात और कर्म के आधार पर कोई असमानता का वर्णन नहीं मिलता है। बल्कि एक समता-दर्शन केलिए पर्याप्त विवरण मिलता है। उस समय के समाज का विभाजन वैज्ञानिक एवं भौगोलिक दृष्टि से हुआ करता था। दक्षिण के संघकालीन कृतियों में इस प्रकार के समाज की ओर संकेत है- ''कुरवन, इडयन, मरवन, पाणन, पुलयन आदि अनेक वर्ग के लोग दलित रहे थे। राज्याधिकार कुरवर को है, पाणन पंडित है, मरवन वीर योद्धा है, वेल्लान कर्षक आदि वर्गों को अपने कर्मों और भौगिलिक आधार पर जाने पहचाने लगे थे।''[१] इस प्रकार के समाज का चित्रण सिधु-घाटी सभ्यता के इतिहास में भी है। मानवजाति का प्रथम सभ्यता है सिंधुघाटी सभ्यता। यहाँ का राजा शंबर शायद नाग संस्कार का पहला राजा होगा। मोहनजोदारो, हडप्पा की संस्कृति की समाजिक संरचना में भी कोई भेद-भाव देखने को नहीं मिलता। नाग संस्कृति के पूरे इतिहास पढ़ने पर ये बात स्पष्ट हो जाती है। ''ऋग्वेद के प्रख्यात वृत्तासुर युद्ध तथा राजा शंबर के युद्ध इसका प्रमाण हैं।''[२] बात स्पष्ट है कि

---

१ कवियूर मुरली, *पुरनानूर एक अध्ययन*, पृ. २२७-२२८.

२ पु.श्री. सदार, *सिंधु-घाटी सभ्यता का इतिहास*, पृ. ४-५.

आर्यपूर्व समाज में वर्णाश्रम व्यवस्था का प्रचार नहीं था। संघकालीन कृतियों में 'पंचमहाकाव्य' की प्रमुख विशेषता है। चिलपतिकारम, मणिमेघला, जीवकचिन्तामणि, वलैयापति, कुण्डलकेशी, ये पाँचों मिलकर पंचमहाकाव्य नाम से जाना जाता है। ''चिलपतिकारम में पंचग्रामी नामक महाब्राह्मणों तथा तिरुत्तंगाल नामक उनके गाँव का उल्लेख मिलता है। इस गाँव मे दूसरों केलिए प्रवेश मना किया था। सामाजिक संरचना के संदर्भ में पूरे इतिहास में 'मना है' ऐसा एक शब्द हम इस गाँव के आसपास से सुना है। ऐसा माना जाता है कि पंचमहाब्राह्मणों से छुआछूत की शुरुआत हुई होगी। अछुतापन लगभग १८०० वर्ष पुराने से शुरु हुई थी।''[१] आज भी यह अछूतापन पूर्ण रूप से भारतीय भारतीय समाज से हटाया नहीं है।

अतः यह स्थापित हो जाता है कि मनुस्मृति के बहुत पहले भारत में ऐसा एक समाज था जहाँ पर कोई वर्ण जात का भेद भाव नहीं था। दलित समाज को जो मुख्य धारा समाज जात के नाम पर अस्पृश्य मानते है उन्हें उसी पुरानी पीढ़ी के वंशज कह सकते हैं। सामाजिक कारणों से वर्चस्ववादी राजनीति ने उसे दलित बना दिया है। वर्ण-व्यवस्था का विरोध दलित कवियों के साथ-साथ दलित समाज भी करता है। आधुनिक काल में इसकी शुरुआत डॉ. बाबा साहब अंबेडकर तथा महात्मा फुले ने की थी। वह हिन्दू धर्म ग्रन्थों की निंदा तक ही सीमित नहीं रही, उससे कई आगे निकल चुके थे। २४ दिसंबर १९२७ भारत के इतिहास में एक अविस्मरणीय दिन है, क्योंकि उसी दिन बाब साहेब ने सार्वजनिक रूप में मनुस्मृति जला दी। उन्होंने ही भारत केलिए एक अच्छा संविधान भी बनाया। दलित कविता का मूल स्वर ही वर्णव्यवस्था का विरोध है। जिसके कारण आज भी कुछ दलित वर्ग को समाज से हट कर जीना पड़ रहा हैं। इसलिए दलित कविता का वस्तुपक्ष के समाजशास्त्रीय विश्लेषण में स्वाभाविक रूप से वर्ण, जाति तथा अस्पृश्यता का विवेचन संगत लगता है।

---

१ कवियूर मुरली, *पुरनानूरू एक अध्ययन*, पृ. ६३.

३.१.१.१ वर्ण

पहले ही हम ने संकेत किया है कि वैदिक संस्कृति में ही समाज में वर्ण विभाजन की व्यवस्था का सूत्रपात हुआ था। यही वर्णव्यवस्था जातिवाद एवं छुआछूत की जननी है। बताया गया है कि सबसे ऊपर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और सबसे नीचे शूद्र है। शूद्र का धर्म बाकी तीनों वर्णों की सेवा करना है। उल्लेखनीय है कि इस वर्णव्यवस्था के बाहर भी कुछ जातियाँ हैं जिसे आदिम जनता कह सकते हैं। डॉ. बाबा साहब अंबेडकर ने वर्णव्यवस्था को समाज में असमानता एवं अन्याय का मूलाधार मान लिया था, इसलिए उसका विरोध किया। वर्ण के संबन्ध में विस्तार से दूसरा अध्याय - 'दलित कविता : भावभूमि और विचारभूमि' में विश्लेषण किया गया है।

हिन्दू धर्म और वर्ण-व्यवस्था के विषय में कवि नवेंदु महर्षि का मत उल्लेखनीय है - ''हिन्दू धर्म, जो मानवता को पूरे तौर पर खारिज करता है। जिसका उद्देश्य मनुष्यता मात्र को मानवता के पद से डिगाना है। यह धर्म के नाम पर खुल्लम- खुल्ला, धोखा-धड़ी है। जिसकी तमाम कोशिशें हज़ारों- हज़ार सालों से देश के भोले-भाले बहुसंख्यक दलित समाज को शोषित संत्रस्त और दुःखी बनाने की रही है। दुनिया में जितनी भी तरह की अपारदर्शिताएँ, नृशंसताएँ, क्रूरताएं, दुष्टताएँ, नीचताएँ और हरामखोरियां हो सकती हैं, इन सबको एक जगह इकट्ठा करके नाम दिया गया 'वर्णव्यवस्था'। यही कारण है कि सवर्णों को उससे अत्यधिक प्रेम है और दलितों को अत्यधिक घृणा''।[१] नवेन्दु महर्षि की कविता इसका प्रमाण है। उन्होंने 'जंग' और 'हिन्दुत्व का सार' नामक कविताओं में वर्णव्यवस्था के प्रति घोर प्रतिरोध व्यक्त किया है-

---

१ नवेंदु महर्षि, *संसद तो सवर्ण है*, पृ. ७

''रोटी की/ न भात की
जंग यह तो है/जात की'' [१] (जंग)

''मानवता जिस जगह पर/खतम होती है
''हिन्दुत्व वहाँ से/शुरु होता है
हिन्दुत्व और मानवता
पर्यायवाची शब्द नहीं बल्कि/विलोम शब्द है''।[२] (हिन्दुत्व का सार)

प्रस्तुत पंक्तियों से स्पष्ट है कि हिन्दू धर्म में मानवता का स्थान नहीं के बराबर है।

आधुनिक दलित कविता के क्षेत्र में अनेक ऐसे जाने माने कवि हैं, जो अपनी रचनाओं से वर्ण एवं जात के खिलाफ दलित अस्मिता को जगाने का कार्य कर रहे हैं। कवि एन. आर सागर के अनुसार वर्ण व्यवस्था ऐसा औजार है जिससे दलितों का शोषण किया गया है। ब्राह्मणवाद इस शोषण की धुरी रही है-

''तेरा ओछी जात कुजात-कमीने ब्राह्मण बेईमान
तू ढोंगी-कपटी-पाखण्डी,
क्रूर-कुकर्मी-कुटिल शिखण्डी,
शीलहीन, बदचलन बने तू फिर भी श्रेष्ठ महान''।[३]

वर्ण व्यवस्था के आधार पर शोषण करनेवालों को शिकारी मानते हुए श्यौराजसिंह बेचैन कहते हैं-

''आँख में/अपराधियों को/तैरते हैं चित्र
वह शिकारी/आज का अभियुक्त

---

१ नवेंदु महर्षि, *संसद तो सवर्ण है*, पृ. ६६

२ वहीं, पृ. १११.

३ एन. आर. सागर, *आज़ाद है हम,* पृ. ३९.

दण्ड भोगे/ बिन रहा/ वह मुक्त''।[१]

कंवल भारती वर्ण व्यवस्था के पोषकों से तर्कपूर्ण लहजे में कुछ प्रश्न ढागते हैं कि यदि ऐसा होता तो तुम्हारी निष्ठा क्या होती?

''मल-मूत्र साफ सरना
कपड़े धोना, बाल काटना
हमारे खेतों घरों में दास कर्म करना
तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती ''।[२]

'मनुस्मृति' नामक कविता में नामदेव वर्णव्यवस्था के मूल कारण मनुस्मृति को इशारा करते हुए लिखते हैं-

''ब्राह्मणवाद का मतलब स्मृति
सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का मतलब स्मृति
शोषक समाज का मतलब स्मृति''[३]।

गाँव में वर्णव्यवस्था का कुरूप चेहरा अबी भी मौजूद है, ग्रामीण परिवेश में व्याप्त जातीय भेद-भाव दलित वर्ग को संघर्ष करने के लिए प्रेरित करता है। अपने गाँव के बारे में डॉ. सुखवीर सिंह बयान कर रहे हैं-

''तू अभी भी एक पहाड़ की तरह
जड़ है वहीं का वहीं ठहरा हुआ
और मैं पानी की तरह बह रहा हूँ लगातार।

---

१ श्यौराज सिंह बेचैन, *क्रौंच हूँ मैं*, पृ.२१.

२ रमणिका गुप्ता, *अब मूरख नहीं बनेंगे,* पृ. १५.

३ विमल थोरात, सूरज बडत्या, *भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर*- पृ. १०६.

.... पर मैं तेरा अहसानमन्द हूँ/तो सिर्फ इसलिए

कि तेरे से मैं ने सीखा/बगावत का पहला सबक.....''[१]

डॉ. प्रेमशंकर की कविताओं की बहुत बडी विशेषता यह है कि वे अपनी बात को उत्तेजना के साथ कहते हैं। वे 'दलित कविता' के स्थान पर 'अम्बेडकरीय कविता' कहना उचित मानते हैं। 'वे सभ्य है' उनकी चर्चित कविता है। इसमें कवि व्यवस्था के ऊपर प्रहार करते हैं-

''वे सभ्य है आदमी से/ हाथ मिलाने के बाद

हाथ धोते हैं, मांजते हैं/ और फिर

मुस्करा कर कहते हैं/ हम एक है

फिर हाथ दोते हैं। ताकि/ हाथ में आदमी की/'जाति' न छप गई हो''।[२]

'संसद तो सवर्ण है'- नामक कविता संग्रह में नवेन्दु महर्षि ने वर्तमान समय पर धर्म के नाम पर जो कुछ भी हो रहा है उसका खुला चित्रण किया है। जहाँ-जहाँ पर दलितों ने धर्म परिवर्तन किया है, वहीं-वहीं पर हिन्दुवादी ताकतों नें उनका उत्पीडन किया है। क्योंकि वे जानते हैं कि यदी इस देश का अठाईस करोड़ दलित किसी अन्य धर्म में दीक्षित हो जाएगा तो हिन्दू भारत में ही अल्पसंख्यक हो जाएँगे। इस सच्चाई को नवेंदु महर्षि ने 'एक अपाजिह धर्म' नामक कविता में यूँ व्यक्त करते हैं-

''जिनके अलग होने का एहसास/इसे उस दिन होगा

जिस दिन इसे/ एक धर्म बन कर

दुनिया में जीना पडेंगा/और तनिक सहारे भर के लिए

बैसाखी तक नसीब नहीं होगी/उस दिन यह हिन्दुत्व

---

१ डॉ. सुखवीर सिंह, *बयान बाहर, दलित निर्वाचित कविताएँ,* पृ. १७१.

२ डॉ. प्रेमशंकर, *रोटी की भूख तक,* पृ. १४.

दुनिया का/ सबसे निरीह धर्म होगा''।[१]

जयप्रकाश कर्दम हमें चेतावनी देते हैं कि देश में अपनी सत्ता और साम्राज्य स्थापित करने केलिए सवर्ण लोग समाज में जातीयता को जिन्दा रखेंगे। इससे देश में इनका साम्राज्य स्थापित हो सकता है। वे अपने स्वार्थ के लिए साम्राज्य में वर्ग-भेद और सांम्प्रदायिकता का ज़हर फैलायेंगे, जिससे वह महान बने और समाज जाति और वर्ण के चक्रव्यूह में फँसा जाए। कवि 'भारत' नामक कविता में कहते हैं-

''अपनी सत्ता साम्राज्य को
सुरक्षित रखने के लिए/मिटाएँगे वे मुझे ही
ज़िन्दा रखेंगे वे वर्ण और जाति
वर्ण भेद और साम्प्रदायिकता''।[२]

स्पष्ट है कि ब्राह्मणवादी सोच भारतीय सामाजिक संरचना में वर्ण एवं जाति को बनाये रखना चाहती है। हिन्दी दलित कविता समता में विश्वास करती है। इसलिए दलित कवि भेद-भाव के पक्ष में नहीं समता और भाईचारे के पक्ष में हैं।

३.१.१.२ जाति

धर्म और जाति एक दूसरे के साथ चिपक कर रहते हैं। व्यक्ति चाहे कितनी भी उच्च शिक्षा और पद क्यों न हासिल कर ले किन्तु जाति और धर्म उसका पीछा कभी नहीं छोड़ता। वह जहाँ बैठता है जाति उसके साथ बैठती है, जहाँ उठता है जाति उसके साथ उठती है। ये सदियों से दलितों का भोज बना है। इसका खुलासा वर्णन असंघ घोष अपनी 'धर्म! तुम्हें तिलांजलि देता हूँ' शीर्षक कविता में कहते हैं-

---

१ जयप्रकाश कर्दम (सं.), *दलित साहित्य वार्षिकी,* २००४, पृ. २०२.

२ जयप्रकाश कर्दम, *तिनका तिनका आग*, पृ. २०-२१.

''धर्म!/ तुम भी एक हो/ मेरा पैदा होने के बाद
जाति के साथ/ चिपकने वाले।
कमबख्त जाति को/मैं नहीं त्याग सकता
यह सदियों पूर्ण से/मेरे पुरखो के साथ/थोपी गई हैं''।[१]

बदलते समय में जातियों की जटिलताएँ बढ़ती गई, जातियों में से अनेक उपजातियों का जन्म हुआ। उच्च वर्ग (जाति) समाज में मान, मर्यादा, रहन-सहन में दलितों के श्रम जन्य सुख- सुविधाओं को भोगता रहा। दलित कितना भी योग्य क्यों न हो वर्ण व्यवस्था में उच्च जाति की श्रेष्ठता ही सिद्ध की जाती रही है। इसलिए दलित कविताओं में वर्ण एवं जाति के प्रति असहमति और विरोध मिलता है। डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर की कविता 'गोरख धन्धा' शीर्षक की पक्तियाँ हैं-

''इनसानियत की नहीं कोई कीमत
और न कोई पदवी है सद्चरित्र की
जात-पात के सांचे में ढलकर
यहाँ परख होती है मानव की/यहाँ
आदर -निरादर भी बंटता है
जात-पांत की तराजू से''[२]

सी. बी. भारती 'मेरी' जगह अपने आपको रखकर सोचने के लिए कहती हैं। दलितों के साथ जो अत्याचार हो रहा है, अगर वह हमारे साथ हुआ तो हम क्या करेंगे?

''अपने देश में उल्लू के पट्ठों ने
बना दी हैं आदमियों की जातियाँ

---

१ असंघघोष, *खामोश नहीं हूँ मैं,* पृ. १७.

२ डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर, *सिंधुघाटी बोल उठी*, पृ. ३८.

जिससे एक प्रतिष्ठा पाता रहे

दूसरा अन्दर ही अन्दर तिलमिलाता व सकुचाता रहे'' [१]।

गुरु हमेशा पीने के पानी के लोटे को कभी भी अस्पृश्यों का हाथ लगने नहीं दिया। उन्होंने पीने का पानी केवल सवर्ण छात्रों द्वारा ही भरवाया। जयप्रकाश कर्दम की 'वर्णवाद का पहाड़ा' कविता में जातीयता का दर्शन मिलता है-

''अपने पीतल के लोटे को

हमारे हाथ कभी नहीं लगने दिया/लोटे में पानी सदैव

सवर्ण छात्रों से ही भरवाया

मास्टर जी!

हम शुक्रगुज़ार हैं कि तुमने/हमें पढ़ाया

प्रगति का रास्ता दिखाया

लेकिन समता के मार्ग पर तुम/खुद नहीं चल पाए

हमने रखा तुम्हें/वर्ण और जाति से ऊपर

पर नहीं उठ पाए तुम अपनी/जातीय अहंमन्यता की संकीर्णता से''[२]।

जाति के नाम पर थोपी जा रही अमानवीय व्यवहार को दलित वर्ग ने सहा है। उनके समस्त दुःखों के मूल में वर्ण एवं जाति है। ओमप्रकाश वाल्मीकि 'वे भूखे हैं' नामक कविता के माध्यम से दूसरों का खून चूसनेवाला और हाशियेकृत वर्ग के हक को छीन कर जीनेवालों की ओर इशारा करते हैं-

''वे भूखे है/ पर आदमी का मांस नहीं खाते

प्यासे है/ पर लहू नहीं पीते/नंगे है

---

१ सी. बी. भारती, *आक्रोश,* पृ.६०.

२ जयप्रकाश कर्दम, *गूँगा नहीं था मैं,* पृ. २३.

पर दूसरों को नंगा नहीं करते
उनके सिर पर/छत नहीं है
पर दूसरों के लिए/ छत बनाते हैं''।[१]

जातिवाद पर प्रहार करते हुए 'जाति' कविता में कवि स्वर्ग जाने से इनकार करते हुए घोषणा करते हैं-

''स्वीकार्य नहीं मुझे/जाना, मृत्यु के बाद
तुम्हारे कल्पित स्वर्ग में/ वहाँ भी तुम
पहचानोगे मुझे/मेरी जात से ही।''[२]

डॉ. देवेन्द्र दीपक, जातिवाद के शास्त्र पर वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत करते हैं। आज जातिवाद एक शास्त्र बन गया है। इसके चक्रव्यूह में दलित वर्ग मसल रहा है-

''हम पैदाइशी बौने नहीं थे,/ हमें बौना बनाया गया,
कभी यह तुम्हारे समाजशास्त्र की माँग थी,
कभी यह तुम्हारे अर्थशास्त्र की माँग थी
हम तुम्हारी दोनों माँगों को,
धर्मशास्त्र के नाम पर पूरी करते रहे।''।[३]

जयप्रकाश कर्दम 'तिनका तिनका आग' में कहते हैं कि हालत यह हो गई है कि दलित व्यक्ति भूख की अपेक्षा जातिगत अपमान, उपेक्षा और सांस्कृतिक शोषण से अधिक आहत है। वह अभी भी यही महसूस करता है कि भूख के गणित से जाति का व्याकरण ज्यादा दुरूह और गंभीर है।

---

१ ओमप्रकाश वाल्मीकि, *बस्स! बहुत हो चुका*, पृ. ६६

२ वही, पृ. ७८.

३ डॉ. देवेन्द्र दीपक, *हम बौने नहीं*, पृ. ३२.

''कितना विकट होता है
भूख के गणित से/ जाति का व्याकरण''।[१]

मोहनदास नैमीशराय की कविता है 'फर्क तय करना है' में उन्होंने दलित जीवन की एक महत्वपूर्ण समस्या को उठाया है कि सिर्फ जाति के कारण ही अपमान सूचक शब्द जो कल तक गांव और कस्बों में ही कहे जाते थे, अब महानगरों में भी क्यों कहे जाने लगे हैं-

''एक ही मनुष्य जाति के होने पर भी
जातिगत सम्बोधनों के आधार पर
कसैले से लगने वाले स्वर/कल तक जो गाँव और कस्बों के
परिवेश में सुनाई देते दे आज उजालों के प्रतीक
महानगरों में भी
वही जातिगत सम्बोधन के आधार पर कसैले से लगने वाले स्वर
सुनाई पड़ने लगे है।''[२]

जब समाज में समता, सौहार्द, भाईचारे का संदेश फैलाना चाहता है तब इसके बीच बाधा बनकर आ जाता है जातिवाद। कवि गंगानिया इससे तंग आकर 'तभी पहूँच पाएगा' नामक कविता में कहते हैं-

''लेकिन/आवारा साँड सा/जातिवादी झौका
बार-बार/रौद जाता है इसे/अपने स्वरों से''।[३]

---

१ जयप्रकाश कर्दम (सं), *दलित साहित्य वार्षिकी,* २००४, पृ. १९७.

२ डॉ. सिंह, *चेतना के स्वर*, पृ.३.

३ ईशा कुमार गंगानीया, *हार नहीं मानँगा,* पृ. १४.

देश को प्रगतिशीलता के पथ पर आगे ले जाकर क्या फायदा जब वहाँ जाति की परेशानियों को दूर न करें। प्रगति के पथ पर जाति एक बाधा बन गयी है। डॉ. शत्रुघ्न कुमार, 'ये प्रगतिशील लोग' नामक कविता में लिखते हैं-

''जिद नहीं छोड़ी तुमने अभी भी
तोडी नहीं जंजीर जातीय उन्माद की
तो लगा तो अनुमान अंजाम की''।[१]

जाति एक रोग है। दलित वर्ग इस रोग से पीडित है। एक महामारी की तरह फैला जाता है। सूरजपाल चौहान 'रोको उसे' नामक कविता में व्यक्त करते हैं-

''जाति के रोग से पीडित/डाले फिरता है
गले में - छूत-अछूत की कण्ठी-माला''।[२]

डॉ. प्रेम शंकर जातिवाद पर प्रहार करते हुए घोषणा करते हैं-

''आदमी की जाति/मगरमच्छ सी सभी स्थानों पर खड़ी है,
सिर्फ अछूत को निगलने/ किसी ओर को नहीं
यही तो उत्तर आधुनिकता का जाति बोध है/मानव बोध नहीं''।[३]

रजनी अनुरागी ने 'नाम और जाति' नामक कविता में भारत की जातिवादी मानसिकता को व्यक्त किया है-

''शेक्सपियर ने कहा था/कि नाम में क्या रखता है
अगर वह भारत में पैदा होता/ तो ज़रूर जानता

---

१ डॉ. शत्रुघ्न कुमार, *अग्निशिखा*, पृ. २०.

२ सूरजपाल चौहान, *कब होगी वह भोर*, पृ. ७२.

३ कालीचरण स्नेही, *हिन्दी साहित्य में दलित अस्मिता*, पृ. १००.

कि नाम ही यहाँ सब कुछ है
यहाँ नाम में लगी होती है जाति''।[१]

उपर्युक्त कविताओं में जाति संबंधी अवधारणा को तीव्र रूप से स्पष्ट किया है। हिन्दु धर्म में जब तक वर्ण-जाति रहेगा तब तक यह धर्म मनुष्यता का विरोधी है।

३.१.१.३ अछूत/अस्पृश्य

अस्पृश्यता संबन्धी अवधारणा को भी दूसरे अध्याय में विस्तार से विवेचन किया है। वर्ण व्यवस्था के कारण ही मनुष्य- मनुष्य में भेद है। यही नहीं सवर्ण दलितों को मनुष्य मानने के लिए भी तैयार नहीं हैं। जबकि सब माँ की कोख से जन्म लेते हैं। सब की प्रजनन क्रिया एक ही जैसा है। यहाँ जन्म के अनुसार ही ब्राह्मण-शूद्र आदि भेद हो जाता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी प्रतिक्रिया 'वह दिन कब आयेगा' शीर्षक कविता में स्पष्ट किया है-

''मेरी माँ ने जने सब अछूत ही अछूत
तुम्हारी माँ ने सब बामन ही बामन
कितने ताज्जुब की बात है
जबकि प्रजन्न क्रिया एक ही जैसी है''[२]।

डॉ. श्यामसिंह 'शशि' ने 'एकलव्य और अन्य कविताएँ' नामक संग्रह में रामायण और महाभारत के पात्र 'ऋषि शम्बूक' पर कविताएँ लिखी हैं। शम्बूक जाति से अछूत होने के कारण उनके साथ अन्याय हुआ था। अतीत की इन घटनाओं को कवि व्यक्त करते हैं। उनके 'तपस्वी' शीर्षक कविता इसका उदाहरण है-

---

१ रजनी अनुरागी, *बिना किसी भूमिका के,* पृ. ९५.

२ ओमप्रकाश वाल्मीकि, *बस्स! बहुत हो चुका*, पृ. १०३.

''ऋषियों के रक्षक
यह तुमने क्या किया- ऋषि को,
तीर से मार दिया/पूर्णग्रहों से सधा
निशाना उचूक था/ तपस्वी शायद
शूद्र शम्बूक था।''[१]

वर्ण व्यवस्था और अस्पृश्यता ही व्यक्ति को व्यक्ति से दूर करती है, उनके बीच ऊँच-नीच का भाव पैदा करती है। इसी वर्ण-व्यवस्था और अस्पृश्यता के कारण भारतीय समाज में असमानता है। यदि समतावादी समाज की स्थापना करनी है तो सबसे पहले वर्ण व्यवस्था और अस्पृश्यता को जड़ से समाप्त करना होगा। 'आछूत' शब्द से ही मानव के बीच कितना फर्क पड़ जाता है व्यवहार में, आचार में, विचार में। देवेन्द्र दीपक लिखते हैं-

''वह शब्द काफी था/ तुमने एक कोयल उठाया
उस कोयले से एक काला वृत्त खींचा
और वृत्त में/मुझे स्थापित कर दिया
वह शब्द था अछूत/वह कोयला था अपेक्षा''।[२]

छूआछूत ऐसी ज़हर है जो वातावरण को विषैला बना रही है। पुनर्जन्म की माया रचकर शोषण करने वालों से कवि ओमप्रकाश सवाल करते हैं । आदमी में ब्रह्म का अंश है तो आपस में ही भेद कैसे होते हैं?

''तुम्हारे रचे शब्द/तुम्हें डसेंगे साँप बनकर
x x x x x

---

१ डॉ. श्यामसिंह शशि, *एकलव्य और अन्य कविताएँ,* पृ. ५४.

२ देवेन्द्र दीपक, *हम बौने नहीं,* पृ. १४.

या फिर पुनर्जन्म की लालसा में
किसी डोम या चूहड़े के घर/ पैदा न हो जाए
चूहडे या डोम की आत्मा/ ब्रह्मा का अंश क्यों नहीं
मैं नही जानता/शायद आप जानते हो.....''[१]

सुखवीर सिंह व्यथित होकर कहते हैं कि हमारे देश में न तो अतीत सत्य है, न वर्तमान सत्य है और न भविष्य सत्य है, कुछ भी सत्य नहीं, यदि सत्य है तो यह कि अस्पृश्यता का काला साया देश को बुरी तरह से ढके हुए हैं-

''यहाँ न वर्तमान सत्य है। न सच है भविष्य
जो कुछ है, सिर्फ भूत है
इसीलिए आबादी का बहुत बड़ा हिस्सा
आज भी/एकदम अछूत है''।[२]

'अछूत' नाम खुद दलितों का घाव है। इस घाव की पीड़ा इतनी तीखी है कि सवर्ण लोग ने उस घाव में बार-बार प्रहार करते हैं। कवि असंगघोष 'काट डालूँगा उन पैरों को' नामक कविता में अछूतों की पीड़ा को व्यक्त करते हैं-

''अछूत एक घाव है/ तुम्हारी ही दिया हुआ
जो नासूर बनकर/तेरी सड़ी वर्ण व्यवस्था से
असहनीय पीड़ा देता हुआ/ लगातार रिस रहा है''।[३]

अंबेडकरवादी कवि के पाँव धरती पर और मन अपने समाज से जुड़ा है। अछूतों के जीवन गाँव के बाहर, गंदी बस्ती और अंधेरा ही है। प्रो. दामोदर मोरे लिखते हैं -

---

१ ओमप्रकाश वाल्मीकि, *शायद आप जानते हो, बस्स! बहुत हो चुका,* पृ. १२.

२ सुखवीर सिंह, *बयान बाहर, दलित निर्वाचित कविताएँ*, पृ. १७८.

३ असंगघोष, *हम गवाही देंगे*, पृ. ५६.

''उन्हें बनाया गुलाम/भगा दिया गाँव के बाहर
अछूत के नाम से किया विभूषित
वही अस्पृश्य भारत''।[१]

जातिवाद के विषाद से चिंतित होकर कवि पन्नीलाल निर्भीक 'भ्रष्ट गढों को मसल डालो' नामक कविता में कहते हैं कि भारतीयों को जातिवाद से नहीं भारतीयता से जोड़ दो -

''जातिवाद के विषघर के दाँत, तोड दो
हर भारतीय को, भारतीयता से, जोड़ दो।
धर्म को दो गंदी राजनीति से बिदा
धर्म को देव और देवालयों पर छोड़ दो''।[२]

अछूत भारत के मूल वासी हैं। सवर्णों ने उन पर अत्याचार कर उनके अधिकार छीनकर उन्हें अछूत बना दिया। समाज को वर्ण के नाम पर बाँट कर उन्हीं को गाँव से बाहर कर उन्हें छूना क्या देखना तक पाप माना गया है। यहाँ कवयित्री ने अछूत की समस्या को निम्न रूप में चित्रित किया है-

''ये वे लोग है जो मुझे देख/नाक भौ सिकोडते हैं
और अपनी गोरी चमड़ी/ में ढके चलते हैं
अपना काला पानी/और सांस्कृतिक नीम पर
करते हमारी मिट्टी का सौदा/और पीछे पीछे की फुसफुस
और हमारे ही जीवन पर खडा कर/पूछते हैं हम से हमारी ही औकात''।[३]

---

१ दामोदर मोरे, *नीले शब्दों की छाया में,* पृ.७२

२ डॉ. जयप्रकाश कर्दम, *दलित साहित्य वार्षिकी २०००,* पृ.२१९.

३ निर्मला पुतुल, *ये वे लोग हैं,* कादंबिनी अगस्त, २००४, पृ. ७०.

शम्बूक शूद्र होकर भी तपस्या कर रहा था, तब राम ने शम्बूक की हत्या की। यानी व्यवस्था के विपरीत जा रहा है जिससे ब्राह्मण का बालक मरा है। यह सब जानते हैं कि यह एक षडयंत्र था शूद्रों के खिलाफ। इसका खुलासा चित्रण कंवल भारती अपनी 'शम्बूक' शीर्षक कविता में करते हैं-

"शम्बूक (हम जानते हैं)/तुम्हारी तपस्या से
ब्राह्मण का बालक नहीं मरा था,
जैसा कि वाल्मीकि ने लिखा है।
मरा था ब्राह्मणवाद/ मरा था उसका भवितव्य"।[१]

राजेन्द्र बड़गूजर का 'मनु का पाप' नामक कविता में अस्पृश्यता तथा मनु विरोध को ही केंद्र विषय वनाया है। वे कहते हैं-

"वही दो हाथ/वही दो पैर
वही दो आँखें/दराती लहने से कटने वाले
लहू भी लाल/फिर मैं अलग-थलग क्यों?
यही तो सदियों का सन्ताप है
निश्चय ही/यह मनु द्वारा किया गया पाप है।"[२]

जाति के क्रूर व्यवहार को कवि ने अभिव्यक्त किया है। वे इनसान को पशु के समान देखने की व्यवस्था पर चोट करते हैं।

उपर्युक्त कविताओं की पंक्तियों से हमें पता चलता है कि दलित कविता का मूल स्वर वर्ण जाति तथा अछूत व्यवस्था के प्रति अपना प्रतिरोध स्थापित करना है ।

---

१ कंवल भारती, *दलित निर्वाचित कविताएँ*, पृ. २१४

२ राजेन्द्र बडुगूजर, *मनु का पाप,* पृ. १३.

सामाजिक संरचना को बदलने या परिवर्तन करने के लिए क्या करना है? इस प्रस्ताव के उत्तर के रूप में नवेन्दु महर्षि का 'धर्म परिवर्तन' नामक कविता की कुछ पंक्तियाँ हैं-

"कदम-कदम पर/ हमारी अस्मिता को
घृणा के तीरों से/कोंचते हो।
तो फिर तुम/धर्म परिवर्तन करने से हमें
किस अधिकार से रोकते हो"[१]

उल्लेखनीय है कि कवि बाबा अंबेडकर द्वारा किये गये धर्म परिवर्तन को मानते हैं इसलिए हिन्दू धर्म में व्याप्त वर्ण, जाति, अछूतापन से मुक्ति पाने केलिए धर्म परिवर्तन को उचित मानते हैं।

३.१.२ दलित कविता का सामाजिक स्वर

बताया गया है कि साहित्य समाज का दर्पण है इसलिए समाज में जो है उसका सही चित्रण साहित्य में भी मिलता है। दलित कविता का प्रमुख स्वर सामाजिक है। दलित कविता में समाज में व्याप्त गरीबी, पीड़ा और अमानुषिक-कुकर्मों का वास्तविक चित्रण मिलता है। दलित कविता के सामाजिक स्वर में, उपेक्षित, अपमानित, दलितों की पीडा, शोषण, जीवन, दरिद्रता, श्रम आदि अनुभवों की व्याख्या है। यहाँ दलितों की स्वानुभूति को वाणी दी गयी है। दलित कवियों में श्री ओमप्रकाश वाल्मीकि सामाजिक संवेदना के एक ऐसे कवि हैं, जिनकी दृष्टि विशेषकर दलित समाज के प्रति गहन, सूक्ष्म और यर्थापरक रही है। 'हथेलियों में थमा सिर' शीर्षक कविता में उन्होंने साहित्यिक कलात्मकता के साथ जो सच लिखा है वह समाज की सामाजिक स्थिति का जीवंत दृश्य प्रस्तुत करता है-

---

१ नवेंदु महर्षि, *संसद तो सवर्ण है,* पृ. १०१.

''घुटनों पर टिकीं कुहनियाँ,
और हथेलियों में थमा सिर/ बेबस है वक्त के इस पड़ाव पर
जहाँ शब्द और भाषा अपनी पहचान खो चुके हैं''।[१]

१९७९ में पिपरा (बिहार) में १४ अछूतों की हत्या की गई थी। इस घटना के संदर्भ में ९ वर्ष बाद अर्थात १९९८ में कवि श्री मंसाराम विद्रोही ने एक लम्बी कविता लिखी जिसकी प्रस्तुत पंक्तियाँ हैं-

''सामूहिक हत्या पिपरा की, देवली की अजब कहानी है।
साढुपर की दुर्घटना से, भारत की अवनि सिहानी है''[२]

इसके साथ ही कवि एक अन्य घटना को भी व्यक्त करते हैं -

''आन्ध्रा के उस दंगे की, जहाँ रामनापलों की लाशें
बदोलिपुरा की घटना है, जग गई जहाँ की कुश कासें।
उन चार अछूतों की हत्या, कानोड़िपुरा है गठरी में
ग्यारह को जीवित भून दिया, बेलछी का क्रन्दन गठरी में''।।[३]

(क्या दलित तुह्मारी गठरी में?)

स्पष्ट है कि समाज में एक वर्चस्ववादी राजनीति की स्थापना करना ही इस सामूहिक हत्या के पीछे छिपा हुआ सत्य है। इस तरह के नर संहार समाज के दलितों एवं निर्बलों के साथ हमेशा होता रहता हैं।

---

१ ओमप्रकाश वाल्मीकि, *सदियों का संताप,* पृ. १८.

२ मंसाराम विद्रोही, *दलित मंजरी,* पृ. १२.

३ वही, पृ. ११

यह एक सामाजिक समस्या है कि दलितों को आज भी इस धरती में जीने का अधिकार नहीं मिल रहा है। समाज की ऐसी हालत है जो मानव-मानव को न पहचानकर उसे मारना चाहता है- कवि असंगघोष कहते हैं-

''मैं बस जानता हूँ/शास्त्रों की जीभ
जो उगलती है आग/हमारे खिलाफ
शास्त्रों की दुहाई देती हुई''।[१]

जय प्रकाश लीलवान 'समय की आदमखोर धुन' नामक कविता में वर्तमान समाज का चित्रण यूँ करते हैं-

''सम्प्रभुताओं के कन्धों पर
बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के झण्डों को
जोर-जबरदस्ती से/ लहराए जाने के जश्न की
जोरदार तैयारियों का/ दशक और दौर है/आज का समय''।[२]

कांता भीमराव 'दीदी तुम' नामक कविता में दीदी से समाज की भलाई करने को कहती हैं-

''तुम कुआं बनो/किसी गांव का/जो ना ब्राह्मणों का हो
ना क्षत्रियों का हो/ ना वैश्यों का हो/ ना दलितों का हो
हो तो सबका हो''।[३]

---

१ असंगघोष, *मैं दूँगा माकूल जवाब,* पृ. १३.

२ जयप्रकाश लीलावान, *समय की अदमखोर धुन,* पृ. ३५.

३ रजनी तिलक (प्र. सं.), *समकालीन भारतीय दलित महिला लेखन*, पृ. १८२.

कवयित्री दीदि के माध्यम से सब की भलाई करना चाहती है जो मनुष्यता का मूल भाव है।

राजकुमार वाल्मीकि राज 'सड़क से गुजरते' नामक कविता में वर्तमान समाज में अमीर और गरीबों की ज़िदगी का चित्रण किया है-

''मालिक की मार खाते हुए बच्चे
कार में बैठे गाने सुनते हुए बच्चे।
फाइव स्टार होटलों में खाते हुए लोग
फुटपाथ पर पकाते हुए लोग''।[१]

आज़ादी के दिनों में राष्ट्रीय एकता की बात ज़ोर पकड रहे थे जिसमें सतनाम आंदोलन, चौरा-चौरी आंदोलन, महाड आंदोलन, चान्नार आंदोलन आदि आंदोलनों की भूमिका रही थी। लेकिन आज दलित कवि पूछते हैं या सवाल करते हैं कि मनुष्यता के सामाजिक अधिकारों से वंचित व्यक्ति से राष्ट्रीय एकता की उम्मीद कैसे की जा सकती है? कवि श्यौराज सिंह बेचैन के शब्दों में देश की आबादी का एक बहुत बड़ा तबका महसूस करते हैं-

''दुनिया तो तुम्हारी है/ मैं मुल्क-बंदर
मेरा क्या है?/ निज देश में/ जैसे परदेसी
मेरे दिल की/कीमत खाक यहाँ
मेरे सपनों की/ ऐसी- तैसी/मैंने जिस्म/ अछूतों का पाया
मेरा जेहर है क्या/मेरा दिल क्या है''?[२]

---

१ डॉ. रजतरानी मीनु, *हिन्दी दलित कविता*, पृ. १३१.

२ श्यौराज सिंह बेचैन, *क्रौंच हूँ मैं*, पृ. ४४.

डॉ. धर्मवीर एक ऐसा जातिविहीन समाज और राष्ट्रीयता का आग्रह करते हैं जो विवेकशील और वैज्ञानिक सोच पर आधारित है। वे उसकी कामना करते हुए कहते हैं -

''उसका मन विकासमान है क्या करें?
पुराने बोझ को कहाँ ढोता फिरे?
वह पूजारी के ईश्वर का द्रोही है
वह छापे तिलक जनेऊ का शत्रु है''![१]

शंकर सोनाने का 'किशोरीलाल की आत्महत्या' कविता संग्रह में सोनाने के निजी विचार, आकांक्षा, आशा, सद्भावना की अभिव्यक्ति है। उनकी एक कविता में दलित समाज की वास्तविकता का चित्रण मिलती है-

''दलित वह है जो विवश हो जाता है/चमड़ा सिलने, कचरा साफ करने
मैला ढोने/दो जून की रोटी के वास्ते''।[२]

इसी प्रकार मलयालम में भी दलित जीवन के तीखापन को व्यक्त करने वाली कविताएँ हैं। जैसे श्री के. तंकप्पन का 'अरथी उठाने वाले' तथा 'इतिहास' । इन दोनों कविताओं को प्रो. अच्युतन ने अनुवाद किया है। इन कविताओं की कुछ पंक्तियाँ हैं-

''यह अरथी उतारने दो मुझे/नहीं तो
सड जायेंगे मेरे कंधे/निकलेगी बदबू.....!
अब इस राह से अरथी /उठाकर चलना मुश्किल है:
लडखडाकर गिर जाऊँगा मैं.....।'' [३] (अरथी उठाने वाला)

---

१ रमणिका गुप्ता, *चिंतन की परंपरा और दलित साहित्य*, पृ. ११३.

२ मोहनदास नैमिशराय (सं.) 'बयान' मई, २०१०, पृ. ५३.

३ डॉ. अच्युतन (सं.) *मलयालम में दलित साहित्य : दृष्टि और सृष्टि*, पृ. १३४.

''रसोई -मंदिरों को भी /मुखरित करता है/तो
ज़मीन्दार का वह उपेक्षित कृत्ता/ और/ रोग पीड़ित गुलाम
दोनों कोई पगडंडी रेंगकर,
संगठित होने की संभावनाओं को लेकर/एकजुट होते हैं।''[१] (इतिहास)

सच्चाई यह है कि अभिजात वर्ग दलितों को अपने काम केलिए इसतेमाल करते हैं, बाद में उन्हें फेंक देते हैं।

कवि शेखर अंबेडकरवादी कवि, चिंतक व समीक्षक हैं। 'मेरे कुनबे के लोग' संग्रह प्रकाशकीय में बताया गया है कि- कवि शेखर का कुनबा बहुत बड़ा है। इस कुनबे में विद्या का अभाव है एवं आर्थिक संपन्नता से वह कोसों दूर है, स्वतंत्रता, समता और सामाजिक न्याय से वह कुछ अपरिचित है। उसके ढोरों प्रश्न है, जिसे हल करने के लिए वह लगातार जूझ रहा है। 'हमारा कुनबा' कविता की ये पंक्तियाँ हैं-

''हमारा कुनबा सूरज की ज्वाला है
लोकतंत्र की धारा है/ हमारी पाठशाला है
पर तुम्हारी अकल पर ताला है''।[२]

ईश कुमार गंगानिया सवर्णों से कहते हैं कि दलित वर्ग को भी इस समाज में जीने का हक है। हम तुम्हारी सेवा करते रहे फिर भी तुमने हमें अपमानित किया। तुम अब इतना समझ, हम भी इनसान हैं-

''तुमने दी सदा उपेक्षा, अपमान और
पुकारा हमें राक्षस, चण्डाल

---

१ डॉ. अच्युतन (सं.) *मलयालम में दलित साहित्य : दष्टि और सृष्टि*, पृ. १३७.

२ शेखर, *मेरे कुनबे के लोग,* पृ. ५६.

बस इतना समझ- हमने ही जिया है- यथार्थ में
इंसानियत, सहिष्णुता और सदाशयता को''।[१]

आज़ादी के बाद भी भारतीय समाज ने दलितों को मनुष्य के रूप में स्वीकार नहीं किया । जयप्रकाश लीलवान 'दलित और आज़ादी' नामक कविता में लिखते हैं-

''उनकी आज़ादी ने हमें
अचम्भों की संतान से ज़्यादा/कुछ भी स्वीकार नहीं किया''।[२]

वर्तमान समय में लोग धन, अधिकार, सुविधाएँ आदि मिलने के लिए लड़ते हैं। लेकिन दलित वर्ग अपनी ज़िन्दगी के लिए लड़ते हैं। डॉ. पूरन सिंह 'खेल' नामक कविता में लिखते हैं-

''मेरे लिए/रोटी ही मेरी पूजा है/मेरा धर्म और ईमान है
इसी के लिए लड़ता हूँ रात-दिन
अपनी ज़िन्दगी से''।[३]

सामाजिक विषमता का शिकार दलित रहा है। चातुर्वर्ण व्यवस्था में शूद्रों को नीचे दबाकर सवर्ण लोग ऊपर चढ़ गया और संपन्न भी बन गया। सुशीला टाकभौरे की 'जीवन' और 'सीढी' शीर्षक कविताएँ इसका प्रमाण हैं-

''वे ही कभी आपकी/सीढी बने थे।
जिस पर पैर रखकर/ आप ऊपर चढ़े थे''।[४]

---

१ ईशा कुमार गंगानिया, *हार नहीं मानूँगा,* पृ. ४१.

२ विमल थोरात, सूरज बडत्या, भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर, पृ. ५२.

३ वही, पृ. १०३.

४ डॉ. सुशील टाकभौरे, *स्वाति बूँद और खारे मोती,* पृ. ११.

समाज की ऐसी स्थिति है कि दलितों को या उनके अनाज को कोई नहीं छूता। विशेष अवसरों पर भी उनके लिए ऐसी ही स्थिति है। इस सामाजिक स्थिति को कवि असंगघोष 'काश ! कि' नामक कविता में व्यक्त करते हैं-

''हमारे घरों ले/ नगद पैसा माँगता
कह देता/तुम्हारा अखिणा/कौन खाएगा''?[१]

इस प्रकार सामाजिक स्वर संबंधी अनेक दलित कविताएँ हैं जो भारत की असमानता को दूर करके सामाजिक समानता को कायम रखने केलिए प्रतिबद्ध हैं।

३.१.२.१ शोषण

शोषण की प्रक्रिया भारतीय समाज में पहले थी। इस प्रक्रिया में भी जाति, वर्ण एवं अस्पृश्यता का प्रमुख स्थान है। इसमें दो वर्ग रहते हैं - एक वर्ग शोषण करता है, दूसरा वर्ग है शोषित। दलित कविता शोषकों के खिलाफ आवाज़ उठाती है। दलितों का शोषण पुराने समय से हो रहा है। उन्हें पशु से बदत्तर समझा जाता है तथा उनके साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता है। दलितों की दयनीय दशा को देखकर कवि सोनटक्के कहते हैं-

''तब दलितों के सचर सपनों के नीचे हुए फलक लेकर
चिल्लाया मैं मृत्युभर तुम्हारे हृदय के नुकीले काँटों पर''।[२]

आज़ादी के बाद भी भारत के गाँवों में दलितों की स्थिति बहुत बुरी है। 'माटी की गन्ध' नामक कविता में एन. आर. सागर अपनी व्यथा व्यक्त करते हुए लिखते हैं-

''मेरा जन्म हुआ भारत की पावन धरती पर

---

१ असंगघोष, *हम गवाही देंगे,* पृ. ८९.

२ धीरज भाई वणकर, *दलित विमर्श*, पृ. १०७.

लेकिन माटी की गन्ध मुझे अनजानी लगती है''।[१]

गाँवों में दलित एवं स्त्रियों का शोषण किस तरह हो रहा है इसकी सच्चाई कवि सुधाकर 'स्वराज' नामक कविता में व्यक्त करते हैं-

''माता- बहिनों के लाल छीन, कुँओं में फेंके जाते हैं।
ललनाओं को नंगा करके, गलियों में दुष्ट घुमाते हैं।।
बामणशाही के ये गुलाम, जी भर कर हमें सताते हैं।/
मौका पाकर पापी हमको
जिन्दा ही बाँध जलाते हैं।।[२]

निर्मला पुतुल अपनी कविता में कहती हैं कि हो रहे अन्याय के खिलाफ बुलंद आवाज़ उठाओ। जिस तरह तूफान तहस-नहस कर देता है जैसे राख की चिंगारी जला देती है वैसे ही तुम भी बनो। सवर्ण लोग जो तुम्हारे साथ अन्याय कर रहे हैं, तुम्हारी चीज़ तुम्हें ही अधिक पैसे में बेचकर तुम्हें भूखा और थकान से तड़पने के लिए छोड़ दिया है-

''उठो कि अपने अंधेरे के खिलाफ उठो
उठो अपने पीछे चल रही साजिश के खिलाफ
उठो कि तुम जहाँ हो वहाँ से उठो
जैसे तूफान से बवंडर उठता है
उठती है जैसे राख मे दबी चिन्गारी ''।[३]

---

१ एऩ. आर. सागर, *आज़ाद है हम*, पृ.१५.

२ लक्ष्मीनारायण सुधाकर, *उत्पीडन की यात्रा,* पृ. १८.

३ निर्मला पुतुल, *बिटिया मुर्मू के लिए*, कांदबिनी आगस्त, २००४.

रत्नकुमार सांभरिया लिखते हैं कि गाँव में रहना है तो आज भी हमें जूठन का खाना और जूते की मार सहना पड़ता है। वहाँ की सामाजिक स्थिति का चित्रण इस प्रकार है-

"गाँव में रहना है।/ तो अपने बाप-दादाओं
के पदचिह्नों/पर चल/जो पहनते थे।/ हमारी उतरन
और खाते थे/जूठन"।[१]

दलित कवि श्री रणजीत सिंह सवर्णों के अत्याचार और क्रूरता को व्यक्त करते हुए 'ललकार' नामक कविता संग्रह में लिखते हैं -

"मासूम के साथ खून की होली तुमने खेली
एक से बढ़कर एक आपदा केवल हमने झेली"।[२]

दलित कविता के क्षेत्र में डॉ. दयानंद बटोही ने अपनी अलग पहचान पायी है। उनकी एक प्रसिद्ध कविता है 'द्रोणाचार्य सुने उनकी परंपराएँ सुने' इसमें शिक्षा के क्षेत्र में दलित छात्रों के साथ हो रहे अन्याय को कवि व्यक्त करते हैं-

"मैं सिर्फ/ द्रोणा तुह्मारे रास्तों पर चले गुरु से कहता हूँ
अब दान में अंगूठा मांगने का साहस कोई नहीं करता
प्रैक्टिकल में फेल करता है/
प्रथम अगर आता हूँ तो छठा या सातवां स्थान देता है।
जातिगंध टाइटिल में खोजता है
वह आत्मा और मन को बेमेल करता है।"[३]

---

१ निर्मला पुतुल, *बिटिया मुर्मू के लिए*, कांदबिनी आगस्त, पृ. १३३.

२ माता प्रसाद, *दलित साहित्य दशा और दिशा,* पृ. ११२.

३ डॉ. एन सिंह, *दर्द के दस्तावेज*, पृ. ११२.

डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी ने 'आँसु ही आँसु' कविता में दलित जीवन की पीड़ा को दर्शाया है। स्वतंत्रता एवं समता दलितों केलिए सिर्फ सपना ही रह गया है-

''आँसु ही आँसु है/मेरे भारत/नम हुई है आँसु से
हर आदमी की आँख/ और संवतंत्रता, स्वराज्य व समता का
सपना संजोती भारत माता
संशय की पीड़ा भोग रही है''।[१]

हरिकिशन सन्तोषी सामाजिक व्यवस्था पर प्रश्न चिह्न लगाते हुए कहते हैं-

''आज भी जीवित है
हज़ारों द्रोणाचार्य हमारी इस सामाजिक व्यवस्था में!
जो दलितों को समझ एकलव्य/काट रहे हैं उनका अँगूठा
बिना मांगे गुरुदीक्षा में''।[२]

डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर 'सिंधु- घाटी बोल उठी' कविता संग्रह में दलित समाज की दरिद्रता की ओर संकेत करते हुए कहते हैं-

''तुम पुराने कपड़े पहनकर
टूटे-फूटे झप्पतर में रहकर/सच्चे मन से जुटे हो
करने देश का निर्माण/पर फिर भी,
वे सभ्यज पुकारते है तुम्हें/ गंदे इन्सान''[३]

---

१ डॉ. एन. सिंह, *चेतना के स्वर,* पृ२३.

२ माता प्रसाद, *दलित साहित्य दशा और दिशा*, पृ. १४५.

३ डॉ. पी. सुनाक्षक, *सिंधु घाटी बोल उठी*, पृ. ३१.

समाज व्यवस्था के विकृत चित्र को बदलने का आह्वान डॉ. कुसुम वियोगी इन शब्दों में करते हैं-

''उठ न सका तू सदियों से,/अब तक शोषण सहके
ज़िन्दगारी अंगारा बनकर, आज हृदय में दहके
x x x x x x
परिवर्तन तो परिवर्तन है,/आज नहीं कल होना है''।[१]

दलितों के प्रति हो रहे नरसंहार जैसे अमानुषिक कुकर्मों का जीता-जागता चित्रण कवि प्रस्तुत करते हैं-

''होली का लाल गुलाल, टेसुआ रंग
पिपरा की होली से पूछे/गरीब दलितों का ज़िन्दा नरसंहार
युगों की बदबू भरी तस्वीर है
दलित ज़िदा जलते रहे/बालक गोलियों से भून दिये
नारियों के गोरे-गोरे कोमल अंग
क्षण-विक्षण हो संसद की/सजी हुई तस्वीर बन गए
मेरे तिरंगे क्या इसीलिए/ हम तुझे फहराते है''।[२]

कवि शेखर ने दलितों की पीड़ा और संघर्ष को सिर्फ देखा ही नहीं, वास्तविक रूप से उसे भोगा भी है। देश को आज़ाद हुए कई वर्ष हो गए किंतु दलित-मज़दूर आज भी गुलाम है, हमारी वर्तमान शोषण व्यवस्था पर कठोर प्रहार करते हुए कवि कहते हैं-

''हाँ, अब भी गुलाम हैं/ ज़मीन्दारों के, सेठ-साहुकारों के
मिल-मालिकों के/और ट्रेड यूनियनो के

---

१ कुसुम वियोगी, *पीडा जो चीख उठी,* पृ. ३१.

२ डॉ. एन. सिंह, *दर्द के दस्तावेज़*, पृ. २१.

तथा लुभावने नारों के''।[१]

दलित जीवन के मानसिक संघर्ष को हरपाल सिंह अरुष व्यक्त करते हैं-

'' गू की छीतर ठाकूर देख/ मुझको गले लगाकर देख
तेरा जूठा में खाता/मेरा जूठा खाकर देख''।[२]

ये पंक्तियाँ उस कटु अनुभव का बयान करती हैं जो मैला ढोने तथा दूसरों की जूठन खाने की लाचारी के पीछे छिपा हुआ है। अस्पृश्यता और जूठन खाना वे सब तू भी करके देख, तो मेरी पीडा को समझ जाएगा। यह पीडा सामाजिक व्यवस्था के कारण है जो दलित सदियों से भोग रहा है।

डॉ. चन्द्रकुमार वरठे का कविता संग्रह 'अधूरी चिट्ठी रेशनी की' दलित चेतना की कविताओं से परिपूर्ण है। उन्होंने अपने जीवन के संघर्ष को, जो शताब्दियों से उसकी जाति के लोग अंधेरों के विरुद्ध करते आए है उसे इस प्रकार अभिव्यक्त किया है-

''सूरज का बेटा हूँ/ मिट्टी का जाया
सदियों से/ अंधेरे की तानाशाही के खिलाफ
लड़ता हूँ आया''।[३]

डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन को उनसे भी बदतर ज़िन्दगी जीने वाले लोगों की चिन्ता है। 'कविता मुंह खोलों' में लिखते हैं-

''इन आँखों के/ सपने तो टूट गए लेकिन
जिन आँखों में/जनमें ही नहीं, उनकी सोचो तुमने तो

---

१ शेखर, *उजालों के कछार पर*, पृ. १३.

२ डॉ. कालीचरण स्नेही, *दलित विमर्श और हिन्दी दलित काव्य,* पृ. ६१.

३ डॉ. चन्द्रकुमार वरठे, *अधूरी चिट्टि रोशनी की,* पृ. १४.

कह ली/ अपनी और पराई भी?अब खोल/सको तो
बेजुबान का/मुंह खोलो''।[१]

सदियों से दलितों का शोषण होता रहा है। साहूकारों के मकड़जाल से दलित बच नहीं पाते। कुछ दलितों के पास न तो घर है, न खाने को रोटी। उनके बच्चे शिक्षा से वंचित रहते हैं। कवि शेखर कहते हैं-

''अब पता चला कि मेरी मेहनत छटपटा रही है
साहूकारों के मकड़जाल में/बेहद ठगा गया हूँ मैं
और हमें रोटी भी नसीब नहीं,/ अपने ही गाँव में।

आगे कहते हैं-

''अब पता चला/कि हमारे बच्चे भी शिक्षा से वंचित होंगे।''[२]

भूख दलितों की एक सामाजिक समस्या है। रोटी और इलाज समय पर न मिलने से प्रतिदिन कितने बच्चे मर जाते हैं । कवि अंसगघोष 'मोना तुम मरी क्यों?' कविता के ज़रिए हमारी सोच को हिलाया है।

''तुम्हारी लाश उखाड़े बिना/ बिना चीरफाड किये
तुम्हें भूख ने मारा/बुखार ने मारा/अभाल ने मारा, या
मौत ने मारा/ओ मोना! तुम मरी क्यों''?[३]

दलित वर्ग का शोषण इतने छल से किया जाता है कि वे शिक्षा, उत्थान, और विकास की बात सोच ही न सके। अपनी रोटी के जुगाड़ में ही उलझे रहें। लालचन्द राही लिखते हैं-

---

१ डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन, *क्रौंच हूँ मैं*, पृ. ५३.

२ शेखर, *मायावती के गाँव में*, पृ. ७.

३ असंगघोष, *खामोश नहीं हूँ मैं*, पृ. २३.

''मेरी स्थिति धोबी के कुत्ते से कम नहीं थी
मेरा नाम न स्कूल में दर्ज था न कारखाने में
मेरे भाग्य में मूँगफली बेचना था कपबशी धोना ही था''।[१]

सूरजपाल चौहान ने 'न्यौत' कविता में गाँव का यथार्थ सामाजिक चित्रण किया है। गाँव को बाहर से देखने में सुख-शांति नज़र आती हैं। लेकिन असलियत उसकी आत्मा में हैं। वे लिखते हैं-

''बदबू से /जी मितलाने लगेगा
देखकर बजबजाती गन्दगी/गू से लिथड़े
सुअरों की ढों-ढो''।[२]

सूरजपाल चौहान की 'मेरा क्या हैं' शीर्षक कविता भारत में दलितों के साथ हो रहे बेईमान व्यवहार की सच्चाई का बयान करती है-

''संबिधान भी रचा मैंने/फिर भी वंचित, अपेक्षित
नगर, गाँव से बाहर कर/मेरा डेरा
मेरी ही संचित शक्ति से/तुम बैठ गये सत्ता पर/फिर मेरा क्या''?[३]

शोषण के फलस्वरूप समाज में दलित भूख, दरिद्रता, अशिक्षा, अत्याचार आदि से पीडित हैं। इस तरह शोषण के विविध आयामी स्वरों को वाणी देने का सफल प्रयास दलित कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से किया है।

---

१ लालचन्द राही, *अनाम बस्तियों के देश में*, पृ. १७.

२ सूरजपाल चौहान, *कब होगी वह भोर,* पृ. २५.

३ सूरजपाल चौहान, *प्रयास*, पृ. ६३.

३.१.२.२ श्रम

बहुत सारे दलित गीतों का जन्म; मेहनत या श्रम के साथ जुड़ा हुआ है। मेहनत करते वक्त मज़दूर के नैसर्गिक श्वासोच्वास में ताल के साथ जो शब्द है, वह महत्वपूर्ण होता है। सब जीवी श्रम करता है। लेकिन मानव की मेहनत का महत्व है। एक ओर वे धरती को उर्वरा बनाता है। दूसरी ओर प्रकृति में रहकर, प्रकृति के साथ मिलकर अपने जीवन बिताने की एक 'फोरमुला' बनाता है इसलिए श्रम या मेहनत दलित जीवन की कुंजी है। धरती से उत्पन्न अन्न, धन, प्रकृति के पंचभूत-वायु, जल, अग्नि, पृथ्वी, आकाश आदि का हिस्सा और अधिकार श्रम करने वालों का भी है। धरती में श्रम करने वाले ज़्यादार दलित एवं निम्न जाति के हैं। डा.एन सिंह ने सही कहा है-

''सतह से उठते हुए/मैंने जाना कि/इस धरती पर किये जा रहे
श्रम में/जितना हिस्सा मेरा है/उतना हिस्सा/ इस धरती के
हवा पानी और/इससे उत्पन्न होने वाले
उस अन्न और धन में भी है''।[१]

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने सामाजिक-आर्थिक यथार्थ को उकेरकर श्रम की भागीदारी फसल में किस अनुपात में होना चाहिए इसके लिए विचार करने की प्रेरणा दी है। आर्थिक विकास में दलित समाज का योगदान होते हुए भी इस समाज को गरीबी भोगनी पड़ती है। 'ठाकूर का कुंआ' नामक कविता में वे लिखते हैं-

''खेत ठाकूर का/बैल ठाकूर के
हल ठाकूर का/हल की मूठ पर हाथ मेरा
कुँआ ठाकूर का/पानी ठाकूर का
खेत खलिहान ठाकूर के/गली - मुहल्ले ठाकूर के

---

१ डा. एन. सिंह, *सतह से उठते हुए,* पृ. २४

फिर अपना क्या?/ गाँव?/शहर? देश?''[१]

भारतीय सामाजिक-आर्थिक संस्था में दलित व्यक्ति आज भी विभिन्न रूपों में सबसे ज्यादा शोषित, प्रताड़ित और अपमानित है। आधुनिकता के छलावेपूर्ण आइने में वह अभी भी सबसे ज्यादा उपेक्षित और प्रताड़ित महसूस करता है-

''सूरज की गर्मी से/ नहीं झुलसता मेरा शरीर
उसे झुलसाता हैं/ यंत्रणाओं का सूरज''।[२]

सवर्ण दलितों से इतना काम कराते हैं कि जितना पशु से भी नहीं लिया जाता। इतना काम लेकर भी उन्हें उनके श्रम का सही मूल्य नहीं मिलता। मलखान सिंह अपनी 'आखिरी जंग' कविता में इसका वर्णन करते हैं-

''ओ परमेश्वर!/कितनी पशुता से रौंदा है हमें
तेरे इतिहास ने /देख, हमारे चेहरों को देख /
भूख की मार के निशान/साफ दिखाई देंगे तुझे।
x x x x x x
हमारे सूजे हुए कन्धों को छू/बैल के पके कंधे का दर्द भी
हलका लगेगा तुझे''।[३]

इस संसार में जितने भी भौतिक वस्तुएँ हैं, उन्हें दलितों ने ही अपना खून पसीना एक कर बनाया है। चाहे वह देवों की मूर्तियाँ हो, किले हो, मिट्टी के बर्तन हो आदि सब शूद्रों के पसीने से ही बना है। अशोक भारती 'कौन थे वे' शीर्षक कविता में पूछते हैं -

---

१ ओमप्रकाश वाल्मीकि, *सदियों का संताप,* पृ. १३.

२ वही

३ कंवल भारती, *दलित निर्वाचित कविताएँ,* पृ. ४१.

''किसका पसीना था वह/ ढाके का मलनल
चंदेरी की साडियाँ/ गाढे का खद्दर
कौन थे वे जो-/पत्थरों में दम भरते थे,
सूत से कमाल करते थे, तुम्हारा इतिहास गढ़ते थे?''।[१]

इसी कविता में कवि आगे सवाल करते हैं और जवाब भी देते हैं-

''क्या वह तुम्हारे वंशज थे।/जाति-विरादर थे,
ब्राह्मण थे, पुरोहित थे, राजा थे?/वह शूद्र थे, अछूत थे''।[२]

श्रमिक व्यक्ति श्रम करके उसका शरीर हडिडयों के ढाँचे में बदल गया है। इतनी मेहनत करने पर भी उसे ठीक तरह दो वक्त की रोटी नहीं मिलती। दलितों को श्रम और संताप किस तरह तोड़ती है इसका चित्रण जयप्रकाश कर्दम अपनी 'अम्बेडकर की संतान' शीर्षक कविता में करते हैं-

''हड्डियों का ढाँचा सा दिखने वाला/ हरियां जानता है
वह रुग्ण नहीं है उसे/श्रम और संताप ने तोडा है''।[३]

आज दलित वर्ग मानसिक रूप से अपने अधिकारों के लिए समाज में अपने स्थान के लिए और आत्मसम्मान के लिए सचेत हो गया है। डॉ. रमणिका गुप्ता लिखती हैं-

''..... पर वे अब बोलने लगे हैं
भूख को भोजन/ प्यास को पानी

---

१ कंवल भारती, *दलित निर्वाचित कविताएँ,* पृ. १९०

२ वहीं

३ जयप्रकाश कर्दम, *गूँगा नहीं था मैं,* पृ. ५५.

मार को लाठी कहने लगे हैं
वे बोलने लगे हैं अब!.....''[१]

दलितों के जीवन का भी मूल्य और महत्व हैं। अगर देश में दलित मज़दूर नहीं है तो पूरा भारत भूखा मर जाएगा। वे हर दिन -रात इतना श्रम तुम्हारे लिए करते हैं। फिर भी तुम उसे धूल के समान उडाते हैं। रजनी तिलक 'मजदूर है इस देश का दलित' नामक कविता में व्यक्त करती हैं कि-

''गर्मियों में लहू टपकता, बन पसीना तुम्हारा,
सर्दियों में अर्द्ध-वस्त्र, ठंड से बेहाल बेचारा/ दलित?
तुम ही हो इस देश के सर्वहारा''।[२]

सामाजिक अन्याय का एक कारण दलित समाज के लोगों का अपने अस्तित्व के प्रति चेतस न होना भी हैं। डॉ. जयप्रकाश कर्दम ने ऐसे लोगों को जिन्दा कौम के मुर्दा लोग बताया है। आपने ऐसे लोगों का आह्वान किया है कि वे अपनी दीनता-हीनता की भाव-भूमि से ऊपर उठकर स्वाभिमानी बनें और हथियारबद्ध होकर अन्यायकारियों का मुकाबला करें। 'स्वाभिमान के पथ पर' शीर्षक उनकी कविता की पक्तियाँ हैं-

''आज ही अपनी/दीनता और हीनता को झटक दो
और साहस के साथ/ स्वाभिमान के पथ पर
कदम बढा दो''[३]

जब तक दलितों को दलितत्व से नफरत नहीं होती तब तक विद्रोह की ज्वाला नहीं फैलेगी। भीख माँगना, जूठन लेना, हाथ फैलाना, अन्याय सहना आदि दलितत्व

---

१ डॉ. रमणिका गुप्ता, *अब मूरख नहीं बनेंगे,* पृ. ४७.

२ रजनी तिलक, *पदचाप,* पृ. ३८.

३ जयप्रकाश कर्दम, *तिनका तिनका आग*, पृ. ३५.

मानसिकता की हीनता का प्रमाण है। दलितों को सामाजिक जीवन का मूल्य समझना चाहिए और बाबा साहब अंबेडकर के मार्ग पर चलना होगा, वहाँ उसकी रोशनी है। कवि दामोदर मोरे लिखते हैं-

"जो अंधेरे से कहते हैं नफरत/उन्हें हरिजन शब्द लगता है गाली।
जो चाहते है रोशनी की हिफाजत,
उन्हें जयभीम शब्द लगता है, महकते फूल जैसा"।[१]

उपर्युक्त कविताओं के विश्लेषण से यह पता चलता है कि दलित कविता के सामाजिक स्वर में श्रम के महत्व को पहचानने से ही दलितों में आत्मविश्वास और चेतना जागृत कर सकता हैं। प्रगतिवादी सोच के मूल में भी श्रम एवं वर्ग - संघर्ष की ओर संकेत है। मार्क्स का कहना है कि आज तक का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है और ये वर्ग उत्पादन संबंधों के कारण निर्मित है। श्रम के बिना उत्पादन संभव नही है। इस तरह के शारीरिक एवं मानसिक श्रम भी एक तरह की शिक्षा है। अतः अनायास संगठित हो सकते हैं। संगठित होने से सामाजिक संरचना को बदलने के लिए संघर्ष भी कर सकते हैं।

३.१.३ दलित कविता का आर्थिक स्वर

हम जानते हैं कि वर्णव्यवस्था को भंग करते हुए जाति-भेद का उन्मूलन दलितों की मुक्ति के लिए अनिवार्य है। संघर्ष द्वारा श्रमिक वर्ग के आर्थिक शोषण से मुक्ति की ओर कारल मार्क्स ने भी संकेत किया है। लेकिन उल्लेखनीय बात यह है कि दलितों को सर्वप्रथम सामाजिक दासता से मुक्ति पाना ज़रूरी है। क्योंकि आर्थिक शोषण को खतम करने केलिए यह अत्यन्त ज़रूरी है।

---

१ प्रो. दामोदर मोरे, *सदियों से बहते ज़ख्म,* पृ. ७८

मानव जीवन में अर्थ का बड़ा स्थान है। लेकिन दलित हमेशा अन्त्यज रहे, दास रहे। इसलिए आर्थिक उन्नति उनके जीवन में नहीं के बराबर है। धन या संपत्ति हमेशा उच्चवर्ग या वर्चस्व के साथ रहा है। ब्राह्मणवादी सोच ने सोच विचार करके संपत्ति को अपने कब्ज़े में रखा। स्वाभाविक है कि आर्थिक बल के लिए बाकी लोगों को उनके साथ संघर्ष करना पड़ा। दलित कविता के आर्थिक स्वर में इस संघर्ष का जीता - जागता चित्रण मिलता है। इसका एक प्रमाण नवेन्दु महर्षि के 'मनुस्मृति का अन्तरंग' नामक कविता में है-

''कोई दलित अगर धन या संपत्ति/ का संगृह करता है
तो सवर्णों को वह धन या संपत्ति/छीन लेनी चाहिए
यह मनुस्मृति का/धर्म वाक्य है
x x x x x
जिसे सुनकर एकबारगी/न्याय की तो बात क्या
अन्याय भी अपना माथा झुका ले''[१]

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दलित समाज का चित्रण किया है जिसमें दलित व्यक्ति तंग गलियों में निवास करते हैं। दुःख भरे रोने चिल्लाने की आवाज़ को कवि ने कविता के रूप में दर्शाया है। यह उसकी अभावग्रस्त स्थिति और आर्थिक दरिद्रता का भी परिचायक है-

''संकीर्ण पतली गलियों में/कुनमुनाती गन्दगी से
टखनों तक तने गाँव में/सुना है
दहाड़ती आवाज़ों को/ किसी चीख की मानिंद
जो हमारे हृदय से/मस्तिष्क तक का सफर तय करने में

---

१ नवेन्दु महर्षि, *संसद तो सवर्ण है*, पृ. १०५.

थककर सो गई है।''[१]

कवि कंवल भारती आर्थिक स्थिति का चित्रण इस प्रकार करते हैं-

''चिडिया भूखी थी/इसलिए गुनाहगार थी/मारी गई वह चिडिया
जो भूखी थी/लेकिन गोरव पाण्डे ने गलत लिखा है
वह चिडिया भूख से नहीं/चिडिया होने से पीडित थी
चिडिया जो मारी गई थी''।[२]

नरक-स्वर्ग की कल्पना दलित कविता में नहीं है। किन्तु नरक से आशय यहाँ गरीबी, अस्पृश्यता और उपेक्षा से युक्त समाजिक व्यवस्था से है। कवि मंसाराम विद्रोही इस दलित जीवन की आर्थिक दशा को इस प्रकार व्यक्त करते हैं-

''लू वर्षा गुण्ड न छोड़ कहीं/वे शोषित पीडित मरते जो।
भुखमरी जहाँ की शोभा है/वे भारत में ही रहते जो''[३]

कर्मशील भारती समाज की आर्थिक व्यवस्था का चित्रण इस प्रकार करते हैं-

''निर्धनता की, चक्की में पिस रहा समाज है।
महंगाई की रगड़न में पिस रहा समाज है,
मुट्ठी भर धनवानों में उलझी आर्थिक व्यवस्था
सदियों पहले सा शोषण विद्यमान आज है''।[४]

---

१ ओमप्रकाश वाल्मीकि, *सदियों का संताप,* पृ. २६.

२ पुन्नी सिंह (सं), भारतीय दलित साहित्य परिप्रेश्य, पृ. ३३४.

३ मंसाराम विद्रोही, *पीडा जो चीख उठी,* पृ. २०.

४ कर्मशील भारती, *दलित मंजरी*, पृ. ९३.

स्पष्ट है सामाजिक अर्थ व्यवस्था पहले से आज तक कुछ लोगों के हाथ में ही हैं। आर्थिक स्तर में भी दलितों को न्याय नहीं मिल रहा है। जिसमें अर्थाभाव, सर्दी, गर्मी, बरसात तीनों ऋतुओं में लोग लगभग समान रूप से दुखी रहते हैं। जहाँ बच्चे प्रायः भुखमरी के शिकार हो जाते हैं, ऐसे भाव को कवि रामदास निमेश ने निम्न पंक्तियों मे व्यक्त किया है-

''नंगे रहते रात, दिन, सर्दी, गर्मी, बरसात
बिना अन्न अरु दूध के, शिशु भूखे मरजात''।[१]

पद्मश्री डॉ. श्यामसिंह 'शशि' ने अपनी 'निर्वाचन' शीर्षक कविता के ज़रिए समाज की आर्थिक दशा का यथार्थपरक चित्रण किया है-

''झोपडियाँ आज भी/मेरी आँखें नम कर जाती हैं।
चिथड़ा शक्लें/मुझे गम दे जाती हैं।
रेंगते कीड़े तलाश रहे हैं।/कोई चमत्कार
कंकाल करता है/ नये निर्वाचन को नमस्कार''।[२]

यहाँ निर्वाचन और कंकाल शब्द स्वतंत्रता के बाद भी राजनैतिक दायित्वहीनता का प्रतीक है। प्रस्तुत विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि आर्थिक विषमता दलित समाज की एक भीषण समस्या है। अर्थ के बिना जीवन को आगे ले जाना मुश्किल है। दलित कविता आर्थिक समानता के पक्षधर है। साथ में दलितों को न्याय दिलाना चाहती है।

---

१ रामदास निमेश, *भीमकथामृतम्*. पृ. १३६.

२ डॉ. श्यामसिंह शशि, *एकलव्य और अन्य कविताएँ,* पृ. ३१.

३.१.४ दलित कविता का राजनीतिक स्वर

हिन्दी की दलित कविता अपने दर्द भरे अतीत को आज के समय संदर्भों में रखकर विश्लेषित कर रही है, जो भविष्य की राह दिखाने का प्रयास ही है, अब दलित जनता और कवि यह जानने लगे हैं कि हमारी स्थिति को केवल राजनीतिक शक्ति ही बदल सकती है। डॉ. बाबा साहब अंबेडकर ने कहा भी था कि- ''हम अनुभव करते हैं कि कोई दूसरा हमारे दुःख-दर्द दूर नहीं कर सकता और जब तक हमारे हाथों में राजनीतिक शक्ति नहीं आ जाती, हमारे दुःख -दर्द भी दूर नहीं हो सकते''।[१] लेकिन दलित वर्ग अब तक अपनी शक्ति को पहचान नहीं पाया है, उसे श्री जगजीवन राम इस तरह व्यक्त करते हैं - ''ये निरीह अनुसूचित जाति और जन-जाति के लोग स्वयं अपनी शक्ति से परिचित नहीं हैं, और यह शक्ति है, इनकी अपार जनसंख्या''।[२] इस अपार जनसंख्या को संगठित करके अपने हक के लिए संघर्ष की प्रेरणा देना ही दलित कविता का उद्देश्य है।

स्वतंत्रता आंदोलन के बहुत पहले ही स्वामी अछूतांनंद हरिहर जी ने अपना राजनीतिक विचार प्रबल रूप से पेश किया है। अमीनाबाद पार्क लखनऊ में १९ अक्तूबर १९२६ को सम्मेलन में तत्कालीन होम मेम्बर छतारी की सेवा में यह कविता स्वामी जी ने प्रस्तुत की-

''ऐ होम मेम्बर ! नवाब साहब, हम आपको क्या अर्ज सुनाये।
हों आदि हिन्दु सभा के रहबर ! हकूक मुल्की हमें दिलाये।।
हम आदिवासी हैं। इस जमी के, कहीं न बाहर से आये है।
हमारे एक हैं सभी से ज्यादा, हकूम मुल्की हमें दिलाये।।

---

१ डॉ. एन. सिंह, *मेरा दलित चिंतन,* पृ. ५२.

२ वहीं, पृ.

हमारे पुरखों के थे हजारों किले यहाँ, वेदों से है जाहिर।
गुलाम हमको किया द्विजों नें, हकूक मुल्की हमें दिलायें।
द्विजों ने हमको 'अछूत' कहकर, दिये सभी नीच काम हमको।
हराम आराम सब हुआ है, हकूक मुल्की हम दिलाये।।''[१]

स्वामीजी ने बहुत पहले ही दलितों की पहचान एवं अस्तित्व पर सवाल उठाया है। वे उस समय के अधिकारियों से दलित/मूलवासियों की राजनीतिक हक माँगते हैं। प्रस्तुत पंक्तियाँ अतीत वर्तमान और भविष्य में भी प्रासंगिक है।

आज भी दलितों पर होने वाले अत्याचारों की कमी नहीं है। यहां पर कानून अंधा हो जाता है, पुलिस तन्त्र बेकार हो जाता है। नेता अपने पद को दूसरे राजनीतिक दल के बदनाम करने केलिए एक राजनीतिक हथियार के रूप में इस्तेमाल करते हैं। इन सभी केलिए दलित व्यक्ति नहीं, वोट होकर रह गया है, इस स्थिति को डॉ. एन. सिंह अपनी एक कविता में इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं-

''जुल्म बढ़ते जा रहे हैं भाव से।/राजनीति हाट है परचून की।।
वोट की कीमत यहाँ सब आंकते।
किन्तु कीमत कुछ नहीं है खून की''।[२]

डॉ. शत्रुघ्न कुमार आज के संविधान पर समीक्षा करते हैं। आज के संविधान मानव के लिए नहीं कुछ स्वार्थ लोगों की ऊँचाई केलिए बनाया गया है। वे 'संविधान समीक्षा' नामक कविता में लिखते हैं-

---

१ डॉ. राजपाल सिंह 'राज', *स्वामी अछूतानन्द हरिहर*, पृ. ४२.

२ डॉ. एन. सिंह, *मेरा दलित चिंतन*, पृ.५१.

''हो गई शुरुआत संविधान समीक्षा की
अंधे युग के शुरुआत के साथ
कुचली जायेंगी दीवार मानवता की/संविधान समीक्षा के साथ''।[१]

'चिंगारी' नामक कविता में वर्तमान लोकतंत्र की असलियत का पर्दाफाश किया गया है-

''मेरी कविता पूछती है/कि उनके मन में अब भी क्यों मक्कारी है।
'अवसर की समानता' भी इस लोकतंत्र में गाली है
और 'थूथ फाँर इक्कीलिटी की पौधा/घृणा से लेस होकर उगाई हैं।''[२]

कवि सुधाकार आज़ादी के बाद हुई सत्तालोलुप प्रवृत्ति को यूँ व्यक्त करते हैं-

''फँसी के तख्ते चढ कर/जिस आज़ादी के पढे छंद
विस्मिल वह आजादी/कोठी-बंगलों में हुई बन्द
भगत सिंह-शेखर-सुभाष के/असमानों को धूल मिला
आज़ाद हुआ बस लालकिला''।[३]

मोहनदास नैमिशराय इन्हीं प्रतिशोधात्मक शत्रुतापूर्ण प्रवृत्तियों की तरफ इंगित कर लिखते हैं-

''वे आ गये/हाथों में वर्छी/खिलावर
नंगी तलवारें/ कटे लिये
राजनीति के अलम्बरदारों से भरी जीप गाडी/होंडा
मारुती/फिएट/एम्बेसडर/उनका शोर सुनकर

---

१ डॉ. शत्रुघ्न कुमार, *अग्निशिखा*, पृ. १२३.

२ शेखर, *उजालों के कछार पर*, पृ. ११४.

३ रमणिका गुप्ता, *दलित चेतना*, पृ. ११४.

घरों में माताओं के स्तन मूँह में डाले/बच्चे चौंक उठते हैं।''[१]

डॉ. धर्मवीर संविधान का हवाला देकर बूचडखाने में बदल गये राष्ट्र को चित्रित करते हैं-

''वह संविधान है- किस काल से गुज़र रहा?
पत्रों से बढ़ता है आए दिन ढंगे होते हैं
बेतार से बूचड़ खाने की सूचनाएँ सुनता है
कितने अछूत कटे, भून दिये गये और क्यों''।[२]

हरनोटिया की 'पूर्वजों से पूछो' कविता में आरक्षण की आवश्यकता बताई गई है। सवर्णों ने अपने छल-प्रपंच से दलितों को शिक्षा से वंचित रखा। वे जानते थे अगर ये लोग पढेंगे तो फिर हमारी खेती व गुलामी कौन करेगा। सदियों से शिक्षा व नौकरी से वंचित दलितों के लिए संविधान में आरक्षण की व्याख्या की गई है। किन्तु आज कुछ नेता लोग उन्हें दूर करना चाहते हैं। कवि, 'सत्ता में आरक्षण क्यों?' का उत्तर इन शब्दों में देते हैं-

''हुआ समझौता/सत्ता में भागीदारी का/आरक्षण क्यों''?[३]

संविधान में पिछडे शूद्रों के विकास के लिए आरक्षण दिया गया है। इस आरक्षण के कारण सवर्ण शूद्रों से घृणा करने लगे हैं। अगर सोचा जाए तो सवर्णों को भी आरक्षण है- जैसे मंदिरों की कमाई पर ब्राह्मणों का एकाधिकार है, गैर सरकारी संस्थाओं में सवर्णों का नियोजन, यह सब उचित है तो दलितों के लिए क्यों अनुचित? सवर्ण

---

१ वही, पृ. ४५-४६.

२ डॉ. धर्मवीर, *हिरामण*, पृ. ६४.

३ जसराम हरनोटिया, *पूर्वजों से पूछो,* पृ. ११.

दलितों के आरक्षण का विरोध क्यों करते हैं? इसका चित्रण जयप्रकाश कर्दम अपनी 'आरक्षण' कविता में करते हैं-

''सब कुछ/तुम्हारे लिए हो तो उचित है
लेकिन मेरा भी हिस्सा हो/तो अनुचित है।
यानि हर जगह/तुम्हारा आरक्षण उचित है/मेरा अनुचित ''[१]

धर्म, जाति के झगडे की समरसता, एकता केलिए घातक है। लेकिन समाज में होने वाले बुराईयों को राजनैतिक संरक्षण मिलता है। अपराधी इसके बल पर बच जाता है। ऐसी अमानवीय प्रवृत्तियों को राजनैतिक छाया मिलती रही तो कवि डॉ. कुसुम वियोगी लिखते हैं-

''नेता सारे लुभा रहे हैं, सत्य अहिंसा की बोली से।
जाति-धर्म-भाषा के बल पर खेल खून की होली से।
अधिकारों की लड़ें लडाई, दफन करें वे गोली से!
दहेज - दरिन्दें जला रहे जो दुलहन उतरे डोली से।
हुआ न्याय का आसन हग-मग हुई धर्म से हीन धरा
देख व्यवस्था राज-काज की आम आदमी डरा-डरा''।[२]

दलित कविता केवल हक की माँग ही नहीं करती, वरन सुविधाएँ और अधिकार प्राप्त हो जाने के बाद अपने कर्तव्यों के निर्वहन की बात भी करती है। आज की वास्तविकता पर उँगली रखते हुए कवि कहते हैं कि आरक्षण का लाभ लेकर तुमको नौकरी मिल गई, तो तुम अपनी नौकरी से ही चिपक गए और तुम्हारा अतीत क्या है?

---

१ जयप्रकाश कर्दम, *गूगा नहीं था मैं,* पृ. १७.

२ डॉ. कुसुम वियोगी, *पीडा जो चीख उठी,* पृ. ३०.

तुम इसे जानना ही नहीं चाहते हो... सच तो यह है कि तुम सुविधाभोगी हो गये हो यही तुम्हारे पतन का कारण है-

''तुम नहीं जानना चाहते/अपने अँधेरे का इतिहास.....
तुम सुविधाभोगी हो गए हो...../जो तुम्हारे/अधोपतन की पहचान है''।[१]

आज के नेता लोग जो कुछ कहते हैं वो करते नहीं। सिर्फ लोगों की आँखों में धूल डालने केलिए बोलते हैं। इस प्रकार सांस्कृतिक राष्ट्रवाद कहते नेता पर कवि सुदेश तनवर 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' नामक कविता में लिखते हैं-

''स्वतंत्रता के छद्म/आदोलन में।
बन बैठोगे/एक बार फिर/महान देशभक्त/राष्ट्र के शुभचिंतक''![२]

हमारा देश लोकतांत्रिक है, दलित अपने बीच में से नेता को चुनना चाहता है। दलित वर्ग का मानना है कि हमारे स्वप्नों को वही व्यक्ति साकार कर सकता है, जो हमारे बीच से ही चुनकर संसद में गया है। बहुत से दलित नेताओं को दलित वर्ग में चुनकर संसद और विधानसभाओं में भेज दिया लेकिन उनमें से अधिकांश केवल अपने व्यक्तिगत स्वप्नों को ही साकार करने में लग गए हैं। फिर भी कवि विश्वास व्यक्त करते हैं कि दलितों की समस्याओं को कोई दलित ही सुलझा सकता है। सी.बी. भारती लिखते हैं-

''खड़े किए हैं हमने भी अपने सपनों के महल
अपने नुमाइंदों के कन्धों पर/जो उपजे हैं हमारे बीच से ही
चुनेंगे उन्ही ही हम अब अपना रहनुमा''।[३]

---

१ डॉ. कुसुम वियोगी, *टुकड़े टुकडे दंश*, पृ. ९६.

२ विमल थोरात, सूरज बडत्या, *भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर*, पृ. ६६.

३ डॉ. सी. बी. भारती, *आक्रोश,* पृ. ५४.

जिस संसद में दलित वर्ग चुनकर लोकतांत्रिक प्रणाली से अपने नेताओं को भेजते हैं, वे संसद के अंदर पहूँचकर केवल अपने व्यक्तिगत कार्य ही करते हैं और संसद के बाहर जो, दलित वर्ग जब निराश हो जाता है। कवि वरठे लिखते हैं-

''कभी-कभी सोचता हूँ/क्यों नहीं मेरे हाथ बन्दूक बन पाए?
क्यों नहीं मेरी आँखे मशालें बनीं?
..... और, क्यों नहीं मैं नहीं मैं ज्वालामुखी बनकर /फट पड़ा''।[१]

आज धर्म के नाम पर मनुष्य की मनुष्यता कुचल रहा है, अपने पैरों तले रौंद रहा है। 'मनुष्यता' नामक कविता में सांम्प्रदायिकता की समस्या का चित्रण कवि ने इस प्रकार किया है-

''फाँसीवादी ताकतें/धर्म के नाम पर
मनुष्यता को कुचल रही हैं/यह सब उस देश में हो रहा है
जो मनुष्यता को/सबसे बड़ा धर्म कहता है''।[२]

दलित वर्ग को नेता लोग हर चुनाव में झूठा आश्वासन देते हैं, कि रोटी, कपड़ा और मकान की समस्या का समाधान कर दिया जाएगा। अपने चारों ओर स्वतंत्रता का राग सुनकर दलित वर्ग को लगता है ये कैसी स्वतंत्रता है? न खाने को खाना है न पहनने को कपडा न रहने को घर है? कुछ भी तो नहीं है। फिर भी उसको केवल आश्वास ही दिलाता है और कुछ नहीं। डॉ. एन सिंह लिखते हैं-

''यह स्वतन्त्रता आधा गद्दा है, आधा लिहाफ
तब उसके मन में उभरता है- एक प्रश्न!

---

१ डॉ. चन्दुकुमार वरठे, *अनाम वस्तियों के देश में*, पृ. ५.

२ जयप्रकाश कर्दम, *तिनका तिनका आग*, पृ.१७

क्या यही स्वतंत्रता है?/इसे मैं ओढ़ूँ या बिछाऊँ''?[१]

सभ्य और ऊँचे लोग दलित वर्ग को वोट-बैंक मानते हैं और जब चुनाव आता है तब दलितों का इस्तेमाल करते हैं। मनोज सोनकर 'घुरछू का घोषणा-पत्र' कविता में लिखते हैं-

चुनाव के समय/हम 'बेअरट चेक' हो जाते हैं
और उसके बाद कूड़ेदान''[२]

स्वतंत्र भारत में आज भी दलित परतंत्र से बदत्तर जीवन जीने को विवश है। न केवल दलितों को मताधिकार के प्रयोग से वंचित कर दिया जाता है बल्कि दलित जन प्रतिनिधियों को सार्वजनिक जीवन में भी अपमानित होना पड़ रहा है। दलित जीवन के इस सत्य का उद्‌घाटन डॉ. शत्रुघ्न कुमार ने 'स्वराज' शीर्षक कविता में विस्तार से किया है-

''परतन्त्र कोटि-कोटि दलित जन आज भी
वंचित कोटि-कोटि दलित जन/अपने हक से आज भी
बरसायी जाती लाठियाँ उन पर आज भी''।[३]

संविधान में राजनीतिक दल अपने फायदे के लिए परिवर्तन करना चाहते हैं। प्रो. दामोदर मोरे ने इसका विरोध करते हुए कहा है-

''मुझे बर्दाश्त नहीं होता भारतीय संविधान को
मनुवादियों के हाथ में देना।
मुझे बर्दाश्त नहीं होता शौतान के हाथों में

---

१ डॉ. एन. सिंह, *आज़ादी के नाम एक दिन, दर्द के दस्तावेज*, पृ. १२५.

२ मनोज सोनकर, *शोषितनामा*, पृ. २१.

३ डॉ. शत्रुघ्न कुमार, *अग्निशिखा*, पृ. ६४.

भारतीय संविधान होना''।[१]

उपर्युक्त अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि दलित हमेशा अधिकार से वंचित रहने के लिए प्रारंभ से लेकर वर्चस्ववादी राजनीति काम कर रही है। वेद काल से लेकर आज तक का घटना क्रम इसकी साक्षी है। आज का दलित; राजनीतिक अधिकार या सत्ता के प्रति जागरूक है। वह अपना हक राजनीतिक स्तर पर माँगना चाहते हैं। इसलिए दलित कविताओं के राजनीतिक स्वर में सत्ता मनुवादियों के हाथ में न देने केलिए आह्वान है। भारतीय संविधान बाबा साहब ने बनाया लेकिन वह शैतानों के हाथ में नहीं जाना चाहिए। क्योंकि दलित कवि मनुष्यता को ही सबसे ऊपर मानते हैं।

३.१.५ दलित कविता का सांस्कृतिक स्वर

भारत में अनेक सांस्कृतिक परंपराएँ रही हैं। ये परंपराएँ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित की जाती है। अर्थात परंपरा समूह विशिष्ट होती है। ये परंपराएँ कोई दैविक निर्माण नहीं; अपनी आवश्यकताओं के अनुसार तत्वों का चुनाव कर समाज उन्हें आकार देता है। यह मानव निर्मित सांस्कृतिक परंपराएँ निरंतर नई आवश्यकताओं द्वारा अनुकूलित होती रहती है। भारतीय संस्कृति में पर्याप्त विविधता है; परंपराएँ हैं; लेकिन विविधता में एकता का स्वर भी है ''इस देश में कुल ९१ सांस्कृतिक क्षेत्र (Cultural areas) है। यहाँ कोई ४६३५ समुदाय है। संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त १८ भाषाएँ और कोई १५०० बोलियाँ हैं। इस देश में ८०% लोग मांसाहारी है।''[२] भारत की एक विशेषता यह है कि यहाँ कई लोग आये और कुछ समय तक अपनी स्वतंत्र छवियाँ रखी और फिर यहाँ के मूलवासी समाज में मिल गये या मूलवासी को भगा दिए। ''आर्य, यूनान, शक्, कुषाण, आथीर, गुर्जर, हूण आदि सब भारतीय विराट परम्परा का अंश बन गया। एक ओर पुरानी छवियों का संविलयन होता रहा तो दूसरी ओर नयी स्वतंत्र छवियाँ

---

१ दामोदर मोरे, *सदियों के बहते जख्म,* पृ. ६७.

उभरती रही। जैन धर्म ने एक नयी वैचारिक भूमि प्रदान की जिस ने कई बहुमूल्य अवधारणाओं को चुनौती दी। बौद्ध मत ने एक क्रांतिकारी विचारधारा को प्रतिष्ठित किया। इस्लाम, ईसाई धर्म तथा सिख का प्रसार हुआ। लंबे समय तक इन की छवियाँ स्वतंत्र रही, आज भी है। लेकिन वे भारतीयता से पृथक नहीं, क्योंकि उनकी जडें भारतीय चिंतन की भावभूमि है''।[३] परंपरा और संस्कृति जीवन के समग्र क्रिया-कलापों की सतत सुधरते, विकसित होते रहने की प्रक्रिया हैं। ये हवा की तरह आगे बढ़ती हैं, और व्यक्ति के हाव-भाव व्यवहार में गुणात्मक रूप में ही दिखाई पड़ती हैं।

३.१.५.१ उत्तरआधुनिक संदर्भ और संस्कृति

संस्कृति को जीवन की समग्र पद्धति मानने का विचार पुराना है और ये अभिजात या प्रभुत्ववादी वर्गों की संस्कृति संबंधी विचार के निकट है। माथ्यू अरनाल्र्ड, टी. एस. इलियट आदि इसके प्रवर्तक रहे हैं। रेमण्ड विल्यमस ने Culture नामक अपने ग्रन्थ में ''मानव के परिष्कार की विशिष्ट अवस्था को संस्कृति का बुनियादी अर्थ बताया हैं और परिष्कार की प्रक्रियाओं को भी संस्कृति के अंतर्गत गिनते हैं। इन प्रक्रियाओं का जिन वस्तुओं से मदद मिलती हैं उन्हें सांस्कृतिक साधन मानते हैं। जिन्में प्रमुख है- मानव की बौद्धिक क्रियाएँ और विभिन्न कलाएँ।''[१] इ. पी. तोम्सन का विचार यह है कि ''वर्ग समाज में संस्कृति जीवन की समग्र पद्धति के बदले संघर्ष की समग्र पद्धति है।''[२] एक ओर लुसियस गोलडमान ने विभिन्न कलाओं को ''सांस्कृतिक सर्जनाएँ कहता है''[३]

---

१ Raymond Williams, 'Culture' (The fullest, most recent and integrative development of Williams Theory of Culture is expounded in his work Culture (1981).

२ E.P. Thomson, Cultural Studies

३ Lucies Goldman, *Towards a Sociology of the Novel*, I would like make a few general hypotheses. The analysis that I have just developed extends to one of the most important novel forms a statement that now seems to me to be valued for almost forms of authentic cultural creation. p. 14.

(Cultural creation) तो दूसरी ओर ग्राम्शी वर्चस्व की अवधारणा को प्रस्तुत करते हैं। समाज में संस्कृति वैसा ही आधारभूत व्यवहार है; जैसा आर्थिक या राजनीतिक व्यवहार। अन्टोणियो ग्राम्शी ने कहा कि " साहित्य के इतिहास का संस्कृति के इतिहास के अंग के रूप में अध्ययन होना चाहिए और भाषा को संस्कृति का मुख्य रूप मानना चाहिए।"[१] ग्राम्शी का ओर एक मत है कि "भाषा में समाज का अतीत मौजूद रहता है और उसका वर्तमान भी । भाषाएँ सांस्कृतिक उपज है, और जल, जीवन की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति भी है।"[२] ग्राम्शी की एक ओर विचार उल्लेखनीय है- "समाज के क्रांतिकारी परिवर्तन केलिए ये लोक मानस तथा लोक व्यवहार को समझना है; लोक मत को समझना है। आगे वे कहते हैं - प्रत्येक वर्ग का अपना लोक मत होता है (Common sense) और साधु मत भी (Good Sense) जो उसकी विश्व दृष्टि है।"[३] लोकमत के निर्माण जनता के इन्द्रिय बोध और अनुभव से बनता है। इसलिए उसमें बौद्धिक तत्वों की प्रधानता होती है। लोक मत दर्शन को लोकवृत्तांत की रचना भी करना है।

---

१ Gramsci, www.international gramcisociology.org

२ Gramsci, www.international gramcisociology.org

३ Gramsci, Joseph Francese (ed.) *Political culture and social theory,* Every social stratum has its own 'common sense' which is ultimately the most widespread conception of life and morals. Every phiolosphical current leaves a sedimentation of 'common sense' this is the document of its historical reality. Common sense is not something rigid and static; rather, it changes continuously, enriched by scientific notions and philosophical opinions which have entered into common usage. 'common sense' is the folklore of philosophy and stands midway between real 'folklore' (that is, as it is understood) and the philosophy, the science, the economics of the scholars. 'Common sense' creates the folklofe of the future, that is a more of less rigidified phase of a certain time and place, p. 124. Religion and common sense do not coinside, but religion is a compenent of disjointed common sense. There is not just one 'common sense' but it too is a product of history and a historical process. Philosophy is the critique of religion and of common sense, and it superedes them. In this respect, philosophy coincides with 'good sense', p. 131.

प्रो. अच्युतन जी का मत यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि ''ग्राम्शी का इस विचार का मूल दार्शनिक स्वरूप 'पद्धार्थ ही परमसत्य वाले' भारत के पुराने लोकायती दर्शन में ढूँढा जा सकता है जो भारत के दलित या आदिवासी समूह के सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक दृष्टि की ओर प्रकाश डालता है। वास्तव में इस तरह की जन संस्कृति के कारण ही ऐसा दार्शनिक सिद्धान्त का जन्म तथा प्रचार प्रसार अधिक मात्रा में हुआ जिसका आधार वैज्ञानिक है। भारत में राजाओं, ब्राह्मणों या वर्चस्ववादियों की परंपराएँ है तो दलित -आदिवासियों की परंपराएँ भी हैं।''[१]

इस प्रकार हमारी आस्थाएँ, विश्वास, मान्यताएँ वे चाहे अध्यात्मिक हो या अन्य जो पीढी दर पीढ़ी संस्कारों से बनती रहती हैं। इन्हीं को हम संस्कृति कहते हैं। सांस्कृतिक मूल्यों की दृष्टि से दलित कविता अपने भारतीय परिवेश की पहचान कराती है। भारत में समाज सुधार के कार्यक्रमों की लम्बी परंपरा रही हैं। पर समाज नहीं सुधरा। जब भारतीय संस्कृति की बात की जाती है तो समन्वय, बन्धुत्व और एकता की भावना को इसकी विशेषता बताया जाता है। परन्तु वास्तविकता इसके विपरीत है। सामाजिक अन्याय का शिकार बुहुसंख्यक भारत की जनता के लिए तथागतित भारतीय संस्कृति की विशेषताएं अर्थहीन हैं। प्रोफेसर शत्रुघ्न कुमार ने भारतीय समाज के इस कटु सत्य पर प्रकाश डालते हुए अपनी 'संघर्ष' शीर्षक कविता में समानता हेतु 'संघर्ष' को अनिवार्य बताया है-

''सत्य ज़रूरी असमानता मिटाने के लिए
संघर्ष ज़रूरी समानता लाने के लिए
समन्वय, मेल-मिलाप, बन्धुत्व, एकता

---

१ देशी नाट्य परंपरा और दलितों की सांस्कृतिक अस्मिता प्रपत्र, Presented by National Seminar हिन्दी विभाग, बाबासाहब डॉ. भीमराम अंबेडकर विश्वविद्यालय, औरंगाबाद, २०१६

शब्द सारे अर्थविहीन हो गये अब''।[१]

सदियों से दलितों को झूठे विश्वास, परंपरा एवं संस्कारों से सताया है, इसके खिलाफ संघर्ष की परंपरा को दलितों ने अपनाया है।

डॉ. चन्द्रकुमार वरठे 'वसन्तोत्सव' कविता में यह स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि हम और हमारी पूरी नस्ल वसन्तोत्सव और सूर्योदय आज भी इसलिए नहीं देख पा रहे हैं, क्योंकि हमारी आंखें तो पहले ही इस संस्कृति ने निकाल दी थीं। वे लिखते हैं-

''उसकी आँखें तो बहुत पहले ही/ निकाल दी गई हैं
तुम्हारे वसन्तोत्सव की संस्कृति ने/और काट दिए थे हाथ
ताकि, वे मुट्ठी, की शक्ल में खडे न हो सकें''।[२]

जयप्रकाश कर्दम 'तिनका तिनका आग' में कहते हैं- दलित समाज की प्रगति में जाति एक बाधा है। तमाम संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद भारतीय संस्था के सांस्कृतिक मूल्य और जीवन संस्कार दलित व्यक्ति के जाति आधारित शोषण को बरकरार रखे हुए हैं-

''सदियों से वे हमसे
गाली की भाषा में बोलते आ रहे हैं/यह उनकी संस्कृति हैं।''[३]

जब हम भारतीय संस्कृति की प्रशंसा करते हैं तो हम भूल जाते हैं कि यहाँ अस्सी प्रतिशत दलित वर्ग हैं। सामाजिक संरचना ने उसकी संस्कृति कुत्ते से भी बदत्तर बनाया है। कवि अमराव सिंह जाटव लिखते हैं-

---

१ डॉ. शत्रुघ्न कुमार, *अग्निशिखा,* पृ. ३१.

२ डॉ. चन्द्रकुमार बरठे, *अधूरी चिट्टि रोशनी की,* पृ. ३३.

३ डॉ. जयप्रकाश कर्दम (सं), *दलित साहित्य वार्षिकी,* २००४, पृ. १९७.

''अपनी फूहड़ और बेरहम संस्कृति को
ढोल बजा कर/स्वर्णीय बता कर
दलितों, दासों के खून से सींचता इंसान/कैसा बेशर्म इंसान है यह!''।[१]

भारतीय संस्कृति अत्यधिक मूल्यवान है। लेकिन इस संस्कृति में दलितों के श्रम का कोई मूल्य नहीं के बराबर है। दिन-भर काम करने पर भी अपनी पत्नी और बच्चों की भूख मिटा नहीं सकता। सूरजपाल चौहान 'भारतीय संस्कृति' नामक कविता में लिखते हैं-

''भारतीय संस्कृति/ क्या यही मूल्य है
मेरे हाड़ तोड़ श्रम का''।[२]

कर्मशील भारती अपनी कविता 'मजूरन' में सामाजिक परिवेश और मजूरन की ईमानदार मेहनत की तुलना करते हुए कटु सत्य का चित्रण करते हैं- मजूरन जो हर दिन सुबह होने से पहले ही अपने कन्धे पर झोली लटकाए तथा पीठ पर बच्चे को बाँधकर इधर-उधर लोहा बीनती है.. लेकिन वह उदास नहीं है न अपनी मेहनत के प्रति, न भविष्य के प्रति । कर्मशील भारती लिखते हैं-

''वह आश्वस्त है अपने कल के लिए
जो लटका है उसकी पीठ पर।
भयभीत भी नहीं है वर्तमान से
पश है जो चारपाई पर/उसके घर अपाहिज''[३]

---

१ विमल थोरात, सूरज बडत्या, *भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर*, पृ. ८१.

२ सूरजपाल चौहान, *कब होगी बह भोर*, पृ. ५५.

३ कर्मशील भारती, *कमल को दर्द कहने दो,* पृ. ९.

हिन्दू संस्कृति में दलितों का कोई महत्व स्थान नहीं हैं। यह संस्कृति हर क्षण दलितों को आघात पहुँचाती है। 'दलित तुझे'. कविता में रजनी तिलक लिखती हैं-

''हिन्दू संस्कृति के लंबे दाँत,
हर क्षण तेरा लहू पी रहे हैं,
हिन्दुत्व की पाशाविक प्रवृत्ति पर,
एक दिन हल्ला बोलना होगा।''[१]

भारतीय संस्कार में अछूतों के लिए कोई स्थान नहीं है। उन्हें गाँव के बाहर थोडी सी जगह दे दिया है। मनुष्य होने पर भी अमानविक प्रवृत्ति ही हमारे संस्कार ने उन्हें दिया है। इस संस्कार के नामकरण पर कवि असंगघोष 'नामकरण संस्कार' नामक कविता में व्यक्त करते हैं-

''जिसका नामकरण/अपनी कुटिल बुद्धि से तूने
चमरोटी/मोचीवाड़ा कर दिया
वाह रे तथाकथित नियंता/क्या गजब का है
तेरा यह नामकरण संस्कार''।[२]

सामाजिक मेल-जोल के होली, दीपावली जैसे त्यौहार दलितों के लिए एक समस्या बन जाती है। कवि मंसाराम विद्रोही इस त्यौहार का चित्रण इस प्रकार करते हैं-

''फागुन के महीने में मटरा मसूर उठ
कच्चा-पक्का जौ कट, थोड़ा सा अनाज आ''।[३]

---

१ रजनी तिलक, *पदचाप,* पृ. ३६.

२ असंघोष, *हम गवाही देंगे, पृ.* ७६.

३ मांसाराम विद्रोही, *दलित मंजरी*, पृ. ४०.

भारतीय संस्कृति में करवा चौथ का महत्वपूर्ण स्थान है। पति की पूजा और भक्ति के लिए पत्नी करवा चौथ का व्रत रखती है। समाज में फैले इस अंधविश्वास का खंण्डन करते हैं । डॉ. शत्रुघ्न कुमार 'करवा चौथ' कविता के ज़रिए। वे कहते हैं कि अगर पति पत्नी के बीच सच्चा प्यार, विश्वास और सम्मान का अभाव है तो इस प्रकार का व्रत रखने से क्या फायदा? वे लिखते हैं-

''हो पति-पत्नी में प्यार, विश्वास/आदर-सम्मान एक-दूजे केलिए
तो है असली करवाचौथ नित दिन''।[१]

'जाति' नामक कविता में कवि ओमप्रकाश 'जाति' शब्द को एक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के अंदर रखते हैं। मानव और जाति का जो अटूट संबन्ध है उसकी ओर उन्होंने इशारा किया है-

''जाति आदिम सभ्यता का/नुकीला औजार है
जो सड़क चलते आदमी को/कर देता है छलनी
एक तुम हो/जो अभी तक चिपके हो जाति से''।[२]

उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि भारतीय संस्कृति में विशेषकर हिन्दू संस्कृति में दलितों को कोई स्थान नहीं दिया है। इन्हें अछूत-अस्पृश्य के रूप में ही देखा है; मनुष्य के रूप में नहीं।

३.१.५.१ परंपरा और मूल्य तथा इतिहास बोध

आज के उत्तराधुनिक संदर्भ में हमारे सामने प्रश्न यह है कि भारतीय परंपरा का ऐसा विवेकसम्मत प्रतिरूप कैसे विकसित करे जो इतिहास दृष्टि की स्वीकृति हो। आज

---

१ डॉ. शत्रुघ्न कुमार, *अग्निशिखा*, पृ. १५२.

२ ओमप्रकाश वाल्मीकि, *अब ओर नहीं,* पृ. २०.

के वैचारिक पर्यावरण में परंपरा, संस्कृति जातीय भावना आदि का महत्व है। परंपरा की पुनर्रचना निरतंर होती रहती है। परंपरा का आधार लोक भी है शास्त्र भी है। लोक परंपरा ही शास्त्र परंपरा का आधार है। परंपरा बनी बनायी नहीं बल्कि उसका क्रमिक विकास होता रहता है। भारतीय परंपरा को वेद -पुराण और शास्त्रों से जोडने की प्रवृत्ति सशक्त रही है। उल्लेखनीय बात है कि इन परंपराओं के अतिरिक्त स्वतंत्र जन -जाति या क्षेत्रीय परंपराएँ भी इस देश में विद्यमान थी। धर्म निरपेक्ष परंपराएँ इस देश में विकसित हुई है। अतः स्वाभाविक रूप से ये स्वतंत्र परंपराएँ शताब्दियों से पोषित हमारी मुख्यधारा परंपरा, संस्कृति, इतिहास संबन्धी अवधारणाओं का खंण्डन करती हैं। क्षेत्रीय एवं जानजाती परंपराएँ सशक्त रही हैं। उनके अलग इतिहास एवं पहचान भी थी। परंपरा का सम्मान उसमें था लेकिन साथ-साथ कालांतर में विद्रोह एवं विरोध की परंपराएँ विकिसित होती रही। जिनसे भारतीय समाज को नई दिशा और गति मिली। संस्कृति का पूरा महल ऐतिहासिक संदर्भों से निर्मित होता है। जातीय भावना अपने मूल अर्थ में पहले विशिष्ट नृवंशीय शाखाओं से जुडे संवेदनात्मक लगाव को कहा जाता था। लेकिन आज उसमें क्षेत्रीय भाषिक, तथा सांस्कृतिक तत्व भी मिल गये हैं। फलस्वरूप जाति भावना की व्याख्या गौरव पूर्ण बन गया है। अतः विद्वानों की मान्यता यह है कि परंपरा संस्कृति मूल्य और जातीय भावना एक तरह से मानसिक पुनर्रचनाएँ होती है। जब इस तरह की पुनर्रचनाओं की प्रक्रिया ज्ञात, सामाजिक तथ्यों और ऐतिहासिक यथार्थ से कटकर नये मिथक और प्रतीकों को अपना लेती हैं तो उस पर भी ज़रूर विचार करना चाहिए। ऐसी एक दृष्टि विशेषकर आधुनिक संदर्भ में दलित कविता के वस्तु और शिल्प में देख सकते हैं।

दलित साहित्य उन सब अंधविश्वासों, विकृत परम्पराओं, भाग्यवादी सोच तथा ईश्वरीय चमत्कार का विरोधी है । विकृत परंपराओं को इंगित करते हुए 'रामभरत पासी' कहते हैं-

''उन सड़ी-गली परंपराओं को/समय रहते दबा दो
मिट्टी में गहरे बदबू फैलाने से पहले/किसी लाश की तरह''[१]

'माटी के पूत' हरनोटिया का काव्य संग्रह है, माटि के पूत आज़ादी चाहते हैं। क्योंकि स्वातंत्र्य संग्राम में दलितों का बलिदान महत्वपूर्ण रहा है। अंग्रेज़ों की गुलामी से भारत देश तो आज़ाद हो गया पर आज़ादी के साठ साल बाद भी दलित-मजदूर सवर्णों की गुलामी में जी रहे हैं। कवि कहते हैं कि दलित भी आज़ाद रहना तथा समता-भाईचारे की किरण देखना चाहते हैं। वे सामाजिक सम्मान व अधिकार चाहते हैं ऐसा नहीं हुआ तो मजबूर होकर पुरानी परंपराओं को तोड देना चाहते हैं-

''अधिक पैदावार बढा
तोड़ने पुरानी परिपाटी को उसके हथौंडे की चोट
तोड़ देगी असमानता दीवार को''।[२]

दलित कवि इतिहास को स्वीकार नहीं करता क्योंकि उसका अतीत में सुख नहीं पीड़ा और यातनाएं मिलती हैं। दलित कवि उस इतिहास का विरोध करते हुए कहते हैं कि यह इतिहास ही झूठा है, जिसे सवर्णों ने अपने स्वार्थ के लिए उनके अनुकूल रचा है। इतिहास में दलितों को पशुता से कैसे रौंदा गया इसका चित्रण मलखान सिंह अपना 'आखिरी जंग' शीर्षक कविता में कहते हैं-

''ओ परमेश्वर! कितनी पशुता से रौंदा है हमें
तेरे इतिहास ने/ देख, हमारे चेहरों को देख
भूख की मार के निशान/साफ दिखाई देंगे तुझे''[३]

---

१ रमणिका गुप्ता, *दलित चेतना*, पृ. ३०.

२ जसराम हरनोटिया, *माटि के पूत,* पृ. ४.

३ कंवल भारती, दलित निर्वाचित कविताएँ, पृ. ४१.

दलित कवि परम्परा का विरोध करता है। कट्टरपंथी हिन्दुओं द्वारा दलितों को हज़ारों वर्षों से निरंतर प्रताडित करना, उनका आर्थिक एवं सामाजिक शोषण करना, उनके साथ अस्पृश्यता का व्यवहार करने की परम्परा रही है। आज भी कई दलित शम्बूकों की गर्दन सवर्ण काटते हैं। डॉ.जयप्रकाश कर्दम अपनी 'मेरे अधिकार कहाँ है' शीर्षक कविता में कहते हैं-

''सदियों से शम्बूकों की/ गर्दन कटने की परम्परा
इस देश-धरा से उठ जाए
इस आशय का स्वीकार कहाँ है''?।[१]

सामाजिक रूढियाँ सामाजिक संरचना के चारों ओर ऊँच-नीच का भाव पैदा करती हैं। इसलिए दलित कविता ने इन रूढ़ परंपराओं को समाप्त करने का संकल्प लिया है। कवि कहते हैं-

''अरे, नेपथ में कोई है/ जो सूरज ले आए मंच पर''।[२]

पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी लिखते हैं -

''सदियों के मोह-राग-विराग/और भाग्य, भय, भगवान की धारणा
पुराने कपड़ों की तरह तो उतारे नहीं जा सकते/ये वे नश्वर हैं
जो जान पर झेलकर/जीए जाते हैं।''[३]

कवि लक्षमीनारायण सुधाकर जाति-विहीन व्यवस्था की परिकल्पना करते हैं और मनुस्मृति की परंपरा को विस्मृत कर देना चाहते हैं-

---

१ जयप्रकाश कर्दम, गूँगा नहीं था मैं, पृ. ४६

२ डॉ. देवेन्द्र दीपक, *हम बौने नहीं,* पृ. ४०.

३ डॉ. पुरुषोत्तम सत्प्रेमी, *मूक माटी की भूखरता,* पृ. २८.

''विस्मृत हो मन से मनुस्मृति सामाजिक आजादी आए।
फिर जाति-विहीन व्यवस्था का निरछल समाज हो भारत में।''[१]

डॉ. भारती दलित कविता के द्वारा मनुष्यता का विरोध करने वाली हर प्रथा को तोड़ देना चाहता है-

''लाजमी है कि थूकें/उस प्रथा पर
करती है जो, मनुष्यता का विरोध/
जो तोड़ती हो मनुष्यता के रिश्ते को''।[२]

कवि सुदेश तनवर 'मैं और वे' कविता के ज़रिए भगवान पर सवाल लगाते हैं । सवर्ण लोग भगवान के गुणगान करते हैं तो दलित लोग सदियों से झेल रहे अनुभव के तीष्णता व्यक्त करते हैं-

''उनकी जातीय नशे में चमकती आँखें/मेरा
फेंके गुए 'तेजाब' से झूलसा मुँह।
वे कहते/भगवान की महिमा/मै कहता/सदियों की साजिश''।[३]

दलित वर्ग को शोषण से मुक्ति दिलाने के लिए रूढ़ परम्पराओं का विसर्जन करना होगा क्योंकि ये शोषण का एक महत्वपूर्ण अस्त्र रहा है। 'परंपरा के विसर्जन' नामक कविता में डॉ. कुसुम वियोगी लिखते हैं -

''करना चाहता हूँ विसर्जन
रूढिवादी पंरपराओं का/तेरी ही पावन गंगा में''।[४]

---

१ रामचन्द्र चदुर्वेदी, बीसवीं सदी की हिन्दी दलित कविता, पृ. ९९.

२ सी. बी. भारती, *आक्रोश*, पृ. २४

३ विमल थोरात, सूरज बडत्या, भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर, पृ. ६५.

४ डॉ. कुसुम वोयोगी, *टुकडे, टुकडे दंश*, पृ. ६२.

सूरजपाल चौहान 'क्यों विश्वास करुँ' शीर्षक कविता में दलितों के प्रति गैर दलितों के विश्वासघात की परंपरा को इस प्रकार व्यक्त करते हैं-

''तुम्हारे-दिलों में भरी हैं कलुषता
और ओछी प्रतिद्वन्द्विता/फिर भला मैं/कैसे विश्वास करुँ
तुम्हारी सहिष्णुता/एवं भाईचारे की भावना पर''।[१]

नवेंदु महर्षि की 'शूद्र कहने भर के लिए हिन्दू है' नामक कविता में कवि ने हिन्दू धर्म की परंपरा पर प्रहार किया है। दलित होने के कारण सदियों से इन्हें सवर्ण वर्ग मानता ही नहीं, एसे लोगों को जीने के लिए एक कोना तक नहीं के बराबर हैं। कवि लिखते हैं-

''यानी कि/क्या कहीं कोई
एक भी ऐसा बिंदु है/ जिससे कि यह सिद्ध
होता हो/कि शूद्र भी हिन्दु हैं,''[२]

साहित्य का एक मूल्यवान खजाना है इतिहास। सूरजपाल चौहान ने 'नकारता हूँ तुम्हारे इतिहास को' नामक कविता में इतिहास पर प्रहार किया है। इतिहास में तो केवल सवर्णों का वर्णन है। दलितों के जीवन, श्रम और पीड़ा आदि का कोई स्थान नहीं है। जो इतिहास यथार्थ नहीं है उसका स्वीकार कैसे करुँ। वे लिखते हैं-

''नहीं मानता/तुम्हारे/इतिहास को अपना इतिहास
क्योकिं/तुमने लिखी ही नहीं गाथाएँ/ मेरे पुरखों की।''[३]

---

१ सूरजपाल चौहान, *क्यों विश्वास करुँ,* पृ. २६.

२ नवेन्दु महर्षी, *दलित पताका,* पृ.१८.

३ सूरजपाल चौहान, *कब होगी वह भोर,* पृ. ६९.

सतनाम सिंह 'भाग्य और भगवान की अफीम' नामक कविता में शिक्षा एवं जीवन के मूल्य की चेतना देकर हमें जागृत करते हुए कहते हैं -

"मैं आया हूँ /होश में
मेरी कलम/धार्मिक अफीम की इस खेती को
अमानवीय बता रही है
वे मुझे/ सिरफिरा और बागी बता रहे हैं।"[१]

जयप्रकाश कर्दम 'सत्य' नामक कविता में मानव का मूल्य जो सत्य पर आधारित है। इसका उद्‌घाटन करते हैं। ऐसा भी मनुष्य है जो सत्य देखने, सत्य सुनने, सत्य बोलने पर भी हिचकते हैं और बोलने वालों को अनदेखा करते हैं। निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं-

"जो सत्य को नहीं रहने देते सत्य
उसके साथ बलात्कार कर
तार-तार करते हैं
सत्य के आवरण में/ असत्य के मूल है
मनुष्य की आँखों में धूल हैं।"[२]

मोहनदास नैमिशराय 'पहाड़ तुम कब बदलोंगें' नामक कविता में कवि ने दलितों को पहाड़ से तुलना की है। परंपरा से वे जंगल, जल, धरती आदि का संरक्षक हैं फिर भी हम उसको पीड़ा देते हैं। उनके जीवन के आधार एवं मूल्य पहाड़ ही है। वे लिखते हैं-

"तुम्हारी छाती को रौंदते हुए
हज़ारों लोग/प्रतिदिन तुम पर चढ़ते हैं

---

१ विमल थोरात्, सूरज बडत्या, भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर, पृ.९३.

२ जयप्रकाश कर्दम, *बस्तियों से बाहर,* पृ. २४.

और जख्म देकर उतर जाते हैं/पहाड़ तुम कब बदलोगे''?[१]

'चोरी' नामक कविता में रजनी तिलक ने नारी की स्थिति को व्यक्त किया है। संस्कृति संपन्न राष्ट्र भारत में नारी की अवस्था दासी के समान है। वह संस्कृति के मूल्यों को ढोलती रही है। अब वह वजूद को ढूँढ़ रही है-

''हज़ारों हजार नाम में धरी
असंख्य उपमाओं से सजी स्त्री
ढूँढ़ रही है वजूद कि/खुद को पहचान सके''।[२]

हरनोटिया की 'मत छोडो इन दलितों को' शीर्षक कविता में दलितों का समतावादी स्वर, स्वाभिमान और रक्षक रूप को अंकित किया गया है। कवि ने दलित वर्ग के मूल्य को समझाया है-

''मत छोड़ो इन दलितों को/ये राष्ट्र के सिपाही भी हैं।
आये आँच देश पर अगर
शत्रु के लिए तबाही भी हैं।''[३]

डॉ. बाब साहब अम्बेडकर ने अंधविश्वास, विकृत रूढियों, परंपराओं, धर्म, देव-देवताओं, आडंबरों, भगवान, भाग्य, पुर्नजन्म का फल इन सबको नकारा और अवैज्ञानिक सोच तथा ईश्वर में अंध-आस्था को भी नकारा। जो मनुष्य को बर्बरता की हद तक पहुँचा देती रही है। इसका उन्होंने तार्किक एवं वैज्ञानिक ढंग से खंडन किया। इसी से दलित समाज एक विचारवान, तर्कशील मनुष्य बन सकता है। मोहनदास नैमिशराय के शब्दों में-

---

१ मोहनदास नैमिशराय, *आग और आंदोलन,* पृ. ६०.

२ रजनी तिलक, *पदचाप,* पृ. ९.

३ हरनोटिया, *माटी के पूत,* पृ. १०९.

''ईश्वर की मौत उस पल होती है/ जब मेरे भीतर उठता है सवाल
ईश्वर का जन्म/किस माँ की कोख से हुआ
ईश्वर का बाप कौन?''[१]

डॉ. राजपाल सिंह 'राज' भाग्यवाद को एक बंन्धन और दुःखों का मूल मानते हैं-

''रोटियाँ महँगीं मनुज के प्राण से,
ओट में भगवान के दानव पता।
क्रूर धार्मिक दोग ने जग को छला।
भाग्य रेखा से मनुज बँधता रहा''।[२]

धर्म के ठेकेदारों और सवर्णों ने दलितों को हमेशा यह समझाते और विश्वास दिलाते आ रहे हैं कि ईश्वर है। अब दलितों के सामने यह सवाल खड़ा हो जाता है कि अगर ईश्वर की इच्छा और आदेश के बिना पत्ता तक नहीं हिलता, तो क्या दलितों पर आज तक जो अन्याय और अत्याचार हो रहे हैं, उसका कारण भी ईश्वर ही हैं? अगर ईश्वर होता तो अन्याय क्यों करता ? इसलिए दलित ईश्वर के अस्तित्व को नकारता है। जयप्रकाश कर्दम 'शुक है तू नहीं है' शीर्षक कविता में कहते हैं-

''तेरी इच्छा के बिना/ पत्ता तक नहीं हिल सकता
यानी दुनिया में अच्छा-बुरा/ जो कुछ भी होता है
उस सबका कारण तू है''।[३]

मूर्ति और मंदिर ही नहीं ऐसे बहुत सारी वस्तुएँ हैं, समाज में जिसका निर्माता खुद दलित है। किन्तु बाद में उसे स्पर्श करने का और भोगने का अधिकार इसे नहीं है।

---

१ पुन्नी सिंह (सं), *भारतीय दलित साहित्य परिप्रेष्य,* पृ. ३३३.

२ डॉ. कालीचनरण स्नेही, *दलित विमर्श और हिन्दी दलित काव्य*, पृ. ३६.

३ जयप्रकाश कर्दम, *गूँगा नहीं था मैं,* पृ. ३५.

ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी 'तुम्हारी गौरव गाथा' शीर्षक कविता में उन मूर्ति रूपी देवों से सवाल पूछते हैं कि इतना अन्याय देख कर भी तुम्हारी आस्था क्यों जागृत नहीं होती-

''क्यों नहीं जागती आस्था/देवों की पाषाण मूर्तियाँ
जो गढी है मैंने ही/ छैनी-हथौडे के सधे वार से''

दलित कविता के कवियों ने धार्मिक रूढियों पर प्रहार करते हुए दलितों की स्थिति को व्यक्त किया है। उस बिडम्बना को बताया है जहाँ गाय को पूजा जाता है और आदमी को कुचला जाता है-

''तुम उदार थे/गाय के प्रति
और हम थे आदमी की शक्ल में निरे गाय
हमने दिया दूध खाय घास फूँस और दीं/अपनी संतानों बैल बनने के लिए
और तुम स्वामी अनुदार स्वार्थी ढोंगी अपार''[१]

सुशीला टाकभौरे दलित वर्ग में साहस के अभाव की बात करती हैं। रूढियों को तोड़ने के लिए सक्त प्रयास की आवश्यकता है। वह निरन्तरता दलित वर्ग को जारी रखनी होगी तभी सफलता प्राप्त होगी-

''रूढ़ियों को तोड़ने की बात/हम करते अवश्य हैं
पर उस लहर की तरह नहीं
जो सागर तट को हर क्षण/काटती रहती है''।[२]

---

१ श्यौराज सिंह बेचैन, *क्रौंच हूँ मैं,* पृ. ३०.

२ सुशीला टाकभौरे, *साहस, चेतना के स्वर*, पृ. ५०.

दलित वर्ग में व्याप्त अंधविश्वास और रूढ़ मान्यताओं पर डॉ. चन्द्रकुमार वरठे प्रहार करते हुए धर्म के नाम पर फैले पाखण्ड, पत्थर-पूजा, पण्डों और कर्मकाण्डों की धज्जियाँ उडाते हुए लिखते हैं-

".....पत्थरों के सामने साष्ट्रांग दण्डवत् करती है
नाक रगड़ती और नंगी होकर
औलाद की कामना करती औरतों को
आदमी-मर्द नज़र आंते हैं नपुसंक"[१]

धर्म के नाम पर होने वाले अंधविश्वास, जाति-पांति, साम्प्रदायिक विषमताओं पर प्रहार करते हुए वैज्ञानिक धरातल पर आधारित यथार्थ समाज की सभ्यता पर विचार-विमर्श करता है। धार्मिक अनुष्ठानों का खंडन करते हुए तथा वैज्ञानिक अधिकार पर व्याख्या करते हुए ईश गंगानिया लिखते हैं कि-

"दलित शोषितों को/अपना गुलाम बना लिया
यह ढोंग अब ज्यादा नहीं चलेगा
वेद स्मृतियों का कूड़ा करकट
अब धू-धू जलेगा"।[२]

कवि अरुण कुमार गौतम सवर्णों से पूछते हैं- कब तक तुम देवी-देवताओं के अंधविश्वास फैलाओगे, अब उन्हें भी सच्चाई पर डर आ गया है। 'पच्चास साल' नामक कविता में वे लिखते हैं-

"कब तक फैलाओगे देवी-देवताओ के/नाम पर अंधविश्वास

---

१ डॉ. चन्द्रकुमार वारठे, *अनाम बस्तियों के देश में,* पृ.६.

२ इंशा कुमार गंगानिया, *हार नहीं मानूँगा,* पृ. १७.

बुद्ध, कबीर, रैदास, बाबा से डरते/तुम्हारे भगवान आपने देखा नहीं''[१]

ईश्वर का खंडन करते हुए असंगघोष 'कहाँ हो ईश्वर' नामक कविता में ईश्वर के वास-स्थान पर प्रश्न चिह्न लगाते हुए लिखते हैं-

''ईश्वर !तू है तो,/ है कहाँ?
स्वाद लोलुपों की जिह्वा पर/भव्य प्रसादों में बैठें
कपटी बामनों/धन्ना सेठों की तोंद मे या''[२]

'आखिर क्यों' नामक कविता में असंगघोष कहते हैं कि शास्त्रधारित भगवान मनुवाद को स्थापित करने के लिए हमारे साथ युद्ध के लिए सदा तैयार हैं-

''शिखाधारियों के षड़यंत्रों को रोकते
दलितों पर होते दमन को थामते
शास्त्रधारी पत्थरदिल भगवान''।[३]

दलित वर्ग धर्मग्रन्थ का बोझ ठुकराकर मुक्ति का गीत गाना चाहते हैं। वर्ण, जाति, उच्च, नीचता, छुआछूत की जड़ धर्मग्रंथ हैं। इसलिए मनुस्मृति को जलाया गया। प्रो. दामोदर मोरे धर्म ग्रन्थों का खंडन करते हुए लिखते हैं-

''यदा यदा हि धर्मस्य-
इसका बोझ ढोते सदियाँ गयीं
फेंक देंगे अभी हम/अब गायेंगे मुक्तिगान''।[४]

---

१ रमणिका गुप्ता (सं), *दलित चेतना*, पृ. ८३.

२ असंगघोष, *हम गवाही देंगे,* पृ. ४६.

३ असंगघोष, *खामोश नहीं हूँ मैं,* पृ. ३५.

४ प्रो. दामोदर मोरे, सदियों से बहते जख्म, पृ.

सोहनपाल सुमनाक्षर 'पूर्वजन्म का ढकोसला' कविता में दलित समाज में व्याप्त अधंविश्वास को यूँ व्यक्त करते हैं-

"मेरे परदादा मर गये जूठन खाते/उतरे चिथडे पहनते
खेत बोते-जोलते/इसे पूर्ण-जन्मों का कल मानते-मानते
और जमींदार/फूलता गया/फलता गया
जमींदार का वंश/बढता गया/ आकाश बेल की तरह
इनका खून चूसने-चूसते/धर्म का भय दिखाकर
नीच कर्मों का फल बताकर.....
पर/अब मैं पूर्ण जन्म नहीं वर्तमान देखता हुँ।"[१]

कंवल भारती धार्मिक शास्त्रों और वेदों की अतार्किक उक्तियों को चुनौती देते हुए सवर्ण समाज से पूछते हैं-

"यदि वेदों में लिखा होता
ब्राह्मण ब्रह्मा के पैर से हुए पैदा
उन्हें उपनयन का अधिकार नहीं
तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती?"[२]

ओमप्रकाश डगाले कहते हैं कि यहाँ राक्षस से नहीं, देवताओं से डर लगता है। जितना हथियार देवताओं के चित्र में हैं, उतना अन्य किसी के पास नहीं है। हिन्दु धर्म की धार्मिक भावना डरावनी है-

---

१ सोहनपाल सुमनाक्षर, *अंधा समाज बहरे लोग*, पृ. १७-१८

२ कंवल भारती, *तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती,* पृ. १३.

''मेरी स्मृति में/राक्षस नहीं
डरावने देवता है/ जो चैन से सोने नहीं देते मुझे''[१]

लक्ष्मी नारायण सुधाकर दलितों को स्वाभिमान और सम्मान जगाते हुए कहते हैं कि अंधविश्वास और अशिक्षा ही तुम्हे दलित बनाए है इन कमज़ोरियों का त्याग करो-

'घोर अंधविश्वास-अशिक्षा पिछड़ेपन की जड़ है।
शासन सत्ता पर सश्य जगत की ढीली अभी पकड़ है।
'हरिजन-गिरिजन' शब्द जाल की जला रही हैं ज्वाला''।[२]

दलित कविता सन्देश देती है कि रूढ़ियों को तोड़ दो जो तुम्हारे मार्ग में अवरोधक बन के खडी है। 'पत्थर देवता' नामक कविता में कवयित्री ने हिन्दू विश्वास, और आचारों पर छोट पहुँचाया है। अपने को जाग्रत करते हुए कहती है-

''हे देव मुझे नहीं चाहिए
तुम्हारे इस भव्य मंदिर में प्रवेश
नहीं चाहिए तुम्हारा दर्शन और प्रसाद/क्योंकि
तुम पत्थरों की/ इस सुंदर इमारत में रखे
गढ़े हुए पत्थर हो और मैं पत्थरों के बीच/ पत्थर नहीं होना चाहती''।[३]

दलित कविता का सांस्कृतिक एवं परंपरा का स्वर इतना तीव्र है कि इसे दलित कविता से अलग नहीं किया जा सकता। दलित कविता समाज में प्रचलित झूठी परंपरा एवं अंधविश्वासों का विरोध करते हुए दलितों को अपनी संस्कृति एवं इतिहासबोध से

---

१ डॉ. धीरजभाई वणकर, *दलित विमर्श*, पृ. २९.

२ लक्ष्मीनारायण सुधाकर, *उत्पीड़न की यात्रा,* पृ. २९-३०.

३ पूनम तुषामड़, *माँ मुझे मत दो*, पृ. ४५.

अवगत कराते हैं। समाजशास्त्रीय अध्ययन से इसकी वास्तविकता को जानने की कोशिश की है।

३.१.६ दलित कविता में नारी

पुरुष और स्त्री समाज निर्माण के दो परस्पर पूरक तत्व है। वेदों में स्त्री देवी, काली, सर्वजननी माता, जगत परिपालिका तथा पुरुष के अर्धांगिनी है। भारत के इतिहास में ऐसा भी एक समय था जहाँ नारी को महत्वपूर्ण स्थान दिये जाते थे। सामाजिक बदलाव के साथ साथ स्त्रियों की सामाजिक स्थितियों में भी बदलाव आने लगे। उन्हें चार दीवारों में बंध करके तथा शिक्षा से वंचित कराने लगे। वे केवल भोग की वस्तु बन गयी थी। जाति के आधार पर स्त्रियों में भी भेद-भाव होने लगे। विशेषकर दलित स्त्रियो के ऊपर हो रहे अत्याचारों में कोई कमी नहीं हैं। दलित कविता के समाजशास्त्रीय अध्ययन से नारी मुक्ति, नारी आंदोलन, नारी सशक्तीकरण, विशेषकर दलित स्त्रियों की समानता और न्याय की पुकार आदि का विश्लेषण कर सकते हैं।

पश्चिम में नारी मुक्ति आंदोलन की शुरुआत सर्वप्रथम अठारहवीं शताब्दी में हुई थी। 'मेरी वाल स्टोल क्राफट' ने इंग्लैण्ड में नारी के अधिकारों के लिए आवाज़ उठाई थी। 'पलोरा ट्रिस्टन' ने महिला संगठन की स्थापना की। जान स्टुअर्ड मिल (१८०६-१८७३) ने इंग्लैण्ड में अपनी पुस्तक 'द सब्जेक्शन आफ विमन' द्वारा नारी मुक्ति और अधिकारों केलिए आवाज़ उठाया। बाद में इस तरह सामाजिक आंदोलनों से प्रेरणा पाकर नारी सहित्यिक आंदोलन की शुरुआत हुई। इसके ज़रिए कुछ पुस्तकें प्रकाशित हो चुके है। Simon De Bavour 'The Second sex' (1949), Virginia Woolf 'A room of one's own' (1929), Germaine greor 'The Female Eunuch (1970), The whole Women (1999), Mary wolfstonecraft 'The vindication of the Right of women with structury on Political and moral subjects' (1792) जैसी पुस्तकें नारी के जीवन और चिंतन को उत्तरआधुनिक संदर्भ में विशेष रूप से प्रभावित किया है। भारत में प्रमुख रूप से नारी

विषयक अनेक रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। जैसे चित्रा मुद्गल की 'एक जीवन अपनी' (१९९०), प्रभा खेतान की 'छिन्नमस्ता' (१९९३) मृणाल पाण्डे की 'परिधि पर स्त्री' (१९९६) मैत्रीय पुष्पा की आत्मकथा 'गुड़िया भीतर गुड़िया' आदि। नारी स्वतंत्र रूप से सोचने लगी तथा पुरुष प्रधान समाज में बराबरी केलिए आवाज़ उठाने लगी। उत्तरआधुनिकता ने स्त्रियों को परंपरागत भूमिका से हटाकर उसके अस्तित्व को पहचानने में सहायक रहे। नारी समस्याओं पर मुंशी प्रेमचन्द, मोहन राकेश, कमलेश्वर, शंकर शेष, निराला, पंत आदि साहित्यकारों ने महत्वपूर्ण रचनाएँ प्रस्तुत की है। महिला लेखिकाएँ तथा कवयित्रियाँ भी नारी समस्या को विविध रूप देकर समाज के सामने रखा है। उनमें प्रमुख है उषा प्रियंवदा, मालती जोशी, अमृता प्रीतम, मेहरुन्नीसा परवेज़, मन्नू भंडारी, सुशीला टाकभौरे, रजनीतिलक आदि का नाम उल्लेखनीय है।

दलित कविता की स्त्री भी पुरुष भेद को मिटाकर एक समानता लाना चाहती है। वह अपने अस्तित्व तथा व्यक्तित्व को पहचान लिया है तथा शिक्षित होकर अपने अधिकार के लिए लडना चाहती है। वह स्वयं को इतने शक्तिशाली रूप में देखना चाहती है कि आगे कोई उस पर अन्याय और अत्याचार न कर सकें और वह परंपरावादी मनुवादी युग फिर कभी लौटकर न आ सके। सुशीला टाकभौरे ने अपनी कविता में व्यक्त किया है कि आज की चेतनशील नारी अपनी रक्षा करने में समक्ष है। वे कहती हैं-

''मैं नहीं बेबस/न मैं लाचार हूँ
अपनी रक्षा स्वयं कर सकती हूँ मैं
समय आने पर/तलवार भी बन सकती हूँ ।[१]

दलित नारी का जीवन आज भी गुलामी के अलावा कुछ नहीं, समाज व्यवस्था के प्रति कवयित्री नारी को यह सचेत करती है-

---

१ सुशीला टाकभौरे, तुमने उसे कब पहचाना, नवनीत की पुतली, पृ. ४५.

''तुम्हारे माथे पर यह/भारी डगमगाती निष्ठा की बालटी नहीं
तुम्हारी है सिचत है/जो सदियों से मनुष्य को समाज ने
अपने और तुम में/अन्यत याद लाने के लिए रखा है''।[१]

भारतीय जीवन में स्त्री की स्थिति दलितों से भी बुरी है। यदि उसका जन्म निम्न तबके में हो तो उस पर पड़नेवाले अमानवीय व्यवहारों की संख्या अधिक है। 'मध्यप्रदेश के इन्दौर जिले में एक दलित महिला पर इसलिए अत्याचार हुआ कि वह महिला वहाँ के विधायक के नल कूप पर पीने का पानी लेने गई थी। इस अपराध के लिए उसे सारे गाँव में निर्वस्त्र घुमाया और उस पर ट्रैक्टर चढाया भी गया।''[२] ऐसी कई घटनाएँ आज भी घटित हो रही हैं।

भारतीय समाज में दलित एवं नारी सदियों से पीड़ित रहे हैं। कवि शेखर नारी शक्ति को चित्रित करते हुए नारी मुक्ति की कामना करते हैं। 'औरत' नामक कविता की पंक्तियाँ हैं-

''नारी, दर्द को ठैंगा दिखाती है,/भविष्य को निहारती है, कहारती है
और देती है संस्कृति को नाम, पहचान/फिर भी क्यों आज और शान में
ली जाती है औरतों की जान''?[३]

स्त्री कई रूपों में हैं- माँ, बहन, पत्नी, बेटी, विधवा आदि। फिर भी एक स्त्री जन्म से मृत्यु तक उसकी गुलामी का सिलसिला जारी रखती है। इसलिए शांति यादव अपनी 'उधार की ज़िन्दगी' शीर्षक कविता में लिखती हैं-

---

१ नीरा परमाल, प्रतिरोध, *युद्धरत आम आदमी, दलित चेतना*, पृ. १४४.

२ मिनिप्रिया आर, *दलित जीवन का अधिकार और निर्मला पुतुल की कविता,* पृ. ७९,

३ शेखर, *उजालों के कछार पर*, पृ. २८

''वह अपने लिए नहीं/औरों के लिए जीती है
इसलिए औरत/एक उधार की/जिन्दगी जीती है।''[१]

भारतीय पुरुष प्रधान संस्कृति नारी को श्रेष्ठ, महान और पूजनीय कहती है। भारत को भारत माता, गाय को गोमाता, धरती को धरती माता कहा गया है। स्त्री घर की रोशनी है, समाज का गहना है आदि। दूसरी ओर उस पर घोर अत्याचार, बलात्कार, तिरस्कार किया जाता है।

'तुम ने उसे कब पहचाना' नामक कविता में सुशीला टाकभौरे कहती हैं कि हीरा बहुत मुश्किल से मिलता है। उसे ढूँढने के लिए कोयला खदानों में जाना पडता है। लेकिन घर में स्त्री-रूपी हीरे को जलाया जाता है।

''कोयला खदानो में/हीरा ढूँढा जाता है
मगर घर का हीरा/कोयला जैसा/जलाया जाता है
उपेक्षा की ठंडक और/ आक्रोश के तेजाब से
नारी व्यक्तित्व को/ हमेशा रौंदा जाता है।''[२]

स्त्री चाहे किसी भी कुल, धर्म, जात, वर्ण की क्यों न हो, सबसे पहले वह औरत है। सब औरत की प्रसव पीड़ा एक जैसी है। सब औरतों के हृदय में एक-सा वात्सल्य और ममता है। फिर भी हर स्त्री की सामाजिक स्थिति अलग है। रजनी तिलक सवर्ण स्त्री और दलित स्त्री में अंतर अपनी 'औरत-औरत में अंतर' शीर्षक कविता में बताती हैं-

''एक सतायी जाती है स्त्री होने के कारण
दूसरी सतायी जाती है स्त्री और दलित होने पर

---

१ कवंल भारती, दलित निर्वाचित कविताएँ, पृ. २०३.

२ वही, पृ. १४०

एक तड़पती है सम्मान के लिए
दूसरी तिरस्कृत है भूख और अपमान से
प्रसव पीड़ा झेलते फिर भी एक सी/जन्मती है एक नाले के किनारे
दूसरी अस्पताल में/ एक पायलट है
दूसरी शिक्षा से वंचित है/ एक सत्ताहीन है
दूसरी निर्वस्त्र घुमायी जाती है/ औरत नहीं मात्र एक जजबात
हर समाज का हिस्सा/ बंटी वह भी जातियों में
धर्म की अनुयायी है/ औरत औरत में भी अंतर है।''[१]

समाज की ऐसी स्थिति है कि जब पत्नी मर जाती है तो पति दूसरी शादी कर लेता है। चाहे उसके दो-तीन बच्चे क्यों न हो। किन्तु किसी स्त्री का पति मर जाते हैं तो उस समय उसके गोद में एक-दो साल का बच्चा होता तो वह दूसरी शादी नहीं करेगी। अपना सर्वस्व उस बच्चे के लिए अर्पण कर देती है। यह त्याग की प्रवृत्ति स्त्री में अधिक मात्रा में दिखायी देती है। सब लोग उस स्त्री को समझाते हैं कि अकेली इतनी लम्बी उम्र कैसे काटेगी? तब जयप्रकाश कर्दम की 'कलिया की मौत' शीर्षक कविता की साहसी विधवा कहती है-

''पुत्र मेरे साथ में है अकेली हूँ नहीं
पाल लूँगी पेट अपना कर मजूरी मैं कहीं
न किसी को कष्ट दूँगी न बनूँगी बोझ ही
सहानुभूति भी किसी की चाहिए मुझको नहीं''।[२]

---

१ रजनी तिलक, *पदचाप,* पृ. ४१.

२ जयप्रकाश कर्दम, *गूँगा नहीं था मैं*, पृ. ५०.

दलित कविता लड़की पर होनेवाले अन्याय पर प्रकाश डालती है। लड़की जीवन साथी को खुद चुनना चाहती है, लेकिन माता-पिता उससे सहमत नहीं। परिवारवाले जिसकी ओर इशारा करती है उसे ही शादी करनी पड़ती है। चाहे वह बूढ़ा भी हो। आखें रहने के बावजूद भी लड़की अंधी है, अंधी इसलिए कि वह अपने जीवनसाथी को खुद नहीं चुन सकती है। लड़की इस अंधेपन को और अंधेरे को दूर करना चाहती है। श्यौराज सिंह 'बेचैन' अपनी 'अंधेरा समाज' शीर्षक कविता में कहते हैं-

''लड़की मन की/और आखों में झोंकी हुई धूल
साफ करना चाहती है/क्योंकि अंधेरा/ कुदरता का नहीं, समाज का है''।[१]

दलित कविता माँ की विवशता पर प्रकाश डालती है। वह गरीब और लाचार होने के कारण उसका फायदा उठाते हैं या फिर बलात्कार करते हैं। परिणाम से जन्मे उस बच्चे को पिता का नाम नहीं दिया जाता, समाज उनका उपहास उठाता है। जहां उस स्त्री की कोई गलती नहीं फिर भी उसे व्यभिचारिणी कहा जाता है। जयप्रकाश कर्दम अपनी 'अक्करमासी' शीर्षक कविता में कहते हैं-

अपनी माँ के कुकर्मों के कारण
नहीं हूँ मैं अक्करमासी
मैं उसकी विवशता का परिणाम हूँ
पाटील की औलाद होकर भी
बाप से बेनाम हूँ''।[२]

दलित नारी सवर्ण समाज के भेद-भाव के खिलाफ लडती है। वह अपनी दुनिया खुद बनाना चाहती है। कावेरी 'खाईयाँ' नामक कविता में लिखती हैं -

---

१ कंवल भारती, दलित निर्वाचित कविताएँ, पृ. ९३.

२ जयप्रकाश कर्दम, *गुँगा नहीं था मैं,* पृ. ४४.

''पाट दूँगी खाईयाँ/जो फासले बढ़े
अपने हौसलों के पंख से/तय करुँगी दुनिया''।[१]

दलित महिला अब केवल रसोईघर तक सीमित नहीं है बल्कि वे दलित मुक्ति की लड़ाई में रचनात्मक लेखन के द्वारा सक्रिय सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में अपनी भागीदारी तय करने लगी है। नरेश कुमारी 'दोहरा अभिशाप' नामक कविता में समाज में दलित महिला की वास्तविक स्थिति को व्यक्त करती हैं -

''एक जिन्दा लाश
खिलौना गाडी में जलती लाल बत्ति जैसी
इस पुरुषवादी, सवर्ण समाज में
औरत का जीवन है/ अभिशाप''[२]

कवि दिलीप कठेरिया ने 'नीली रोशनी' कविता के ज़रिये नारी मुक्ति पर प्रकाश डाला है-

''मेरे वक्त की बेटियाँ/अब उम्र से पहले
ब्याही नहीं जायेंगी/क्यों कि उन्होंने अब
ज़िन्दगी के पन्नों पर/ लिखना सीख लिया है''।[३]

आज स्त्री विमर्श पर खूब लिखा जा रहा है। महिला सशक्तीकरण का खूब प्रभाव आ रहा है, और पुरुष वर्ग बढ़-चढ़कर भाग ले रहा है स्त्रियों को ताकतवर बनाने का प्रयास कर रहा है। ये सिलसिला तो कब तक चलेगा। अ. ल. उके लिखते हैं-

---

१ विमल थोरात, सूरज बडत्या, *भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर*, पृ. २०.

२ वही, पृ. २२.

३ वही, पृ. ८९.

''पुरुष का लिखना/नारी पर/कुछ वैसे ही है जैसे.....
कारखाने के मालिक द्वारा मजदूरों का नेतृत्व करना''[१]

सी. बी. भारती का मानना है कि आज युग बदल चुका है। अब स्त्री पराधीन नहीं रहेगी वह विद्रोह कर देगी उन व्यवस्थाओं के खिलाफ जो उसे पराधीनता की जंजीरों में जकड़ती है-

''अब कोई द्रोपदी जन्म नहीं लेगी
कर देगी वह विद्रोह निर्मलताओं के विरुद्ध''।[२]

वर्तमान युग नारी मुक्ति और नारी शाक्तीकरण का युग है। फिर भी औरत समाज के कठपुतली है। किसी न किसी तरह उसे सताई जाती है। किरण देवी भारती 'तीन-तेरह का जाल- बट्टा' नामक कविता में दलित अनपढ़ नारी की हालत व्यक्त करते हुए लिखती हैं-

''अनपढी हूँ कलंकित हूँ/अभिशाप की गठरी लदी है
कौन सी शक्ति है/जो मुक्त करेगी''?[३]

'औरत कमजोर नहीं' नामक कविता में पुष्पा विवेक कहती हैं कि अब औरत टूटकर बिखरने वाली मोतियां नहीं है। अब वह स्वाभिमानी बन गई है-

''जीवन की पथरीली राहों पर
गिरकर संभलना सीख लिया है
औरत हूँ कच्चे धागे में पिरोई

---

१ अ. ल. उके, *पत्थर उठाते हाथ*, पृ. २५.

२ सी. बी. भारती, *द्रोपदी, आक्रोश*, पृ. ५३.

३ रजनी तिलक (सं), *समकालीन भारतीय दलित महिला लेखन,* पृ. २४५.

कोई मोतियों की लड़ी नहीं/जो टूट कर बिखर जाउं''[१]

डॉ. रजतरानी मीनू 'क्यों हिलता नहीं पत्ता एक भी' नामक कविता में सवर्ण स्त्री और दलित स्त्री के शारीरिक शोषण पर भेदभाव के विरुद्ध वह आवाज़ उठाती हुई लिखती हैं-

''हमारे साथ जब होता है बलात्कार
सामूहिक बलात्कार/तब क्यों हिलता नहीं पत्ता एक भी
और जब तुम्हारे साथ हुआ बलात्कार/तब क्यों हिल गई संसद भी''।[२]

रजनी तिलक की 'पिंजरा तोड़कर आई हूँ' नामक कविता स्त्री-मुक्ति आंदोलन की सशक्त कविता है, साथ में संपूर्ण स्त्री वर्ग की मुक्ति चाहती हुई वे लिखती हैं-

''परिंदा हूँ। मुझे खुला आसमान चाहिए
न बरगला। पिंजरा तोड़कर आई हूँ''।[३]

'ज़ीरो हूँ' रजनी तिलक की महत्वपूर्ण स्त्रीवादी कविता है। समाज में स्त्री का स्थान हमेशा नगण्य माना जाता है। कवयित्री स्त्री को महत्वपूर्ण सिद्ध करती हुई कहती हैं-

''स्त्री हूँ/जोरी हूँ/हर बार प्लस होती हूँ ।
बनती हूँ प्यार का दरिया/आकाशाओं का क्षितिज।
समा लेती हूँ सारी कुँठाएँ/सारी निराशाएँ''।[४]

---

१ रजनी तिलक (सं), *समकालीन भारतीय दलित महिला लेखन,* पृ. २४६.

२ कादम्बिनी, आगस्त, २००४, पृ. ६९.

३ रजनी तिलक, *पदचाप,* पृ. ११.

४ रजनी तिलक, *हवा सी बेचैन युवतियाँ,* पृ. १२.

डॉ. कुसुम मेघवाल की कविता है 'कैसे सहती हो नारी तुम इतनी पीड़ा'? इसमें स्त्री शोषण दमन, उपेक्षा, अपमान, आदि का चित्रण किया है-

''डायन कहकर मारा है तुझे/बीच बाज़ार में
घसीटा है तुझे नंगा करके/पीकर शराब''।[१]

व्यक्ति के लिए सुरक्षा का कवच है रिश्ते। लेकिन स्त्री के मामले में ये रिश्ते उनकी गरिमा और व्यक्तित्व को खंडित कर देते हैं। डॉ. हेमलता महेश्वर लिखती हैं-

''मैंने तोड़ दिये हैं/वे परफ्यूम्ड रिश्ते/जो रिसते थे
गंधाते थे/बन मवाद/मेरे ही भीतर/नासूर बन बैठ थे
मैंने/प्रकृति से ली है दीक्षा/अब''।[२]

ससुराल में दलित स्त्री पर होने वाला अत्याचार की ओर ईशारा करते हुए कवयित्री नीरा परमाल लिखती हैं -

''डायन/आक्रोश में गुर्राते हैं सास-ससुर देवर-जेठ
गुर्राता है गांव/'मारो' मार डालो''।[३]

रघुनाथ प्यासा 'इत मत आईयो रे मनिहार' नामक गीत में, दलित स्त्री जब महँगी चूड़ी पहने तो उसे मुखिया अपमानित करता है। दलित नारी की व्यथा को कवि ने इन पंक्तियों में व्यक्त किया है।

''मँहगी चूड़ी पहनी एक बार बड़ी मुसीबत आयी
मुखियानी ने मुखिया जी से तभी शिकायत लगायी

---

१ रजनी तिलक (प्र.सं), *समकालीन भारतीय दलित महिला लेखन*, पृ. २०१.

२ वही, पृ. ९५.

३ वही, पृ. ९८.

म्हारे सामने मँहगी चूड़ी
पहने नीच गँवार/चूड़ी कैसे पहनूं रे''।[१]

नारी शोषण तथा नारी उत्पीड़न की कहानी अत्यंत पुरानी है। कहीं भी स्त्री को समानता या न्याय नहीं मिल रहा है। हर एक घण्डे में किसी न किसी रूप में इसका शोषण हो रहा है। दलित स्त्री का शोषण वर्तमान समय में बढ़ रहा है। इसके खिलाफ कुछ बोलने वाला नहीं है। इस संदर्भ में ही दलित कविता की प्रासंगिकता है। दलित कविता नारी को स्वाभिमान बनाकर उसे नई ऊर्जा देती है। किसी भी परिस्थिति में लड़ने की ताकत देती है।

३.१.७ दलित कविता का अंबेडकरवादी स्वर

डॉ. बाबा साहब अंबेडकर की विचारधारा भारतीय दलित साहित्य विशेषकर दलित कविता का मुख्य बिंदु है। 'दलित कविता : भावभूमि और विचारभूमि' नामक दूसरे अध्याय में दलित आंदोलन और बाबा साहब अंबेडकर की विचार धारा की विशद चर्चा कर चुकी है। दलित साहित्य में भी 'अंबेडकवाद' का विशेष महत्व है। अब हम दलित कविता में अंबेडकरवादी स्वर का विवेचन करेंगे। दलित कविता के युवा हस्ताक्षर महेन्द्र बैनीवाल ने 'भीम' शीर्षक कविता में बाबा अंबेडकर का यशोगान इस प्रकार प्रस्तुत किया है-

''संसद से सड़क तक
गूँज रही है, जिसकी पदचाप।
वो भीम सत्य है,/इतिहास में स्वतः अपने आप''।[२]

---

१ कँवल भारती, *दलित कविता का संघर्ष*, पृ. २८०.

२ डॉ. रजत रानी मीनू, *हिन्दी दलित कविता*, पृ. १३१.

गजराज 'शकुन' बाबा अंबेडकर के तीन विशेष सूत्र को पकड़कर दलितों से उन्हीं के राह में चलने का आह्वान करते हैं -

''अब वक्त आ गया है
शिक्षित बन अधिकार समझने का, संगठित रह नई शक्ति
बनाने का/संघर्ष कर, अपने अधिकार छीनने का''।[१]

बाबा अंबेडकर दलित मुक्ति का सृष्टा हैं। उनके संघर्षों का ही परिणाम है कि भारत में दलित शिक्षा, समता और समृद्धि का जो थोड़ा सा उजाला देख पाए। उनके संपूर्ण व्यक्तित्व को नवेन्दु ने 'संसद तो सवर्ण है' नामक कविता संग्रह में समेटने का प्रयास किया है । उनके 'बाबा साहेब भीमराव अबेडकर के प्रति' नामक कविता की पंक्तियाँ हैं -

''मनु की/काली-करतूतों की वजह से
रात जितनी अधिक/काली थी/उसकी कोख से
एक दिन उतना ही प्रतिभावन/सूर्य पुत्र पैदा हुआ
जिसके पैदा होते ही/शूद्र वर्णों कारागार के
सब ताले/खुद-ब-खुद टूट गए''।[२]

डॉ. सुशीला टाकभौरे बाबा साहब के विचारों के वाहक, प्रचारक, बौद्ध के अध्येता, मानव का उपासक है। कवयित्री क्रांति सूर्य से प्रेरणा पाकर उन्नत वर्तमान और प्रगतिशील भविष्य के लिए दलितों का आह्वान करती हैं-

---

१ डॉ. रजत रानी मीनु, *हिन्दी दलित कविता,* पृ. १३५.

२ नवेन्दु महर्षि, *संसद तो सवर्ण है*, पृ. ७२.

''स्वयं दीपक बनो/स्वयं प्रकाशित हो
दीप से दीप जलाकर/पूरे समाज को/प्रकाशित कर दो''[१]

दलित वर्ग बाबा साहब के रास्ते में चलना चाहते हैं। इसलिए दलित लेखकों के स्वर में अंबेडकरवाद है। कवि असंगघोष 'गाँधी और मैं' कविता में लिखते हैं-

''हमें तुम्हारे सिद्धान्त नहीं चाहिए
उन्हें अपनी बकरियों को ही चर जाने दो
हमारे पास बाबा साहेब का दिखाया रास्ता है
हम उसी पर चलेंगे।''[२]

कोई शक नहीं डॉ. बाबा साहब दलित साहित्य का प्रेरणास्त्रोत हैं। उनका समूचा जीवन दलितोत्थान के लिए व्यतीत हुआ। उन्होंने शिक्षा, प्रसार, संगठन, संघर्ष का सूत्र दिया। उनका प्रभाव दलित जीवन पर पड़ा। परिणामतः वह जाग उठा। कवि दामोदर मोरे कहते हैं-

''प्रज्ञासूर्य ने फेंक दिया झाडू
दिखा खडू कलम हमारे हाथ।
पिघल गयी परंपरा की गुलामगिरी/जल गयी लाचारी''।[३]

जिन ब्राह्मणों ने वर्णव्यवस्था बनाई उन्होंने ही दलितों को अनेक जातियों, उपजातियों में विभक्त कर दुर्बल कर दिया। उनके कहने से बाबा साहेब की महानता कम नहीं हो जाती। कवि सवर्णों का उपहास करते हुए 'महान ही रहेंगे' नामक कविता में लिखते हैं-

---

१ सुशीला टाकभौरे, *यह तुम भी जानो,* पृ. ९७.

२ असंगघोष, *हम गवाही देंगे,* पृ. ८६.

३ प्रो. दामोदर मोरे, *नीले शब्दों की छाया में,* पृ.४६.

''अपनी आदत अनुसार/गरियाते रहना
हमारे मुक्ति-दाता को जीवन भर
मुक्ति-दाता/महान थे/ महान ही रहेंगे''।[१]

दलित अस्मिता की तलाश करते हुए कंवल भारती मुक्ति संग्राम को जारी रहने की घोषणा करते हुए लिखते हैः-

''बाबा तुम मरे नहीं हो/जीवित हो
हमारी चेतना में
हमारे संघर्ष में जो मुक्ति संग्राम लड़ा था तुमने
वह जारी रहेगा उस समय तक /जब तक कि हमारे मुरझाए पौंधों के
हिस्से का सूरज उग नहीं आता।''[२]

डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर बाबा साहब का कथन उद्धृत करते हुए दलित अस्मिता की तलाश को सार्थक आयाम देते हुए दलितों को शेर बनने का आह्वान करते हैः-

''बलि भेड़ बकरियों की दी जाती है,/कभी शोरों की नहीं
इसलिए बाबा ने कहा था, बेटो, शेर बनो,/ भेड़ बकरी नहीं''।[३]

जिन्हें ये ज्ञान ही नहीं था कि उन पर जुल्म हो रहा है, वे भी इन्सान हैं, उन्हें बाबा साहब ने मनुष्यता का ज्ञान करवाया तो सर्वप्रथम उनके प्रति वंदना में सदियों से अवरुद्ध वाणी फूट पड़ी । कंवल भारती कहते हैं-

---

१ सूरजपाल चौहान, *क्यों विश्वास करुँ*, पृ. ३०.

२ माता प्रसाद, *दलित साहित्य दशा और दिशा*, पृ. १४५.

३ वही, पृ. १४६.

''जो मुक्ति संग्राम लड़ा था तुमने/वह जारी रहेगा उस समय तक
जब तक कि हमारे/मुर्झाए पौधे के हिस्से का सूरज
उग नहीं जाता'।/वे उनसे ये भी अपेक्षा करते हैं-
रचो ऐसी पारमिताएँ/हम बन सके एक राष्ट्र''[१]

'डॉ. बाबा साहब अंबेडकर' नामक कविता में कवि शेखर लिखते हैं-

''बाबा साहब/हमने अपनी माँगों के लिए निश्चित किया है
संवैधानिक मार्ग/आपका महापरिनिवार्ण स्थल बने प्रज्ञा स्मारक
यह हम दलितों की है न्यायोचित मांग''।[२]

डॉ. चन्द्रकुमार वरठे का चिन्तन मार्क्स और बाबा अंबेडकर की विचारधारा से प्रेरित है। वे अपने वर्ग के भूखे बच्चों का बराबर खयाल रहते हैं। वे अपनी कविता 'इंकलाब लिखता हूँ' में लिखते हैं कि-

''एक गुलामी का सवाल/ है जिनकी आँखों में
उन बच्चों के लिए /ढूँढ कर/जवाब लिखता हूँ
वो/जो लड़ता रहा/उम्र भर/ रोटी के लिए
मैं उनकी भूख और प्यास का/ हिसाब लिखता हूँ।''[३]

जिस तरह डॉ. अम्बेडकर ने वर्ण, असमानता, शोषण आदि के विरुद्ध लड़ा उसकी प्रेरणा लेकर कवि भी कलम उठाकर समाज की अनीतियों के विरुद्ध लड़ना चाहते हैं। 'श्रद्धाजलि' नामक कविता में ईश कुमार गंगानिया लिखते हैं-

---

१ कंवल भारती, *तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती*, पृ. २०९.

२ शेखर, *मायावती के गाँव में,* पृ. ४३.

३ डॉ. चन्द्रकुमार वरठे, *अधूरी चिट्टी रोशनी की,* पृ. १२.-१३.

''उठा ली अपनी लेखनी/असमानता और शोषण के
सीने में घोंपने को, और/देने को श्रद्धांजलि
पिता और मानवता के मसीहा/दोनों को'।[१]

कवि दलितों से अपनी कायरता को छोडकर बाबा अंबेडकर का सपना साकार करने का आह्वान करता है। सूरजपाल चौहान दलितों को याद दिलाते हुए 'करवाँ को आगे बढाओ' नामक कविता में लिखते हैं-

''देवताओं के दास बनना छोड़ दो तुम,/बानर नहीं, वीर बर्बरीक हो तुम,
सन्तोष तेरी व्याधि है, उसको अब त्याग दे,
प्रगति, परिवर्तन की इच्छा मन में पाल ले।
देखते ही देखते तस्वीर बदल जाएगी
भीम के इस स्वप्न को साकार बनाओं'।।[२]

पूनम तुषामड़ 'यह नीला रंग' नामक कविता में बाबा अम्बेडकर के प्रति अपना विश्वास और आस्था को व्यक्त करते हुए कहती हैं-

''मेरी निगाहों में उतर आता है
तैरता हुआ नीला रंग/जो उस युग पुरुष के/नीले वस्त्रों से निकल
फैल जाता है चारों ओर''।[३]

इस प्रकार की अनेक पंक्तियाँ हिन्दी साहित्य में आज उपलब्ध हैं। भारत के विभिन्न प्रांतों के साहित्य में भी अन्य विचारकों के साथ दलित साहित्य के मूल प्रेरणा स्रोत बाबा साहब के विचार ही प्रमुख रहा है। उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि

---

१ ईश कुमार गंगानिया, *हार नहीं मानूँगा,* पृ. २८.

२ सूरजपाल चौहान, *कब होगी वह भोर,* पृ. ८१.

३ पूनम तुषामड़, *माँ मत दो,* पृ. २७.

अंबेडकरवादी स्वर दलित कविता की केंद्रीय ऊर्जा है। बाबा अंबेडकर के बिना दलित कविता का अस्तित्व ही नहीं है। आज दलित कविता सिर उठाकर समाज में खडे हैं, इसकी मूल प्रेरणा बाबा साहब अंबेडकर का विचार ही है।

३.१.८ दलित कविता का मानवतावादी स्वर और समतावादी स्वर

दलित साहित्य का प्रमुख उद्देश्य समाज में समानता स्थापित करना और मानवीय मूल्यों को पुनस्थापित करना ही है। दलित कविता का समाजशास्त्रीय अध्ययन में सबसे प्रमुख स्थान समतावादी स्वर और मानवतावादी स्वर को है क्योंकि समाज वर्ण, जाति, धर्म के आधार पर विभाजित है। अतः इस भेद-भाव को मिटाकर मानव- मानव को पहचानना तथा समता दर्शन को स्थापित करना दलित कविता का मूल उद्देश्य बन जाता है। दलित कविता के समाजशास्त्रीय अध्ययन से मानवीय मूल्यों एवं मनोभावों को सामने लाने की कोशिश कवियों ने किया है। दलित कविता के समाजशास्त्रीय अध्ययन में मानवतावादी स्वर और समतावादी स्वर पर आगे हम विश्लेषण करेंगे। मालिक-मजदूर एक बने, सवर्ण-दलित समान हो, सभी मानव एक हैं आदि विचार समतावाद के मूल में हैं, इससे बंधुता बढ़ेगी। आर्थिक विषमता, जातीय उच्च-नीचता, शिक्षा से वंचित रहना, नारी शोषण एवं उत्पीडन आदि सामाजिक समस्याओं से मुक्ति चाहने वाले दलित कवि समता के पक्षधर हैं। जयप्रकाश वाल्मीकि के शब्दों में -

> ''धर्म धर्म न रहे/ जातियों के बाड़े बनकर रहे
> समतामूलक समाज की चाहा मेरी मृगतृष्णा''[१]

जातीयता, शोषण, अत्याचार से मुक्त दलित जीवन का सपना देखने वाला दलित कवि सामाजिक समता की स्थापना करना चाहता है। मानवतावाद, समता, बंधुता, समाजवाद के पक्षधर डॉ. टाकभौरे कहती हैं-

---

१ जयप्रकाश वाल्मीकि, *कहाँ है ईश्वर के हस्ताक्षर,* पृ. ६२.

''अन्याय- अधर्म का विरोध/मानवता को बचायेगा
समता-स्वतंत्रता, भाईचारा/घर-घर तक पहुँचायेगा''।[१]

जयप्रकाश लीलवान 'एकता' नामक कविता में 'एकता' की ज़रूरत को बल देते हुए लिखते हैं-

''सदियों की प्यास/तुप्त होने के सिलसिले
शुरु हो जाएंगे/और यह/पूरा का पूरा राष्ट्र
ताज़गी की ऊर्जा में/नही उठेगा''।[२]

समानता की भावना ही बंधुत्व की भावना को जन्म देती है जो मिलजुल कर काम करने, एक दूसरे के साथ जीने की प्रेरणा देती है। दलित कविता इस समानता का सूत्रधार है, इसलिए दलित कवि राम भरत पासी कहते हैं-

''श्रेष्ठता का भ्रम पालने वाले/बना लें चाहे जितनी जमातें
इतना तो तय है कि/मनुष्य की अब/ दो ही जमाते हैं''।[३]

सामाजिक एकता का सीधा सम्बन्ध राष्ट्रीय एकता एवं देश की अखंडता से जुडा हुआ है। राष्ट्रीय एकता की बात करते हुए भी आर्थिक और भौगोलिक स्तर पर भारतीय समाज जातीय और उपजातीय टुकड़ों में विभक्त है। कंवल भारती ने इस स्थिति को यूँ वर्णित किया है-

''धर्म के सिद्धांत/बना नहीं सके धार्मिक
मनुष्यता के आग्रह/नहीं बना सके मनुष्य

---

१ डॉ. सुशील टाकभौरे, *हमारे हिस्से का सूरज,* पृ.

२ जयप्रकाश लीलवान, *ओ भारत माँ! हमारा इंतज़ार करना*। पृ. १४७

३ रमणिका गुप्ता, *दलित चेतना,* पृ. ३२.

राष्ट्र की अवधारणायें/पैदा कर गई अलगाव
वर्ण और जाति की व्यवस्थाओं ने
न स्वतंत्रता को स्वीकारा/न समता को
न बंधुता को''।[१]

इस अहसास की स्थिति को दलित कवि श्यौराज सिंह बेचैन व्यक्त करते हैं-

''बड़ी उदास रात है/न मेल है न प्यार है
जलाओ दीप साथियों कि घोर अंधकार है
राग सब जुदा-जुदा/सुना रही हैं जातियाँ
जला हमारा खुले-दिल/न दीप हैं, न जातियाँ
एकता-समानता का/बेसुरा सितार हैं।''[२]

डॉ. धर्मवीर एकता के निष्फल प्रयासों से उदास जनता की पीड़ा को व्यक्त करते हुए कहते हैं-

''कितनी बार 'जण-गण -मन' पर सावधान खडा हुआ?
एकता ठूठ बनी रही, एक भी हरा पत्ता नहीं आया पर
गाय की तरह रम्भाती, बकरी की तरह मिमियाती रही
जब कार्यालय जले, रेलवे स्टेशन ढहे, डाकघर धधके
यू भग्न एकता, विश्रक्त भूगोल, फैला पडा है भारत''।[३]

---

१ कंवल भारती, *तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती*, पृ. २०९.

२ श्यौराज सिंह बेचैन, *नई फसल,* पृ. १४.

३ डॉ. धर्मवीर, *हीरामन,* पृ. ६५.

भारतीय समाज में प्रेम-भाव आपस में जातीय श्रेष्ठता के कारण कभी- कभी शत्रुता में बदल जाता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि जाति के अस्तित्व को नकार कर एकता में जाति का अंत देखते हुए उसकी शक्ति को यू रेखाकिंत करते हैं-

"आदमी/जुटेगी भीड़
तब कौन बता पायेगा भीड़ की जाति
भीड़ की जाति पूछना वैसा ही है
जैसे नदी के बहाव को रोकना
समुद्र में जाने से!"[१]

इस दलित कविता की पंक्तियाँ मनुष्य-मनुष्य की एकता की बात करती है और जातीयता को तोड़ कर जाति विहीन समाज के निर्माण का सपना देखता है।

दलित समाज में व्याप्त भूख, अशिक्षा, बेरोजगारी और गरीबी के अलावा जाति का दंश उसकी समूची प्रगति और विकास में बाधक है। जाति के व्याकरण को समझने और उसे सुलझाने की राह में कवि को एक ही दृष्टि दिखाई पड़ती है और वह है मानवीयता, सद्भावना, प्रेम और समानता के व्यवहार की दृष्टि। वह समूचे समाज को प्रेम का रास्ता दिखाना चाहता है। जयप्रकाश कर्दम 'तिनका-तिनका आग' के माध्यम से यह विचार व्यक्त करते हैं-

"प्रेम की कविता का/ बेतुका छंद
मनुष्यता की कमीज पर
जाति का पाबन्द"।[२]

---

१ रमणिका गुप्ता, *दलित चेतना,* पृ. ९-१०.

२ जयप्रकाश कर्दम (सं), दलित साहित्य वार्षिकी २००४, पृ. १९७.

दलित कविता एक समतावादी समाज की स्थापना की आकांक्षा करती है। दलित कविता आदमी और आदमी में अन्तर नहीं देखती, उसकी दृष्टि में सभी मनुष्य एक समान है, लेकिन यथार्थ में ऐसा नहीं है दलित के साथ समाज में भेदभाव है, डॉ. देवेन्द्र दीपक लिखते हैं-

''हम आदमी हैं/तो सिर्फ इसलिए
कि हम आदमी जैसे दिखते हैं
आदमी के लिए जो नहीं था काम्य
हमने घृणा का वह/अतिरेक देखा है।/व्यवहार में व्यतिरेक देखा है।''[१]

डॉ. एन. सिंह व्यवसाय की समानता के माध्यम से समत्वबोध का भाव जागृत करते हैं-

''हमारी दूकान पर बिकता है/जूता
और तुम्हारी दूकान पर/रामनामी
हमारे लिए जूते का महत्व वही है जो
तुम्हारे लिये है रामनामी का।
आओ समता का वह हार पकडे
एकता के सूत्र गढे साथ बढे''।[२]

भारतीय समाज में आज भी विसंगत वर्गभेद देखने को मिलता है। आज़ादी के छः दशक बाद भी दलितों की स्थिति दयनीय है। मनुवादियों की मानसिकता अभी भी बदली नहीं है, फलस्वरूप छुआछूत, गरीब, अमीर का भेद बरकरार है। कवि इसे दूर कर के भाईचारा स्थापित करना चाहते हैं-

---

१ देवेन्द्र दीपक, *हम बौने नहीं,* पृ. २४.

२ मता प्रसाद, *दलित साहित्य का दशा और दिशा,* पृ. १४७.

''करे कुछ एहसास/आपस में विश्वास
और बन्धुत्व के साथ, /अपना ले भाईचारा''।[१]

आरक्षण और बराबरी की हिस्सेदारी के मुद्दे पर कटाक्ष करते हुए जयप्रकाश कर्दम कहते हैं-

''तुम्हारा आरक्षण उचित है/और मेरा अनुचित
अब हर क्षेत्र में होगी/समान रूप से हिस्सेदारी
शासन, प्रशासन से लेकर/मैला ढोने, जूती गांठने

और झाड़ू लगाने तक के काम में भी
बांटनी होगी समानता''[२]

वास्तव में समतावादी समाज की स्थापना करनी है तो सामाजिक व्यवस्था का आधार बदलना होगा। वर्ण के आधार पर समता आवश्यक है। जब वर्ण के आधार पर समता होगी, तभी वर्ग के आधार पर समता सम्भव है और तभी वास्तव में एक समतावादी समाज की स्थापना हो सकती है। दलित कवि इस व्यवस्था के पिंजरे को तोड देना चाहते हैं। कवि कुसुम वियोगी लिखते हैं-

''अब तुम्हारी व्यवस्था के पिंजरे/तुम्हें ही मुबारक
अब तो/मैं बुनकर ही रहुँगा
सामाजिक पुनः संरचना की चादर
समता के धागों से''।[३]

---

१ जसराम हरनेटिया, *माटी के पूत,* पृ. १.

२ जयप्रकाश कर्दम, *गूँगा नहीं था मैं*, पृ. १७.

३ डॉ. कुसुम वियोगी, *टुकडे टुकडे दंश,* पृ. ५४.

कवि स्वतंत्रता दिवस को तब तक अर्थहीन मानते हैं जब तक समता नहीं है, सामाजिक स्वतंत्रता नहीं है-

''हम आज भी ज़रूरी समझे हैं
सामाजिक स्वतंत्रता को
हमारे लिए अर्थहीन है उस देश की आज़ादी
जहाँ करोडों मनुष्य जीते हैं गुलामी की जिन्दगी.....''[१]

समाज में छोटे-बडे का भाव है। अहंकार का नशा कभी समता की ज़मीन पर उतरने ही नहीं देता। यदि समता की ज़मीन पर चलना है, तो पहले नशा उतारो- कवि भारती कहते हैं-

''तुम कभी नहीं उतरे नीचे उस ज़मीन पर
जो है ज़मीन मानवता की/जो ज़मीन मैत्री की
करुणा और भाईचारों की/एकता की''।[२]

आज दलितों का एक मात्र लक्ष्य है समाज में समानता लाना। कवि राज वाल्मीकि 'लक्ष्य' नामक कविता में लिखते हैं-

''तुम्हारा भी है एक ही लक्ष्य
जिसे हर जागरूक दलित है जानता
कि एक ऐसे समाज का निर्माण/जहाँ हो
स्वतंत्रता, न्याय, बंधुत्व एवं समानता''।[३]

---

१ कंवल भारती, *तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती?* पृ. ३५.

२ सी. बी. भारती, *नशा, आक्रोश,* पृ. ५७.

३ विमल थोरात, सूरज बडत्या, भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर, पृ. ९८.

डॉ. शत्रुघ्न कुमार 'वाह रे दुमुँहे' कविता में मानवता की बात करते हैं। अपने छल रूपी मुखौटे को हटा कर मनुष्य से प्रेम का व्यवहार करो। जाति-धर्म में कुछ नहीं रखा है। दो मूँह वाले रास्ते को छोड़कर मानवता का पाठ सीखें-

''झोपड़ो दलितों और निरीहों के/चमकेगी छोटी-सी किरण
मानवता का तुममें भी उस दिन
और जान सकोगे थोडा सा अर्थ/तुम भी मानवता के''।[१]

डॉ. मेघसिंह 'बादल' समता और न्याय पाने के लिए जेहाद और अदालत के दो मार्ग उचित मानते हैं। 'मैं एक अछूत हूँ' शीर्षक कविता में आपने लिखा है कि-

''जुल्म के खिलाफ एक आवाज़ है
जो अमन-चैन चाहती है/ समता और न्याय के लिए
मुझे कड़ी से कड़ी अदालत में/जाना पड़े तो जाऊँगा''।[२]

प्रोफसर श्यौराज सिंह बेचैन जाति और वर्ण के नाम पर पशु बन रहे आदमी को आदमी बने रहने की सीख देते हैं, ताकि वह अपने जैसे दूसरे आदमी के साथ आदमियतमूलक व्यवहार कर सके। वे मानव को संदेश देते है -

''सब हो समान/असमानता हटाओं रे/भूल जाओ
आज से अछूत या सछूत भेद/आदमी हो
आदमी का रूप अपनाओं रे''।[३]

समता के अभाव में दलितों का शोषण होता है। प्रो. दामोदर मोरे भेदभाव का विरोध करके सभी में समता की माँग करते हैं, वे लिखते हैं-

---

१ डॉ. शुत्रुघ्न कुमार, *अग्निशिखा*, पृ. १८.

२ डॉ. मेघसिंह बादल, *सौलाव,* पृ. १९.

३ प्रो. श्यौराज सिंह बेचैन, *नई फसल,*पृ. १७.

''हमें कुछ नहीं चाहिए/थोडी-सी इन्सानियत हमें मिले
बाबू, ऐसी व्यवस्था करो/हो श्मशान हमारे आपके एक''[१]

दलित साहित्य के श्रेष्ठ समीक्षक और कवि डॉ. एन सिंह, सुखी मानवता के जागरण पर कुछ इस तरह विचार करते हैं-

''आज नहीं तो कल जरूर
ये भूखी मानवता जागोगी/अपनी सारी मेहनते जाएगी।
अपनी सारी मेहनत का/तुमसे ज़रूर हिसाब मांगेगी''।[२]

'एक मुट्ठी आसमां' नामक कविता में पूनम तुषामड़ अपने हिस्से का ज़मीम की माँग करती है। अपने पूर्वजों ने सदियों से उस ज़मीन में पसीना बहाया है, लेकिन फसल का मालिक हमेशा दूसरे लोग बनते रहे। कवयित्रि कहती हैं-

''मुझे चाहिए समता और सम्मान/नहीं चाहिए।
तुम्हारी दया, करुणा और सहानुभूति ''।[३]

भारतीय समाज में जातिवाद और ऊँच-नीच जो हमें आपस में बांटते हैं। 'वे बांट देना चाहते हैं' नामक कविता में रजनी तिलक मनुवादी ब्राह्मणवाद को मिटाने के लिए दलित एकता और समता भाव को आवश्यक मानती हैं। वे कहती हैं-

''लड़ना है हमें असमानता से
गढ़नी है भाषा, बढाना है विज्ञान,/ तभी बनेगा जाति विहीन समाज''।[४]

---

१ प्रो. दामोदर मोरे, *पलकें सुलग रही है,* पृ.

२ डॉ. कालिचरण स्नेही, *हिन्दी साहित्य में दलित अस्मिता,* पृ. १०७.

३ पूनम तुषामड़, *माँ मुझे मत दो,* पृ. ७४.

४ रजनी तिलक, *पदचाप*, पृ. १७.

'हाथ मिला आकर ले मेल' नामक कविता में सूरजपाल चौहान' हमें समता और भाईचारे की ओर उन्मुख कराते हुए कहते है-

''ऊँच-नीच और छुआछूत का
मत खेलो अब तुम यह खेल
प्यार के दीपक जला डगर में
हाथ मिला आ कर ले मेल''।[१]

कवि हमसे यही कह रहे हैं कि सब कुछ भूलकर हम सब मिलके एक नया समाज की रचना करेंगे, जहाँ समानता एवं भाईचारा ही प्रमुख रहें।

दलित कविता समता या मानवता की बात करती है। आज के संदर्भ में ये दोनों हम से अलग जा रहे हैं। हमारे मन में स्वार्थ की पूर्ति की चिंता प्रबल होती रहती है। इस तरह मानव-मानव को न पहचान कर उसे सताते रहते हैं। इस संदर्भ में दलित कविता मानुषिक मूल्यों को लेकर सामने खडी है। हमारे दिल और दिमाग में मानवता एवं समानता की चिंगारी फैला रही है। हमें 'मनुष्य' का वास्तविक अर्थ को समझाकर सहजीवियों से प्रेम, ममता, सहिष्णुता, भाईचारा, करुणा आदि मूल्यों से आदमियत की पहचान कराती है।

३.१.९ निष्कर्ष

जागरूक समाज वह है जो अपनी स्थिति को समझता है और उस स्थिति से आगे प्रगति करने का प्रयत्न करता रहता है। इस तरह जागरूक साहित्यकार भी अपने समाज की भलाई के लिए लोगों को साहित्य के माध्यम से जागृत करते रहते हैं। अतः वे निडर, निर्भीक होकर समाज को विशेषकर समानता और सम्मान से पूर्ण जीवन जीना

---

१ सूरजपाल चौहान, *वह दिन ज़रूर आएगा,* पृ. ३९.

सिखाते हैं। दलित कविता भी दलित समाज को जागरूक करते हुए उन्हें प्रगति के पथ पर ले जाते हैं। समयानुसार समाज में नये विचार एवं सिद्धान्त आते रहे हैं। मैकिल फूको ने यह स्थापित किया कि शक्ति उनके पास होती है जिनके पास तार्किक ज्ञान होता है। अतः मनुष्य केलिए ज्ञान और शक्ति की आवश्यकता आज बढती जा रही है। यह दोनों हासिल करने की स्वतंत्रता मनुष्य के लिए ज़रूरी है।

दलित कविता में जो विषय है वही उसकी वस्तु है। प्रस्तुत अध्याय में, वर्णव्यवस्था, समाज, संस्कृति, परंपरा, राजनीति, नारी, अंबेडकरवादी विचारधारा, मानवतावाद तथा समतावाद आदि दलित कविता के मुख्य पहलुओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया है। दलित कविता का मूल स्वर वर्णव्यवस्था के खिलाफ प्रतिरोध, प्रतिशोध तथा क्रांति उत्पन्न करके उसे समाज से मिटाना है। क्योंकि वर्णव्यवस्था मानवतावाद तथा समतावाद के खिलाफ है। दलित कविता के सामाजिक स्वर में समाज में दलितों के प्रति हो रहे शोषण, अन्याय, अत्याचार आदि से अवगत कराते हुए एक नए समाज की स्थापना करने की प्रतिबद्धता है। दलित कविता का सांस्कृतिक स्वर अधिक प्रबल है। क्योंकि दलितों का जीवन, संस्कृति एवं परंपरा से जुड़ा हुआ है। वे सदियों से इस धरती के रक्षक हैं। समाज के वर्चस्ववादी चिंतकों ने ही संस्कृति को जीवन की समग्र पद्धति के रूप में माना है। इस संदर्भ में ग्राम्शी का मत प्रासंगिक हो जाता है कि साहित्य के इतिहास को संस्कृति के इतिहास के अंग के रूप में अध्ययन करना होगा। तभी हम मानव की आदिम संस्कृति या लोक संस्कृति को समझेंगे; लोक मानस को समझेंगे, क्योंकि संस्कृति जनसमूह की उपज है। इसमें ही उस जनमानस की भाषा मौजूद है। इसी प्रकार इतिहास में परंपरा को खोजते हुए उसकी पुनर्रचना भी करना है; क्योंकि परंपरा का आधार लोक भी है; शास्त्र भी है। परंपरा की खोज इसलिए है कि भारतीय परंपरा वेद-पुराण और शास्त्रों से जुडी हुई है। भारत में ये वेद पुराण की परंपरा ही नहीं; जन-जाति या क्षेत्रीय परंपराएँ भी हैं। इस तरह की लघु परंपराओं को समाज से हटाया

या मिटाया गया है। इस तरह की जन-जातियों की अलग पहचान, अलग इतिहास, अलग संस्कृति तथा अलग भाषा भी है जो दलित कविता का प्रमुख आधार है। कुल मिलाकर कह सकते हैं कि ये परंपरा, संस्कृति, मूल्य, जातीय भावना एक तरह से मानसिक पुनर्रचनाएँ होती है। इस पुनर्रचना की प्रक्रिया ज्ञान, सामाजिक तथ्यों और ऐतिहासिक यथार्थ से कटकर नये मिथक, बिंब तथा प्रतीकों को अपना लेती है। विशेषकर आधुनिक संदर्भ में ऐसी एक दृष्टि दलित कविता की विषय वस्तु और शिल्प में देख सकते हैं।

दलित कविता अतीत तथा वर्तमान समय में अपने जीवन और परिवेश के साथ गहराई से जुडी है। उसकी प्रांसगिकता भी यही है। यह कहा जा सकता है कि हिन्दी की दलित कविता व्यापक रूप में दलित वर्ग की पहचान एवं अस्तित्व की तलाश की कविता है। वह दलितों को समाज से अपने अधिकारों को छीन लेने का संदेश भी देती हैं। सही अर्थ में दलित कविता पारम्परिक रूढ़िग्रस्त सामाजिक सम्बन्धों में क्रान्ति एवं आदमी को आदमी होने का हक दिलाने को प्रमुखता देती है। जाति एवं वर्णव्यवस्था को नकार कर समाज में समतावाद की स्थापना करना चाहती है। दलित कविता में चित्रित जीवन स्वानुभूति का प्रमाण है। इसमें शोषण तथा अन्याय के विरुद्ध प्रतिरोध की आवाज़ है।

कविता साहित्य का बीज है तथा बडे एवं गंभीर विचार को कुछ पंक्तियों में समेटने की कला है। दलित कविता घृणा एवं नफरत के खिलाफ लिखी गयी है। मोहनदास नैमिशराय का कहना ठीक है कि "दलित कविता एक सामाजिक आंदोलन का सांस्कृतिक प्रतिफलन है। अन्य काव्य धाराओं और साहित्यिक परंपराओं की अपेक्षा उसका सीधा संबंध जीवन की ज़मीन से हैं"[१]। दलित कविता ने अपनी ऊर्जा चेतना अन्य विचारकों की तुलना में डॉ. बाबा साहब अंबेडकर के विचार एवं दर्शन से सबसे

---

१ ओमप्रकाश वाल्मीकि, *दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र,* पृ. ५८।

अधिक प्राप्त की है। भारतीय समाज व्यवस्था की असमानता पर आधारित जीवन की विसंगतियों एवं विषमताओं के बीच से दलित कविता का जन्म हुआ है जो सामाजिक बदलाव तथा जीवन मूल्यों की पक्षधर है। इसलिए दलित कविता की वस्तु स्वानुभूति पर आधारित है। आज हमें दलित स्मृति के शक्ति-दर्शन को रूपायित करना है। 'अप्प दीपो भव' दलित अपने दीपक को जलाने लगे हैं। स्वत्व बोध को पहचान लिया है। अतः हिन्दी दलित कविता, दलित स्वत्व बोध के निर्माण में अपना सर्जनात्मक योगदान दे रही है। इस तरह दलित कविता अपने सामाजिक योगदान प्रदान करते हुए समाजशास्त्र को अस्तित्व प्रदान करती है।

चौथा अध्याय

दलित कविता का शिल्पपक्ष : समाजशास्त्रीय अध्ययन

दलित कविता का शिल्पपक्ष : समाजशास्त्रीय अध्ययन

दलित कविता के वस्तुपक्ष का समाजशास्त्रीय अध्ययन के बाद शिल्पपक्ष का समाजशास्त्रीय अध्ययन चैथा अध्याय का विषय है।

४.१. दलित कविता का शिल्पपक्ष : परिचय

'शिल्प' शब्द का हिन्दी में प्रयोग अंग्रेज़ी के टेकनीक (Technique) पर आधारित है; जिसका अर्थ है - ''कलात्मक कार्यविधि की वह रीति जो संगीत अथवा चित्रकला में प्राप्त है''।[१] बृहत हिन्दी कोश के अनुसार ''शिल्प से अभिप्राय हाथ से कोई वस्तु, तैयार करने अथवा दस्तकारी या कारीगरी से है''।[२] अतः काव्य के संबंध में 'शिल्प' अभिव्यंजना पद्धति का बोध कराता है। संस्कृत आचार्यों ने काव्य के लक्षण, रस, अलंकार, गुण, रीति, ध्वनि आदि पर बल दिया है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में रस की व्याख्या इस प्रकार की गई है- ''विभावानुभाव्यभिचारिसंगोयगाद्रसनिष्पत्ति''[३] अर्थात मंच पर विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। आचार्य दण्डी अंलकार को काव्य - शोभा तथा काव्य- सौन्दर्यवर्धक शब्द मानते हैं- ''काव्यशोभाकरान्धमनिलंकारान्प्रचक्षते''।[४] अर्थात शोभा बढ़ाने वाले अर्थ को अलंकार कहते हैं। पंडितराज जगन्नाथ के अनुसार रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्द ही काव्य है''।[५] महावीर प्रसाद द्विवेदी के अनुसार- ''कविता वह प्रभावशाली रचना है, जो पाठक या

---

१ Oxford Dictionary of current English, पृ. १२५८

२ बृहत हिन्दी कोश, पृ. ९३३४

३ डॉ. गणेश त्रयंबक देशपांडे, भारतीय साहित्य शास्त्र, पृ २६०.

४ डॉ. विजयपाल सिंह, भारतीय काव्यशास्त्र पृ. ८५.

५ डॉ. रामलाल वर्मा, संक्षिप्त काव्य शास्त्र, पृ. ३९

श्रोता के मन पर आनन्ददायी प्रभाव डालती है''।[१] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार ''हृदय की मुक्तावस्था केलिए किया गया शब्द विधान कविता है''।[२] श्यामसुन्दर दास के अनुसार ''कला के उद्देश्यों की पूरक पुस्तक ही काव्य है''।[३] इससे स्पष्ट होता है कि कविता एक प्रकार की आनन्दानुभूति या सहानुभूति है। कविता में ताल, लय, अलंकार, ध्वनि, शब्द, प्रतीक, मिथक, बिम्ब, आदि को महत्व देनेवाला शिल्प ही है। ''शिल्प वह माध्यम है जो लेखक की यथार्थ अनुभूति को रचनात्मक आधार प्रदान कर एक कलात्मक मोड़ देता है''।[४] शिल्प का आशय उस कार्य व्यापार से है जिसमें वस्तु को गढ़ने तथा उद्देश्य को संप्रेषित करने के लिए भाषा, शैली, बिंब, मिथक एंव प्रतीकों का कलात्मक उपयोग किया जाता है। डॉ. मोहन अवस्थी काव्य शिल्प की सैंद्धान्तिक व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि - ''काव्य विधान काव्य का विज्ञान है। कविता करने की विधि से लेकर कविता संबन्धी गुण दोनों का विधिवत् ज्ञान उसके भीतर आ जाता है, और उस ज्ञान का आत्मप्रकाश काव्य शिल्प है'' [५] अतः काव्य शिल्प कविता की रचना प्रक्रिया या सृजन विधि है। अंग्रेज़ी विद्वान जे. ए. कुडोन के अनुसार शिल्प समस्त अभिव्यंजक उपादानों का समावेश है। वे कहते हैं कि ''शैली विज्ञान में ध्वनिविज्ञान, छंद शास्त्र, पद-विज्ञान, वाक्य विज्ञान तथा शब्द शास्त्र आदि भाषा के समस्त अभिव्यंजक उपादानों का समावेश किया गया है।''[६] उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता

---

१ डॉ. रामलाल वर्मा, *संक्षिप्त काव्य शास्त्र,* पृ. ४०.

२ वही,

३ डॉ. रघुवर दयाल वाष्णेय, *हिन्दी कहानी बदलते प्रतिमान,* पृ. २९६.

४ डॉ. सुनीता साखरे, *हिन्दी और मराठी साहित्यः एक मूल्यांकन,*पृ. १४९.

५ मोहन अवस्थी, आधुनिक हिन्दी काव्य शिल्प, पृ. ६

६ J.A. cuddon, A Dictionary of literature terms - "It is an analytical science which covers all the expressive aspects of language, phonology, morphology, syntax and lexicology", p. 663.

है कि कविता का शिल्प कलात्मक उपयोग करने की चीज़ है। ऐसी कलात्मकता, चमत्कार, रस, अलंकार, सौन्दर्य आदि मुख्य धारा कविता केलिए अनिवार्य होती है।

वस्तु की तरह शिल्प के अध्ययन में वही आधार भूत प्रश्न सामने आ जाते हैं कि कविता के शिल्प का गठन कैसे किया है? कहाँ से किया है? मुख्य धारा कविता के शिल्प और दलित कविता के शिल्प में क्या अंतर है? आदि। दलित कविता के शिल्प केलिए काव्यशास्त्र का नियम लागू कर सकता है कि नहीं ? क्योंकि दलित कविता की अभिव्यक्ति केलिए कौन सा रस प्रयोग करेगा? कौन सा अलंकार इस्तेमाल करेगा? कौन सा सौन्दर्यशास्त्र अपनायेगा? कौन सा साहित्यिक एवं चमत्कार भाषा का प्रयोग करेगा? कौन सा मिथक एवं बिंब को लेगा? आदि सवाल दलित कविता की अभिव्यक्ति के संदर्भ में विचारणीय विषय है।

दलित कविता समय की ज़रूरत है और वह समय के अनुरूप ही अपने आकार, प्रकार और संवेदना में परिवर्तित होती रहती है तथा समाज में जागृति का संदेश भी दे रही है। दलित कविता में चित्रित जीवन स्वानुभूति का प्रमाण है। जैसे वर्ण-व्यवस्था, समाज के दलन, उत्पीड़न, शोषण, अपमान, महिलाओं के साथ बलात्कार, व्यभिचार आदि बातें सामने रखकर उसके विरोध, प्रतिरोध या प्रतिशोध के लिए उक्साती है। सामाजिक समस्याओं की अभिव्यक्ति दलित कविता केलिए अपनी अस्मिता के पहचान की समस्या है। अतः वह सबसे पहले अपनी भाषा की तलाश करेंगे।

दलित कविता के शिल्प का आधार भाषा और उसका प्रयोग है। वर्ण-जाति विहीन समाज की स्थापना ही दलित कविता का उद्देश्य है। उसको प्रेरणा देनेवाले साहित्य में दलित भाषा का सौन्दर्य देख सकते हैं। मुंशी प्रेमचन्द का विचार उल्लेखनीय है - ''सुंदरता की कसौटी बदलनी चाहिए। अभी तक कलाकारों ने शासकों पर अवलम्बित रहकर केवल उनका गान किया है, किन्तु आज झोंपडी और उसकी शुष्कता का चित्रण

होना आवश्यक हो गया है। कुम्हलाए और आँसुओं से सिक्त मुँह का चित्रण होना चाहिए''।[१] स्पष्ट है कि सौन्दर्य की अवधारणा बदलती रहती है। परंपरागत सौन्दर्यशास्त्र के लक्ष्य को छोडकर जीवन के यथार्थ को दलित कविता चित्रित करती है। अतः सबसे पहले सौन्दर्यशास्त्र संबन्धी दलित अवधाराणा को स्पष्ट कर भाषा पर विचार करना संगत रहेगा।

४.१.१ सौंदर्य संबन्धी अवधारण

'सौंदर्य' शब्द सुन्दर से बना है। जिसकी व्युत्पत्ति 'सु + अन्द + अरन् + से हुई है। चारुत्व, वैचित्र्य, शोभा, कांति, सौष्ठव, रमणीयता, लालित्य आदि सौंदर्य के पर्याय शब्द हैं''।[२] ''कलाओं में निहित सौन्दर्य के सिद्धान्त की व्याख्या करने वाला शास्त्र को सौंदर्यशास्त्र कहते हैं। १९३५-५० ई के लगभग जर्मन सौंदर्यशास्त्री बाम गार्टन ने सबसे पहले सौंदर्यशास्त्र (Aesthetice) को आधुनिक अर्थ में प्रयोग किया। इसलिए बाम गार्टन को सौंदर्यशास्त्र का जनक माना जाता है''।[३] सौंदर्यशास्त्र हिन्दी में 'एस्थेटिक्स' का पर्याय बनकर प्रचलित हुआ है। 'एस्थेटिक्स' शब्द ग्रीक भाषा से लिया गया है जिसका अर्थ है, ऐंद्रिय सुख की चेतना। प्रसिद्ध विचारक हिगेल अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'द फिलाँसफी आँफ फाइन आर्ट' की भूमिका में सौंदर्यशास्त्र पर विचार करते हुए यह मतव्य व्यक्त करते हैं कि सौन्दर्यशास्त्र का संबंध ललित कलाओं के माध्यम से अभिव्यक्त सौन्दर्यों के साथ है।

हिन्दी साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र संस्कृत के काव्यशास्त्र की परंपरा तथा पाश्चात्य सौंदर्यशास्त्र की परंपरा पर आधारित है। क्योंकि पहले का आधार ब्राह्मणवादी, सांमतवादी दृष्टिकोण है, तो दूसरे का सामंतवादी और पूंजीवादी है। पारम्परिक

---

१ प्रेमचन्द, *कुछ विचार,* पृ. १६-१७.

२ पूरनचन्द्र टण्डन, *सौन्दर्य विमर्श,* पृ. १.२. (से उद्घृत)

३ डॉ. नगेन्द्र, *भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका,* पृ. १.

सौन्दर्यशास्त्री पण्डित जगन्नाथ के 'वाक्यं रसात्मकं काव्यं' अर्थात वाणी की रसात्मकता ही काव्य है, को दोहराता है। सौंदर्यशास्त्र के स्वरूप का निर्धारण सौंदर्य सृजन, सौंदर्य ग्रहण एवं सौंदर्यानुभूति के आधार पर किया जाता है। सौन्दर्य संबन्धी भारतीय विचारधारा वस्तु के आंतरिक पक्ष को और पाश्चात्य विचारधारा उसके बाह्य पक्ष को प्रमुखता देती है। डॉ. नगेन्द्र ने सौंदर्यशास्त्र की विवेचना करते हुए लिखा है कि- ''सौन्दर्यशास्त्र ललित कलाओं के रूप में अभिव्यक्त सौन्दर्य से संबंद्ध मौलिक प्रश्नों के तात्विक विवेचन और उसके परिणामी सिद्धान्तों की संहिता का नाम है''।[१] आधुनिक भारतीय चिन्तकों एवं आलोचकों ने सौन्दर्य तत्व के संबन्ध में अपना-अपना मत स्पष्ट किया है। रवीन्द्रनाथ ठाकूर कहते हैं ''जो उपयोगिता की किसी भावना के बिना हमें आनन्द प्रदान करती है, उसे सौन्दर्य की भावना कहा जाता है''।[२] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल सौन्दर्य की वस्तुनिष्ठ सत्ता के पक्षधर है। उन्होंने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किया है- ''कुछ रूप-रंग की वस्तुएँ ऐसी होती हैं, जो हमारे मन में आते ही थोडी देर केलिए हमारी सत्ता पर अधिकार कर लेती है कि उसका ज्ञान ही हवा हो जाता है और हम उन वस्तुओं की भावना के रूप में ही परिणत हो जाते हैं। हमारी अन्तः सत्ता की यही तदाकार परिणति सौन्दर्य की अनुभूति है।''[३]

उपर्युक्त विचार एवं परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि मुख्यधारा सौन्दर्यशास्त्र का कर्तव्य कृति को आनंद प्रदान करना ही है। परम्परावादी सौन्दर्यशास्त्र की परिभाषा को दलित कविता विरोध करती है, क्योंकि ये वास्तविकता के सामान्य विषयगत गुणों से दूर है। दलित कविता जीवनानुभवों की प्रामाणिकता को लक्ष्य करती है, तथा बाबा अंबेडकर-दर्शन के विचार तत्व पर अधारित है। इसलिए दलित कविता का सौन्दर्य

---

१ डॉ. नगेन्द्र, *भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका,* पृ. ४.

२ डॉ. पूरनचन्द्र टण्डन, *सौन्दर्य विमर्श,* पृ. २३ (से उद्घृत)

३ वहीं

पारंपरिक सौन्दर्यशास्त्र से भिन्न है। डॉ. एन सिंह का मानना है कि - ''दलित साहित्य का शब्द सौन्दर्य, प्रहार में है। सम्मोहन में नहीं''।[१] पारम्परिक सौन्दर्यशास्त्र का स्थायी भाव आनन्द है, तथा कृति के आकार और शब्द की रमणीयता की प्रधानता है। जो आनन्द प्रदान करता है वही श्रेष्ठ साहित्य है। काव्यशास्त्र में भी उच्च, कुलोत्पन्न, धीरोदत्त व्यक्ति ही नायक हो सकता है। दलित कविता अपने सामाजिक परेविश की कविता है, इसलिए घोषित रसों के द्वारा दलित कविताओं के केंद्रीय भाव का मूल्याकंन संभव नहीं है। ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं- ''कला और साहित्य में सौंदर्यबोध जहाँ संस्कारजन्य होता है, वहीं परिवेशगत भी। पसन्द-नापसन्द जीवन मूल्यों का आधार बनती है। दलित साहित्य एक साहित्यिक आन्दोलन भर नहीं है। दलित समाज की सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक आकांक्षाएँ साहित्य की भाषा में व्यक्त हो रही हैं। इसलिए वह हिन्दी की मुख्यधारा के उस सौन्दर्यशास्त्र के वर्चस्व से मुक्त है, जो संस्कृत के काव्यशास्त्र से जुडा है''।[२] जहाँ तक दलित साहित्य की कसौटी का सवाल था, उस समय समकालीन साहित्य की प्रचलित कसौटी सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् मानी जाती थी, जिसे दलित साहित्यकारों ने नकारा। शरण कुमार लिंबाले ने अपने पुस्तक 'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र' में दलित साहित्य के सौन्दर्य संबन्धी अवधारणा को इस प्रकार व्यक्त करते हैं - ''सत्यम, शिवम, सुंदरम ये सब भेदभाव की कल्पनाएँ हैं जिसके आधार पर आम आदमी का शोषण हुआ है। दरअसल सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् की अवधारणा तो सवर्ण समाज के स्वार्थ-साधन के लिए रची गई साजिश है। उनकी व्याख्या बदलने की जरूरत है। उन्हें अधिक ऐहिक और सामाजिक करने की आवश्यकता है। मनुष्य सर्वप्रथम मनुष्य है यही सत्य है, मनुष्य की स्वतंत्रता शिव है, मनुष्य की मनुष्यता ही सौंदर्य है। विश्व में मनुष्य जैसा सत्य और सुंदरम दूसरी कोई चीज़ नहीं है। इसीलिए तो मनुष्य की

---

१ निरंजन कुमार, *दलित साहित्य का समाजशास्त्र,*पृ. १२९.

२ ओमप्रकाश वाल्मीकि, *दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र,* पृ. ४७.

समता, न्याय और बंधुत्व की चर्चा होना आवश्यक है।''[१] दलित समाज की सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक, आकांक्षाएँ साहित्य की भाषा में व्यक्त हो रही है। इसलिए वह हिन्दी की मुख्यधारा के उस सौन्दर्यशास्त्र के वर्चस्व से मुक्त है, जो संस्कृत के काव्यशास्त्र से जुड़ा है। दलित कविता का सौन्दर्यशास्त्र जीवन मूल्य, सामाजिक प्रतिबद्धता, समता, स्वतंत्रता, भाईचारा, न्याय और चेतना जैसे मूल तत्वों पर आधारित है। दलित कविता का सौंदर्य प्रतिरोध, नकार और विद्रोही प्रवृत्ति में है। ये प्रतिरोध वर्णव्यवस्था, जातिभेद, ऊँच-नीच, सामंती सोच, सामाजिक- आर्थिक विषमताओं के प्रति है। वह हिन्दू संस्कृति की पहचान रखनेवाले मिथकों प्रतीकों और विचारों को नकारता है। दलित कविता सामाजिक परिवर्तन की कविता है, इसलिए इसके सौन्दर्यशास्त्र में भी बदलाव आ जाएँगे। इसका सौन्दर्यशास्त्र अपने आप बन जाते हैं।

४.१.२ दलित कविता में भाषा

दलित कविता के शिल्प का आधार भाषा है। इसकी भाषा अन्य कविता की भाषा से भिन्न, भाषा का पुनर्पाठ या पुनर्निर्माण ही है। इसमें परंपरागत साहित्यिक भाषा, काव्य-शैली और प्रस्तुतीकरण को नकार कर सर्वसामान्य भाषा का प्रयोग किया है जो दलितों को वाणी दे सकें। दलित कविता में जो बिम्ब, प्रतीक, मिथक व भाषा का संस्कार हैं वह विद्रोहात्मक, आक्रोश एवं यथार्थवादी है, जो मुख्य धारा से बिलकुल भिन्न है। जैसे भोगा वैसे लिखा। इसलिए इसमें कुछ ऐसे शब्दों का भी प्रयोग हो जाता है, जो मुख्यधारा के लिए अश्लील और वर्जित रहे हैं, बल्कि दलित कविता के लिए श्लील हैं। जिससे दलितों की अस्मिता एवं चेतना बन रही हैं वही उसकी भाषा है। निराला ने कहा

---

१ शरण कुमार लिंबाले, दलित साहित्य सौन्दर्यशास्त्र, पृ. ३३.

था ''भारत वर्ष का युग शूद्र शक्ति के उत्थान का युग है और देश का पुनरुद्धान उन्हीं के जागरण की प्रतीक्षा कर रही है''[१]।

दलित कवि ने अपनी बोली को अपनी रचना का उपयुक्त माध्यम समझता है। इसलिए दलित कविता विशिष्ट दलित जीवन को विशिष्ट शब्दावली में चित्रित करती है। दलित कविता की भाषा पर टिप्पणी करते हुए कमलेश्वर ने कहा है कि- ''दलित साहित्य के सभी लेखक गहरे जीवन संदर्भों से जुडे हुए लेखक हैं, जिन्होंने व्यक्तिगत और किताबी भाषा से अपने को अलग करके समय के विस्तार में जी रहे आम आदमी की बोली को रचनात्मक भाषा का दर्जा दिया है। इन्होंने अपने प्रदेशों, अंचलों, गली-कूचों, नगरों, महानगरों में बिखरी और वातावरण में समाई भाषा को नये अर्थ दिये हैं''।[२] कविता व्यक्तिगत अनुभवों से संपृक्त होने के साथ ही समूह मन के अनुभवों की अनुभूति भी है। किसी भी कविता की भाषा के विश्लेषण द्वारा ही कविता के मर्म को समझा जा सकता है। विजयेन्द्र नारायण सिंह ने कहा है ''भाषा ही वह बैरोमीटर है, जिससे कवि की अनुभूति का दबाव नापा जा सकता है, कविता के संघटन में भाषा- प्रयोग की स्थिति केन्द्रीय है। अनुभूति की नाभि तक पहुँचने का निकटतम बिन्दु यही है''।[३]

गैर दलित रमणिका गुप्ता आज के दलित साहित्य की भाषा का समर्थन करती हुई लिखती हैं- ''इस साहित्य को दलित लिखता है और वह भुक्तभोगी होता है, यानी वंचनाओं, निषेधों, प्रतिबंधों और अवरोधों के बीच जिन्दा रहने का आदि होता है। इस साहित्य को वह लिखता है जो यथार्थ की ज़मीन पर खड़ा है कल्पना के आकाश में नहीं। इसलिए उनकी भाषा कुलीन नहीं है। कुलीन भाषा इस काबिल नहीं है कि दलित

---

१ डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, *दलित साहित्य सृजन के सन्दर्भ*, पृ. ११५. (से उद्धृत)

२ कमलेश्वर, *दलित साहित्य संसद,* स्मरणिक तीसरा दलित साहित्य सम्मेलन, २८ जनुवरी, १९७९

३ प्रो. विजयेन्द्र नारायण सिंह, आलोचना, जनुवरी १, मार्च १९७०.

की ज़िन्दगी के खुदरेपन को समेट सके''।[१] डॉ. हरपाल सिंह अरुष दलित कविता की भाषा का जिक्र करते हुए लिखते हैं कि ''इस साहित्य की अग्रसता और विविधताओं के विकास के साथ साथ भाषा के प्रयोग और प्रयोगधर्मिता के आगे बढ़ने के लक्षण और अवसर भी खुले धरातल की तरह सामने विद्यमान है''।[२] डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी के शब्दों में ''भाषिक संरचना और साहित्य को मानव समग्रता और जागरित संदर्भ में विद्रोही तेवर के साथ लिखने, देखने और जीने का प्रयोग दलित साहित्य के रचनाकारों ने किया हैं''।[३] दलित जीवन की विसंगतियाँ, उत्पीडन, शोषण और दमन के कारण इसकी भाषा प्रतिरोध/प्रतिशोध /क्रांति एवं विद्रोही बन गये हैं। दलित कविता की भाषा केवल नकार या विरोध ही नहीं बल्कि परिवर्तन की माँग भी करती है। अपने अनुभवजन्य बात को बताने केलिए सामान्य बोलचाल की भाषा को अपनाया है। ऐसी भाषा में न जादू है, न चमत्कार बल्कि सच्चाई है।

दलित कविता की भाषा यथार्थ की भाषा है। अपने अनुभवजन्य बात को समाज से अभिव्यक्त करने के लिए सरल बोलचाल की भाषा को अपनाया है। दलित कविता में भी प्रेषणीयता को अधिक महत्व दिया गया है। भाषा का चमत्कार इस कविता में नहीं मिलती। दलित कविता में जनभाषा के शब्दों और आंचलिक बोलियों को अधिक महत्व दिया गया है। उसकी भाषा अपनी अभिव्यक्ति को सशक्त बनाती है।

दलित कविता की भाषा सपाट बयान है लेकिन अनुभूति गहरी है शब्दों में तीखापन है। सुशीला जी की 'मैने कुछ शब्द जोडे है' नामक कविता की पंक्तियाँ हैं-

---

१ हिन्दी मलयालम दलित साहित्यः कविता के विशेष संदर्भ में. पृ.२६

२ हरपाल सिंह अरुष, दलित साहित्य की भूमिका, पृ. ८५.

३ हिन्दी मलयालम दलित साहित्यः कविता के विशेष सन्दर्भ में, पृ. २७.

''नवजागृति ओर क्रांति की/शब्द भेदी बाण है ये
शास्त्र की झनकार है ये/ रणभेरी की पुकार है ये''।[१]

कावेरी जी 'प्रेरणा' नामक कविता में लिखती हैं, पुरुष तुम इतना स्वतंत्र होने पर भी है, ऊपर उठने के लिए तैयार नहीं है-

''क्षितिज के पार/एक और दिनिया की
खोज करो/ किन्तु तू काहे को मानेगा रे''![२]

एन. आर. सागर के 'आज़ाद है हम' काव्य-संग्रह में सहज भाषा में दलित समाज की चेतना को जगाते हुए कहा है-

''हमारा संघर्ष समानता के लिए/स्वतंत्रता के लिए
अस्मिता की सुरक्षा के लिए है
सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए है''।[३]

डॉ. कुसुम वियोगी की कविता के तेवर बहुत तीखे हैं-

''उठे/हज़ारों हाथ उठें/एक साथ शोषण के विरुद्ध
बनके अग्नि फूल/करने को विध्वंस''।[४]

जयप्रकाश कर्दम 'तिनका तिनका आग' में दलित समाज की पीडाओं और उससे जुडी समाज की व्यापक समस्याओं की मुखर अनुभूतियों को स्पष्ट और सरल भाषा के माध्यम से (जो जनता से जुड़ी है) बताते हैं-

---

१ डॉ. सुशील टाकभौरे, *तुमने उसे कब पहचाना,* पृ. २५.

२ विमल थोरात, सूरज बडत्या, भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर, पृ. १९.

३ प्रणव कुमार वद्योपाध्याय (सं.), *दलित प्रसंग*, पृ. ७९.

४ वही, पृ. ७९.

''मेरे दोस्त/मेरे लिए उस भाषा में
मंगल कामना मत करो/जो भाषा/कभी मेरी नहीं रही
जिसके लिए रहा मैं सदैव/अन्त्यज''[१]

भगीरथ मेघवाल 'खिड़कियाँ खोल दो' नामक कविता में दलित समाज से अभिजनों द्वारा धोपी हुई पंरपराओं और रूढियों का मोह छोड़ने को कहते हैं-

''वक्त के सामने/दीवार बनकर खड़े मत रहो
लकीर के फकीर बनकर अड़े/मत रहो''।[२]

डॉ. जयप्रकाश कर्दम, सीधी-सपाट भाषा में कुछ इस तरह कहते हैं-

''झूठे है वे लोग/ जो कहते हैं कि देश में जातिवाद
आंखिरी सांस ले रहा है।
धोखेबाज है वे लोग/जो कहते हैं कि
अस्पृश्यता का जनाजा निकल चुका है''।[३]

संसार में दलितों का कोई अपना नहीं, सिर्फ उनकी जाति ही है। समय के अनुसार सब कुछ बदलता है। लेकिन दलितों की जाति के नाम पर हो रही हीनता कभी नहीं बदलती। कवि असंगघोष 'तुम भी'! नामक कविता में लिखते हैं-

''मेरी जात/वहीं की वहीं है/साली चमार जात!
समय के साथ/न बदलती है/न छूटती है।''[४]

---

१ जयप्रकाश कर्दम (सं) दलित साहित्य वार्षिकी, २००४, पृ. १९९.

२ रमणिका गुप्ता, *दलित चेतना,* पृ. ५७.

३ कालीचरण स्नेही, *हिन्दी साहित्य में दलित अस्मिता*, पृ. १०५.

४ असंगघोष, *हम गवाही देंगे,* पृ. ३९.

मोहन सिंह निमेष सामाजिक कुरीतियों और शोषण से लड़कर मानव समाज की स्थापना करना चाहते हैं। 'असमर्थता' नामक कविता में वे माँ से विनम्र होकर कहते हैं-

''मुझे इस झोपड़ी से निकल,
समाज के हर शोषण का सामना करने दे,
अहं के टीलों को खोद/खाईयों को भरने दे।
मैं तेरे शताब्दियों के संताप को,
ओढना नहीं चाहता''।[१]

दलित आज भी स्वतंत्र भारत में निंदनीय कर्म कर रहा है। देश, काल, वातावरण के अनुकूल कवि राममनोहर 'स्वतंत्र भारत में' नामक कविता में सवाल करते हुए लिखते हैं-

''कई बाज बेइदज्जत होगी
बेटी बेज़ार फिर भी नहीं मिल सकेगा-न्याय
सोचता हूँ संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों के
बावजूद दलित को क्या मिला है?
न्याय रोटी सम्मान''।[२]

डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी का कविता संग्रह 'मूक माटी की मुखरता' में दलित जीवन की व्यथाकथा को अभिव्यंजित करते हुए उन्हें विद्रोह के लिए शक्तिमत्ता के साथ प्रेरित करते हैं। एक ओर दलित वर्ग के साथ अब तक हुए अन्यायों और विवश स्थितियों का चित्रण है, तो दूसरी ओर स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् बाबा साहब अंबेडकर

---

१ जयप्रकाश कर्दम (सं.), दलित साहित्य वार्षिकी, २०००, पृ. २२०.

२ वही, पृ. २२१.

की प्रेरणा से प्राप्त शक्ति के कारण मुखर होती ऊर्जा की अभिव्यंजना भी कवि ने सजगता से की है।

"पेट अभी भरा नहीं है/जुल्मों के सींग वाले
ब्रह्मराक्षस का/आज़ादी के बाद भी"।[१]

अतः आज भी यह स्थिति एक गहरे दर्द की सतत संरचना करती रही है।

सुखवीर सिंह की 'बयान बाहर' नामक कविता संग्रह अपने दलित जीवन से संबंधित सरोकारों के कारण बहु चर्चित रहा। यह लंबी कविता अनुभवजन्य शैली में किसी दलित के आगे बढ़ने की प्रक्रिया को रेखांकित करती है-

"उस दिन मैंने/दूसरों के आगे बढ़ने के लिए
रास्ता छोड देने की/बन गई लीक से
अलग हटकर अपना पांव जमा
खुद को आगे बढाना चाहा/तभी मैंने
आग को चिम्टे की नोंक पर नहीं अपनी हथेली पर सुलगते पाया"।[२]

सुदेश तनवर 'मैं और वे' नामक कविता में दूसरों से अपना फर्क बताते हुए लिखते हैं-

"वे कहते/भगवान की महिमा/मैं कहता
सदियों की साजिश"।[३]

---

१ डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, *दलित साहित्य सृजन के संदर्भ,*पृ. १५७.

२ डॉ. एन. सिंह, *दर्द के दस्तावेज़*, पृ. ४३.

३ विमल थोरात, सूरज बडत्या, *भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर*, पृ. ६५.

रामभरत पासी 'बैसाखियाँ' नामक कविता में सवर्णों से प्रतिशोध करता है कि दलित वर्ग अब 'गाडी का जुआ' नहीं, वे अब अपने पैरों में खड़ा होना चाहता है।

''तुम नहीं पहना पाओगे/ हमारे कंधों को
गाडी का जुआ/नहीं कर पाओगे
हमारा स्वाभिमान''।[१]

हिन्दी दलित कविता में अनुभवजन्य अभिव्यक्ति की अनूठी बारिकियाँ प्रस्तुत किया जाता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी अछूत होने की निजी कोफत को ही नहीं बल्कि पूरे समाज के दुख को व्यक्त किया है, 'फिर भी' कविता की पंक्तियाँ हैं-

''नहीं बोए कांठे/बाटे सिर्फ/रागुन प्यार के
फिर भी रहे अछूत.....''।[२]

उनका व्यक्ति समाज को अपने में कैसे समाहित करता है, 'वह मैं हूँ!' कविता में वे कहते हैं-

''जो चमक है-/वह मैं हूँ
खेत की माटी में/उगते अन्न की खुशबू/ मैं हूँ.....''।[३]

रूढीग्रस्त सामाजिक सम्बन्धों और अस्पृश्यता के अनुभवों से उभरी पीडा को पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी व्यक्त करते हैं -

''कभी द्रविड़, कहीं शूद्र, कहीं दास या फिर
हरिजन आदिवासी कई-कई नाम देकर

---

१ डॉ. एन. सिंह, *चेतना के स्वर*, पृ. ३१.

२ ओमप्रकाश वाल्मीकि, *बस्स! बहुत हो चुका,* पृ. ५४.

३ वही, पृ. १६.

मेरा सत्य, मेरी अस्मिता मेरा/सभी कुछ चुरा लिया है तुमने''।[१]

आज कानून और विधान की मान्यताओं ने खुली अस्पृश्यता को तो मिटा दिया है किन्तु वह सामाजिक सम्बन्धों में आज भी भूखे की आग की तरह सुलगी रही है।

डॉ. देवेन्द्र दीपक 'अंतर' नामक कविता में कहते हैं-

''तुमने जीवन भर/हाथों में पकडी कलम
मेरे हाथों ने जीवन भर/लकडी की मुठवाली झाडू
मेरे और तुम्हारे हाथों का/स्पर्श/एक जैसा कैसे होगा''।[२]

डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन को बचपन से ही जीवन में कटु अनुभवों को झेलना पड़ा है। वे अपनी कांटों भरे बचपन याद करना नहीं चाहता। 'मातृस्मरण' में वे लिखते हैं-

''पेट भरने के लिए क्या-क्या नहीं/मैंने किया
लोग बचपन केलिए आवाज़ देते हैं/कि वह लौटे
उजालों की करे बरसात/पर ओ!
मेरे दुःखों भरे बचपन/न आ, नहीं लौटा/पुराने दर्द, काली रात''।[३]

डॉ. कुसुम वियोगी ने दलित की मानसिकता को मनोवैज्ञानिक रूप से चित्रित किया है और 'टोंट' मारते हुए उसे अपनी मानसिकता बदलने के लिए प्रेरित करते हैं-

''अब मैं तुम्हें जानता ही नहीं
वरन
समझने लगा हूँ, तुम्हारी मानसिकता

---

१ डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, *दलित साहित्यः सृजन के संदर्भ*, पृ. १५८.

२ डॉ. धीरजभाई वणकर, *दलित विमर्श,* पृ. ३४.

३ डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन, *क्रौंच हूँ मैं,* पृ. ५४.

सदियों से मैला ढोते-ढोते

बसिया गई है''...[१]

दलित वर्ग सदियों से लेकर आज तक अपनी ज़िन्दगी के लिए खेलते हैं। डॉ. पूरन सिंह संवेदना प्रकट करते हुए लिखते हैं कि ये इन्सान के बीच कैसा 'खेल' खेल रहा है-

''मैं रोटी के लिए/जान पर खेलता हूँ/और/तुम

खेलने के लिए मुझसे/खेलते हो/ ये

कैसे-कैसे खेल है/अपने-अपने''।[२]

स्त्री सदियों से पुरुष समाज की गुलामी है। इस कैदी हुई ज़िन्दगी से वह मुक्त होना चाहती है। कवयित्री रजनी तिलक 'मुक्ति' कविता में अपने संवेदना को यूँ व्यक्त करती हैं-

''मैं खुद से/आज़ादी चाहती हूँ;

द्वेष, मोह-ममता, जीवन-मृत्यु, सुख-दुःख

जकड़न-मुक्त होना चाहती हूँ?''[३]

दलित होने से समाज के हर एक व्यक्ति को कितनी यातना और पीडा सहनी पड़ती है। कवि असंगघोष इस पीडा को व्यक्तिगत रूप से 'आखिर कब तक'? कविता में व्यक्त करते हैं-

''मुझे ही क्यों/हर बार

होना पड़ता है

---

१ डॉ. कुसुम वियोगी, *टुकडे टुकडे ढंश,* पृ. ७४.

२ विमल थोरात, सूरज बडत्या, *भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर*, पृ. १०३.

३ रजनी तिलक, *पदचाप*, पृ. १३.

तुम्हारी क्रूरता का/

शिकार/अधिकार कब तक''?[१]

'विरासत' नामक कविता में ओमप्रकाश जी ने दलितों के अनुभवजन्य कटु आत्मदुःख को व्यक्त किया है। देश में बनाये हुए अधिकाधिक चीज़ों में दलितों का ही हाथ है, फिर भी उसे अछूत या अंत्यज नाम देकर हटाया है, वे पूछते हैं-

''जाति कही जाए जिनकी नीच

आप बता सकते हैं/यह किस सभ्यता और संस्कृति की देन है''?[२]

राजनीतिक नेता केलिए समाज सेवा करना अब उनका कर्तव्य नहीं रह गया है। जनता को सुविधाओं के नाम पर जो कुछ भी वे देते हैं वह ऊँट के मुँह में जीरे की भाँति होता है। इसके प्रति डॉ. धर्मवीर अपनी कविता में व्यंग्य करते हुए कहते हैं-

''चार वोट अधिक बटोर आपे से बाहर हो गए,

दस गुंडे इकट्ठे कर नारे लगवा दिए,

बीस गेहू के दाने बांट कोडी- कुहले वाले हो गए,

दो अक्षर अधिक पढ़े लुटेरे बन गए''[३]।

हिन्दू धर्म ने दलितों को भगवान का भय दिखाकर शोषण करते आये हैं। लेकिन अब समय तो आ गया है विद्रोह करने की। कवि राजपाल सिंह 'राज' अपनी प्रतिक्रिया इस प्रकार व्यक्त करते हैं-

---

१ असंगघोष, *हम गवाही देगें?*पृ. १८.

२ ओमप्रकाश वाल्मीकि, *अब ओर नहीं,* पृ. ९३.

३ डॉ. धर्मवीर, *हीरामन,* पृ. ४९

''अब हम तुम्हारे भगवान को मानने को तैयार नहीं।
कथा-भगवान, यज्ञ-जागरण करने को तैयार नहीं।
यह ढोंग है, ढकोसला है, आडम्बर है
गुमराह करने का बहाना है।
तेली के बैल की तरह सुबह से शाम तक,
अधौटे बाँधकर घुमाना है।
अब हम सर्चत हैं, सजह हैं, शिक्षित हैं, संगठित/संघर्ष को तैयार हैं''[१]।

चिरंजी कटारिया सामंती ठाकुर की अमानवीय अनुभवजन्य प्रवृत्ति को यूँ व्यक्त करते हैं।

''याद है भली-भाँति मुझे/ठाकूर का 'बिलाब' जैसा सख्त चेहरा''।[२]

इस प्रकार दलित कविता की भाषा आम आदमी की अनुभवजन्य सरल भाषा ही है। इसमें सौन्दर्य है जो जीवन की सच्चाई है। दलित कविता की भाषा दलित संस्कृति की उपज है। यह इसलिए है कि दलितों केलिए संस्कृति संघर्ष की समग्र पद्धति है। इनकी भाषा का मौखिक एवं परंपरागत रूप दलित गीतों में देखा जा सकता है। इसी मौखिक भाषा की पुनर अभिव्यक्ति दलित कविता की भाषा में भी देखनो को मिलती है। अपने भावों और विचारों को सशक्त बनाने केलिए दलितों की भाषा में लोकोक्ति एवं मुहावरों की प्रधानता है। लोक में प्रचलित उक्ति ही लोकोक्ति है। ये लोक जीवन के अनुभवों के आधार पर बनती है। लोकोक्ति या मुहावरा लोक की भावभूमि से पैदा होती है। ऐसा कहा जा सकता है कि आज भी दलितों को अपनी भाषा का पूर्ण रूप मिला नहीं है दलित अपनी भाषा ढूँढ़ता है।

---

१ राजपाल सिंह 'राज', *आज का समय,* (सं) डॉ. तेज सिंह, पृ. ६५.

२ डॉ. रजत रानी मीनु, *हिन्दी दलित कविता*, पृ. १३४.

४.१.२.१ भाषा में प्रतिरोधी स्वर

सामाजिक एवं साहित्यिक प्रतिरोध की प्रक्रिया में सवर्ण सामाजिक मूल्यों के खिलाफ मानवीय मूल्यों को प्रतिष्ठित करने की प्रक्रिया शामिल है। इस प्रक्रिया में दलितों को अपना इतिहास, संस्कृति, जातिजन्य विशेषताओं का अध्ययन कर सवर्ण मानसिकता एवं मूल्यों के बदले में समाज के पीड़ित जनसमुदायों की संस्कृति को पुनः प्रतिष्ठित करना है। इस पुनः प्रतिष्ठा में प्रतिरोधी स्वर का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रतिरोधी स्वर की पहचान एक नई भाषा देने में है। इसलिए स्वाभाविक है कि नई भाषा की खोज में अपनी- अपनी संस्कृतियों के शब्द प्रयोग, बिंब, मिथक आदि का प्रयोग अनिवार्य बन जाता है।

दलित साहित्यकार कभी ऐसी भाषा का इस्तेमाल करते हैं, जो दलितों की पीड़ा, अपमान और व्यथा तथा जन-सामान्य की आशा-आकांक्षाओं के यथार्थ को सही अभिव्यक्ति दे सकें। इसलिए इसमें कुछ ऐसे शब्दों का भी प्रयोग हो जाता है, जो साहित्य के लिए अश्लील और वर्जित रहे हैं। दलित साहित्य की भाषा पर गाली-गलौज के आरोप का उत्तर देते हुए प्रखर दलित आलोचक कंवल भारती कहते हैं कि-

> ''यह बताओ/बलात्कार की शिकार
> तुम्हारी माँ की भाषा कैसी होगी/कैसे होंगे
> गुलामी की ज़िन्दगी जीने वाले/तुम्हारे वाँप के विचार''।[१]

सदियों से सवर्णों ने दलितों को भ्रमजाल में फॅसाकर उसकी खून चूसता रहा। इसकी प्रतिक्रिया सुशीला टाकभौरे ने 'भ्रमजाल' कविता में व्यक्त किया है-

> ''तुम्हें पूजते रहे/उच्चवर्ण, महान, ज्ञानी

---

१ कंवल भारती, *तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती*, पृ. ५३.

महात्मा और भगवान/समझते रहे/मगर तुम निर्मोही
झूठे, मक्कार, धोखेबाज, बेईमान/बेगाने ही रहे''।[१]

दलित अब शब्द की ताकत और महत्व को पहचानने लगे हैं। शब्द ही तो है जो दलितों पर हमेशा चोट करते आए हैं- दलित से हरिजन और हरिजन से दलित। अन्याय और अत्याचार के खिलाफ़ लड़ने के लिए और क्रांति लाने के लिए हथियार नहीं शब्द ही काम आते हैं। दलित कवि मोहनदास नैमिशराय अपनी 'आंदोलन' शीर्षक कविता में कहते हैं-

''तुम्हारे पास केवल शब्द है/उन्हीं को तुम्हें आंदोलन बनाना है
क्रांति हथियारों से नहीं/शब्दों से आती है''।[२]

अब तक दलित समाज को स्वर्ग-नरक, भाग्य-विधाता, नियति, भगवान, भय, पुनर्जन्म आदि मुख्यधारा समाज के तत्वों से उलझ- उलझकर शोषण कर रहे थे। स्वाभाविक है कि दलित कवि यह पहचान कर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। अ. ल. उके. 'जातिवादी कौन' नामक कविता में कहते हैं कि अब भाग्य और भगवान के नाम में उलझाकर नहीं रखा जा सकता। अब तो क्रांति होगी और वो क्रांति तुम्हारी छाती से ही गुज़रेगी-

''तुमने/भाग्य और भगवान का/भय दिखाकर
हमारा बहुत किया है शोषण/मगर इस कंदे में
अब और उलझाकर/नहीं रख सकते।
क्रांति तुम्हारी छाती से गुज़रेगी.....''।[३]

---

१ डॉ. सुशील टाकभौरे, *हमारे हिस्से का सूरज,* पृ. ६४.

२ कंबल भारती, *दलित निर्वाचित कविताएँ*, पृ. १०७.

३ जयप्रकाश कर्दम (सं) दलित साहित्य वार्षिकी २०००, पृ. ११४

मुख्यधारा साहित्य में हो या दलित साहित्य में स्त्री की स्थिति अतिशोचनीय है। दलित स्त्री की पीडा दो तरह से है; एक स्त्री की पीडा दूसरी दलित स्त्री की पीडा। समाज में स्त्री को उपेक्षित और पराधीन बनाए रखनेवाले सामाजिक नियम और विधान को नकारते हुए 'आज की खुद्धार औरत' नामक कविता में सुशीला टाकभौरे अपना आक्रोश यूँ व्यक्त करती हैं-

''आज यह खुद्दार औरत/अपने आप को पहचान गई है
इसे यूँ न सताओ/वरना यह भी
नंगेपन पर उतर आएगी/तुम्हारे सर्वस्व को नकारकर
तुम्हें नीचा दिखाएगी''।[१]

भारतीय इतिहास और संस्कृति में दलितों को हमेशा नीचा दिखाया है। समाज वर्ण और जाति के नाम पर हमेशा उसके ऊपर दमन की नीति अपनाया है। इसी इतिहास बोध को वाणी देते हुए कवि श्यौराज सिंह 'बेचैन' ने दलित समाज के आक्रोश को सामाजिक प्रतिरोध की शक्ल में स्वर दिया है कि-

''जात-पाँत का तनाव/ ऊँच-नीच भेद- भाव
पेट के सवाल का/जो दे नहीं सके जवाब
ऐसी रहनुमाई को हरायेंगे- हरायेंगे''।[२]

श्री सूरजपाल चौहान वर्ण आधारित समाज व्यवस्था को मरी हुई व्यवस्था मानते हुए शोषित समाज को इसका पेट फाड़ डालने के लिए ललकारते हैं। 'छेद डाल आँखें और फाड़ दे पेट' शीर्षक कविता में आपने मुंशी प्रेमचन्द की कहानी 'कफन' के घीसू व माधव और 'दूध का दाम' कहानी की भंगी को माध्यम बनाकर समतावादी क्रान्ति दर्शन

---

१ डॉ. सुशीला टाकभौरे, *तुमने उसे कब पहचाना,* पृ. ४१.

२ श्यौराज सिंह बेचैन, *नई फसल,* पृ.३

को व्यक्त किया है। दलित-चिन्तन का उत्कर्ष बयान करने वाली इस कविता की पंक्तियाँ हैं-

''अब उठा झाड़ू/बना दे आततायी को मोर।
घीसू/उठा तकुआ/छेद डाल आँखें
और माधव तू/थाम ले राँपी/फाड डाल पेट
इस चतुरंगी व्यवस्था का''।[१]

समाज में शोषक और शोषित वर्ग सदा से रहे हैं । इसका कारण शोषितों की शोषण सहते रहने की प्रवृत्ति है। प्रोफसर शत्रुघ्न कुमार समाज से शोषण मिटाने के लिए शोषित को क्रान्तिधर्मी प्रतिपक्ष बनाने की पहल करते हैं। 'सुबह-सुबह' शीर्षक कविता में आपने लिखा है-

''तोता चीखता तेजी से आगे
और चील शान्त मगर तेजी से पीछे
लगा मुझे उस चील को देख
है वह ब्राह्मणवादी कोई''।[२]

आज दलित वर्ग अपनी अस्मिता को पहचानने की प्रक्रीया के अन्तिम चरण पर पहुँच चुके हैं। इसलिए आज उसके भीतर आक्रोश है उसी आक्रोश को ओमप्रकाश वाल्मीकि स्वर देते हुए लिखते हैं-

''साफ-सुथरा रंग तुम्हारा/झुलसकर साँवला पड़ जाएगा
खो जाएगा आँखों का सलोनापन

---

१ सूरजपाल चौहान, *कब होगी वह भोर,* पृ. ४०

२ डॉ. शत्रुघ्नकुमार, *अग्निशिखा,* पृ. ५२.

तब तुम कागज़ पर/नहीं लिख पाओगे/सत्यम, शिवम, सुन्दरम''।[१]

कवि असंगघोष आदि -पुरुष मनु से प्रतिशोध करना चाहते हैं। मनु वर्ण-व्यवस्था का पोषक है, इसलिए उसको मारना चाहता है, चाहे उसका भगवान हथियार लेकर आयें। 'काट डालूँगा उन पैरों को' नामक कविता में वे कहते हैं-

''चाहे तेरा भगवान हथियार धारण कर
तेरे मिथक को बचाने/इस धरा पर
नया अवतार ही क्यों न ले लेवे।''।[२]

कर्मशील भारती 'कहाँ खडे हैं' नामक कविता में शोषण के विरोध संघर्ष करने के लिए दलितों को प्रेरित करते हुए कहते हैं कि संघर्ष खून कर सकता है पानी नहीं-

''दलदल में फँसे/और उनके आसपास के लोगों का
खून चूसने की/ क्यों कि संघर्ष/खून कर सकता है
पानी नहीं/देखें हम कहाँ खडे हैं।''[३]

प्रोफेसर शत्रुघ्न कुमार डॉ. बाबा अंबेडकर की प्रतिमाओं को दलितों के सम्मान का प्रतीक मानते हैं। उनकी प्रतिमा का अपमान होते हुए देखकर कवि दलितों में क्रान्ति उत्पन्न कराना चाहते हैं । अपनी 'अपमान' शीर्षक कविता में उन्होंने दलितों को आह्वान किया कि-

''प्रतिकार करने की शक्ति जाग गयी तुम में अब।
सम्मान पाओंगे तुम तब/स्थान पाओंगे तुम तब इस देश में''[४]।

---

१ ओमप्रकाश वाल्मीकि, *सदियों का संताप,* पृ. २८.

२ असंगघोष, *हम गवाही देंगे,* पृ. ५७.

३ डॉ. एन. सिंह, *चेतना के स्वर*, पृ. ६५.

४ डॉ. शत्रुघ्न कुमार, *अग्निशिखा,* पृ. ७८.

सदियों से दलितों पर जो अन्याय, अत्याचार होता आ रहा है वे उसे चुपचाप सहते रहे। आज दलित पछता रहे हैं कि- काश! उसी दिन विरोध किया होता तो यह कब का रुक गया होता। इस अतीत के पछतावे पर अशोक भारती अपनी, 'नीच अछूत हरिजन न होता' शीर्षक कविता में लिखते हैं-

''धरती को चीरकर सोना उगाने वाले
पत्थरों को तोड़कर सड़कें बनाने वाले
काश तूने उन खोपड़ियों को तोड़ होता
जो तेरी गुलामी का मकड़जाला बनती है''।[१]

डॉ. अमरसिंह 'जाति की केंचुली' नामक कविता में जाति पर प्रतिशोध करते हुए लिखते हैं -

''जाति है विषैसी कीड़ा/देती जीवन भर पीड़ा
रोक देती मेरा विकास/मैं इसका करुँगा बीज नाश''।[२]

प्रस्तुत कविता में कवि जाति को समाप्त करना चाहते हैं। अपनी लेखनी के माध्यम से समाज को उक्साना चाहते हैं।

मोहनदास नैमिशराय 'झाडू और कलम' नामक कविता में अपना आक्रोश व्यक्त करते हैं। वेदों या स्मृतियों की सहायता से हमें तुम कुचल रहे हो, अब बदला लेने का समय आ गया है, वे लिखते हैं-

''तुमने गन्दगी फैलाने के लिए
वेद/पुराण/मनुस्मृति का सहारा लिया

---

१ कंवल भारती, दलित निर्वाचित कविताएँ, पृ. १९२.

२ तारा परमाल (सं.), आश्वस्त, दिसम्बर, २०११, पृ. ११.

कल उन्हें जलाने का/मुझे अधिकार न था
आज शब्दों की आंच से/ मैं उन्हें जलाऊँगा।''[१]

गुरु प्रसाद मदन 'वो कहते हैं' नामक कविता में परिवर्तन की ओर लक्ष्य करके सवर्णों से क्रांति की भाषा में कहते हैं-

''पुनर्जन्म का धन्धा तेरा/स्वर्ग-नरक का चन्दा तेरा
वर्णव्यवस्था गन्दा तेरा/सब कुछ अब तो टूट रहा है''।[२]

'ज्ञानीजन दृष्टि' नामक कविता में चौहान जी ने ब्राह्मणों के प्रति प्रतिशोध व्यक्त किया है। सवर्ण किसी न किसी तरह दलितों का रक्त चूसने में दिलचस्पी रखते हैं। कवि लिखते हैं-

''मेरे और मेरे/परिवार के सदस्यों का रक्त
माँस, मज्जा/और वीर्य/तुम्हारे जैसा ही है।
फिर/ कैसे जगत-गुरु हो तुम/और कैसी है तुम्हारी/ज्ञानीजन दृष्टि?
जो तुम्हें/मुझमें आता है चण्डाल नज़र।''[३]

सामाजिक अन्याय का प्रतिरोध अथवा प्रतिकार दलित कविता का मुख्य पहलू है। मलखान सिंह की निम्न पंक्तियों में अन्याय के विरुद्ध प्रतिकार की क्रान्तिघोष दर्शनीय है-

''अब केवल यही सोच रहा हूँ
कि मैं सामने बन्द दरवाजे/पर दस्तक नहीं ठोकर दूँगा,

---

१ मोहनदास नैमिशराय, *आग और आंदोलन,* पृ. ७२.

२ जयप्रकाश कर्दम (सं), दलित साहित्य वार्षिकी, २०००, पृ. २१२.

३ सूरजपाल चौहान, *क्यों विश्वास करुँ,* पृ. ३८.

दीवाले चूल से उखाड़/जमी पर बिछा दूँगा, ''[१]

शरद कोकास 'तुम्हारी नियति' नामक कविता में सवर्णों को ललकारते हुए आग के समान अपना प्रतिशोध करना चाहते हैं-

''जले कवच पिछला मुलम्मा/आग में अब पकेगी रोटी
सोने से दमकेंगे चेहरे हमारे/तुम्हारी नियति?''[२]

रवीन्द्र भारती 'शंबूक का शाप' नामक कविता में हिन्दू समाज के सवर्ण ठेकेदारों से सावधान रहने को कहते हैं। एक न एक दिन हम भी तुम से बदला लेंगे। वे प्रतिरोध के स्वर में कहते हैं-

''बूंढों- बच्चों और महिलाओं को
यूं ही जिन्दा जलाता रहेगा
याद रखना मुझे तपस्वी शंबूक का
रक्तिम अभिशाप रंग लाता रहेगा
यूँही खून के बदले-/खून बहाता रहेगा''।[३]

डॉ. प्रेमशंकर, क्रांति की हिमायत करते हुए उसे गरीबों के हित के लिए उपयोगी मानकर सब को क्रान्ति के लिए आह्वान कर लिखते हैं-

''क्रांति किसी उल्लू के पटठे की/माँ, बहिन या लुगाई नहीं है,
यह मेहनत के बेटों की बहिन है,/भाभी है, लड़की है, या माँ है''।[४]

---

१ माता प्रसाद, *दलित साहित्य दशा और दिशा,* पृ. १४७.

२ रमणिका गुप्ता, *दलित चेतना*, पृ. ३५.

३ रमणिका गुप्ता, *दलित चेतना*, पृ. १०७.

४ कालीचरण स्नेही, *हिन्दी साहित्य में दलित अस्मिता*, पृ. १००.

उपर्युक्त काव्य पंक्तियाँ हिन्दी दलित कविता में अभिव्यक्त प्रतिरोध एवं प्रतिशोध का स्वर स्पष्ट करती हैं। यह स्वर क्रांति केलिए है और ये क्रांति परिवर्तन केलिए है। यह स्वर समाज में व्याप्त अमानवीय व्यवहारों के खिलाफ है। सामाजिक सुधार केलिए प्रयत्न करते- करते थके हुए है हम; इसलिए सामाजिक परिवर्तन केलिए दलित कविता स्वर देती है। उसका मूल उद्देश्य मानवीय मूल्यों की स्थापना करना ही है । परिणाम स्वरूप एक ऐसे सामाजिक व्यवस्था का निर्मिति होगी जहाँ आदमी -आदमी को पहचान कर आगे बढेंगे।

४.१.२.२ भाषा में विद्रोही स्वर

दलित कविता की भाषा में विद्रोही स्वर दलितों की वेदना से पैदा हुआ है। यह विद्रोही स्वर समाजिक और समूह स्वरूप का है। ''वह समाज के प्रति अपना विद्रोह प्रकट करने के पक्ष में है। जिन संप्रदायों ने मनुष्य को मनुष्य जैसा जीवन जीने से वंचित किया और उसकी ज़िन्दगी को अन्याय, अत्याचार, बोबसी, लाचारी, गरीबी और गुलामी का पर्याय बना दिया था''।[१]

दलित कविता की भाषा विद्रोह की भाषा भी है। दलितों की वेदना को शब्दबद्ध करते वक्त वह अत्यन्त क्षोभ और विद्रोह से भर उठती है जो स्वाभाविक है। इन शब्दों की शक्ति के बारे में सुशीला टाकभौरे, 'मैंने कुछ शब्द जोडे है' नामक कविता में लिखती हैं-

''मैंने कुछ शब्द जोडे हैं। आग और मशाल
आग चुल्हे की नहीं/न है चिता की यह
कड़कती बिजनियों से/बरसती चिनगारियों के

---

१ डॉ. दोडडा शेष बाबु, *दलित कविता का यथार्थवादी परिदृश्य*, पृ. ४४.

कण समेटे हैं/मैंने कुछ शब्द जोडे हैं''।[१]

निर्मला पुतुल के विचार जो सवर्ण के प्रति दलितों की समूह भावना की अभिव्यक्ति देते हैं। अतंर्मुख होकर कवयित्री ने अपने व्यक्तित्व के हर पहलू को कविता के माध्यम से दलित जीवन के अनुभवों से जोड़कर उभारने की कोशिश की है। निर्मला पुतुल ने भी विद्रोह की आवाज़ बुलंद की है-

''उठो कि तुम जहाँ हो वहाँ से उठो
जैसे तूफान से बवंडर उठता है
उठती है जैसे राख में दबी चिनगारी''।[२]

आज की नारी परंपरागत अंधविश्वासों एवं मान्यताओं को तोड़कर विद्रोह करना चाहती है। अपनी परिवर्तनवादी विचारधारा का संदेश संपूर्ण समाज को देना चाहती है। अपने ओजपूर्ण तेजस्वी व्यक्तित्व के रूप से समाज में प्रस्थापित होना चाहती है ताकि समाज को प्रत्येक नारी उसके इस रूप से प्रेरणा प्राप्त करें और अपने व्यक्तित्व का विकास करें। सुशीला टाकभौरे ने क्रांतिकारी व विद्रोही रूप को अपनी कविता में इन शब्दों में व्यक्त किया है-

विद्रोहिणी बन चीखती हूँ
गुँजती है आवाज़ सब दिशाओं में।''[३]

कविताओं में विद्रोही एवं क्रांतिकारी अभिव्यक्ति देनेवाले कवि हैं श्री जयप्रकाश नवेन्दु। उनका कविता संग्रह 'कविताएँ १९९१' इसका उत्तम उदाहरण है। इसमें वे अपने क्रांतिकारी रूप को दर्शाते हुए कहते हैं-

---

१ सुशीला टाकभौरे, *तुमने उसे कब पहचाना*, पृ. ३२

२ निर्मला पुतुल की कविताएँ, बिटिया मुर्म के लिए कादंबिनी, २००४, आगस्त,

३ डॉ. सुशीला टाकभौरे, 'तुमने उसे कब पहचाना', *विद्रोहिणी*, पृ. ४६.

''मत रोक अब मत रोक/मुझे संपूर्ण उत्तेजना के साथ
अपनी पीढी की तरफ से वक्त के सीने पर
कट जाने दे बम की तरह
मैं शेष न रहने के लिए पूरी तरह कटिबद्ध हूँ''।[१]

श्री जगदीश गुप्त दलित जीवन के चित्रण करने में एक सफल कवि हैं। 'शंबूक' उनका लघुकाव्य है। उसमें वर्ण-व्यवस्था, जातिभेद आदि के विरुद्ध शंबूक का विद्रोही स्वर गुँज उठता है-

''सभी पृथ्वी पुत्र हैं, तब जन्म से
क्यों भेद माना जाए''?[२]

जसराम हरनोटिया होनहार विद्रोही दलित चिंतक है। उनका मन समाज में समता जैसे बन्धुत्व भाव की स्थापना केलिए संकल्पित है। दलित भी आज़ाद रहना चाहते हैं। कवि परंपरा को तोड़ने की आशा करते हैं-

''अधिक पैदावार बढ़ा
तोड़ने पुरानी परिपाटी को/उसके हथौडे की चोट
तोड़ देगी असमानता दीवारों को''।[३]

डॉ. बाबा साहब अंबेडकर की विचारधारा दलित कविता को प्रेरणा देती है। बाबा साहब की विचारधारा से दलितों में दृढविश्वास, निडरता, आत्मचेतना आदि ने जन्म

---

१ डॉ. एन. सिंह. *चेतना के स्वर,* पृ. VI.

२ वही, पृ. ९.

३ जसराम हरनोटिया, *माटी के पूत,* पृ. ४.

लिया और वे संघर्ष की ओर बढने लगे। 'ललकार' कविता में शेखर, क्रान्ति परिवर्तन पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं-

''तुम्हें भारी पड़ चुका है
हमारे ललकार से भरे अस्तित्व को अनदेखा करना
तुम्हारा दंभ हो चुका चुर, चुर''।[१]

दलित कविता समाज में जागृति पैदा करते हुए सवर्ण समाज के प्रति आक्रोश व्यक्त करती है। डॉ. अभय कुमार द्वारा रचित 'धन्य-धन्य जो कलियुग आया' में संग्रहित 'दलित चेतना' कविता में यह स्वर सुनाई पड़ता है-

''दलित चेतना जाग उठी/ गाँव की सूनी गलियों में।
धूल बनी बारुद वहाँ की। मत छोडो मस्तानों को।।''[२]

डॉ. हरपाल सिंह 'अरुष' की कविताओं एवं गजलों में दलित चेतना व्यक्त हुई है। जैसे-

''डके की चोट घोषणा है मेरी कि,
मुझे तुम्हारे पथरीले मंदिर की सीढियों पर ही।
जीवन नहीं व्यतीत करना।
और न दीवारों के छेद के छेद से झाँक कर।
देव दर्शन करके संतुष्ट होना।''[३]

---

१ शेखर, *उजालों के कछार पर,*पृ. ६७.

२ डॉ. धीरजभाई वणकर, *दलित विमर्श,* पृ. १५,

३ वही, पृ. १६.

हिन्दू वर्णव्यवस्था से पीडित समुदाय की वेदना ही हिन्दी दलित कविता का मूल स्वर है, जिसका तेवर विद्रोही है। हिन्दी कविता के अन्य आन्दोलनों की तरह दलित कविता का आन्दोलन चेतना के स्वर पर बहुत गहराई से जुडा है, जिसकी जड में सदियों के अन्याय, अत्याचार और शोषण का इतिहास है। इसलिए हिन्दी की दलित कविता समय के दौर में दलित आंदोलन को स्थायित्व प्रदान करने वाली कविता है। वह वर्ण व्यवस्था की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक वर्चस्व के खिलाफ अपना नया मोर्चा निर्मित करती है। यह सदियों की यातना को आक्रोश एवं विद्रोही भाषा में व्यक्त करते हैं-

''मेरी पीढी ने अपने सीने पर/खोद दिया है संघर्ष
जहाँ आँसुओं का सैलाब नहीं/विद्रोह की चिंगारी फूटेगी
जलती झोपडी से उठते धुएँ में/ तनी मुट्ठियाँ
तुम्हारे तहखाने में/नया इतिहास रचेंगी।''[१]

समाज में होते अन्याय के विरुद्ध कवि असंगघोष आवाज़ उठाते हैं। शिक्षा प्राप्त करना हर एक बच्चे का अधिकार है। लेकिन दलित वर्ग इससे वंचित हैं।

''समय के साथ/इसका/ मैं दूँगा माकूल जवाब
मेरी जगह/पढेंगे मेरे बच्चे/ज़रूर।''[२]

दलित साहित्यकार में व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह, आक्रोश व परिवर्तन के प्रति अटूट आस्था एवं विश्वास है। दयानंद वटोही की निम्न पंक्तियाँ शोषकों के छलावों को इसी तरह उघाड़ कर देती हैं -

---

१ ओमप्रकाश वाल्मीकि, *सदियों का संताप,* पृ. १४-१५.

२ असंगघोष, *मैं दूँगा माकूल जवाब,* पृ. ३७.

''कब तक अंधेरे में रखेंगे
मैने जान लिया है/तुम्हारी नीति को तुम्हारी भाषा को
आस्था से नहीं घबराहट से
जनता तुम्हें पूजती रही''।[१]

केवल एक वर्ग विशेष में जन्म लेने मात्र से कोई व्यक्ति इतना हेय हो जाए कि दूसरों की नज़र में उसके प्रति घृणा, विद्वेष और अपमान के भाव ही नज़र आए। इससे दलित युवकों का मन आक्रोश से भर जाता है। डॉ. दयानन्द बटोही इस स्थिति को इस प्रकार रेखांकित करते हैं-

''लोग कहते हैं/नीम जैसी कड़बी बोलता हूँ
मैं सच कहता हूँ/अपने अन्दर की परत खेलता हूँ
कभी-कभी मैं बरसता हूँ
मेरे भीतर तृष्णा हमेशा छटपटाती है।''[२]

सवर्णों ने दलितों को यह समझाया है कि नर सेवा ही नारायण सेवा है। उनकी सेवा करना शूद्रों का धर्म है। इसलिए तो शूद्र साफ-सफाई के काम से लेकर मैला ढोने तक का काम करते आ रहे हैं। दलित आज तक उनकी सेवा करते आये हैं और सवर्ण भी उनके श्रम पर मुफ्त खाते आ रहे हैं। इसलिए दलित कवि जयप्रकाश कर्दम 'तुमने कहा' शीर्षक कविता में अपना विद्रोह प्रकट करते हैं-

''मुफ्त की खाना छोड़ो/मेहनत से कमाओ
और करो वह सब/जो करना पड़ा है हमको''।[३]

---

१ माताप्रसाद , *दलित साहित्य दशा और दिशा,* पृ. १४८.

२ डॉ. एन. सिह, *मेरा दलित चिंतन,* पृ. ४९.

३ जयप्रकाश कर्दम, *गूँगा नहीं था मैं,* पृ. १९.

दलित कवि साहित्य में जीवन विषयक रिक्तता को भरने का प्रयास किया है। कवि स्वर्ण सिंह के शब्दों में -

"मैं लिखना नहीं जानता, अलंकार के भेद,
मैं वह लिखता हूँ जिसे लिख नहीं पाये वेद।
मेरी कविता में मेरा अनुभव होगा
वही लिखा जो जीवन में झेला या भोगा होगा"।[१]

वर्ण-व्यवस्था और अस्पृश्यता को धिक्कारते हुए कवि अ. ला उके एकलव्य के स्थान पर स्वयं को रखकर देखते हैं और उसके साथ हुए अन्याय का अहसास करके उस आक्रोश को व्यक्त करते हैं -

"काश!/ कि मैं एकलव्य होता/तो गुरु दक्षिणा में
अँगूठा माँगने वाले/गुरु की जुबान काट लेता"।[२]

दलित कविता ने दलित वर्ग की मानसिकता को परिवर्तित करने का काम किया है। कुसुम वियोगी दलितों से संघर्ष करने को कहते हैं-

"आओ आज करें, संघर्ष/उसी से
जिसने किया अलंकृत/और हमें बनाया अछूत"।[३]

आज का दलित सारी रूढियों और वर्ण-व्यवस्था को दूर फेंक देना चाहता है। ऐसा कुछ भी वो अपने ऊपर नहीं थोपना चाहता जो उसे बाँधने की कोशिश करता है और अपने को अधीन रखने का प्रयास करता है। अब स्वयं उसने कलम उठा ली है -

---

१ रजतरानी मीनू, *दलित कविता,* पृ. ९४.

२ अ. ला. उके, *पत्थर उठाते हाथ*, पृ. १३.

३ डॉ. कुसुम वियोगी, *टुकडे, टुकडे, वंश,* पृ. ९६.

"…..मैने अब उठा ली है कलम/झाड़ू के बदले
करेंगे साफ तुम्हारी सारी गन्दगी/बचाएँगे हम
देश की टूटती एकता को"[१]

ईशा कुमार गंगानिया दलित वर्ग को जगाते हुए कहते हैं कि तुम सदियों से गुलामी की फसल खाते हो अब समय आ गया है अपनी ताकत दिखाने का, जागो और विद्रोह करो-

"दिखा दे बंद मुट्ठी की ताकत
छीन ले अपने अधिकार
देने को विरासत में/ अपने उत्तराधिकारियों को"।[२]

'नीली रोशनी' कविता के माध्यम से दिलीप कठेरिया भविष्य के प्रति अपना विद्रोह प्रकट करते हैं -

"मेरे वक्त का भविष्य/हम ही लिखेंगें/क्योंकि
भविष्य लिखने वाली कलम/अब हमारे हाथों में हैं"।[३]

राज वालमीकि मुक्ति की आवाज़ को गूँजकर विद्रोह प्रकट करते हैं -

"मुक्ति की आवाज़ हूँ मैं/लेखनी हूँ मैं
संघर्षरत आम आदमी की जीत की
उसके सिर पर ताज हूँ मैं"।[४]

---

१ सी. बी. भारती, *आक्रोश,* पृ. १२.

२ ईश कुमार गंगानिया, *हार नहीं मानूँगा,* पृ. १९.

३ विमल थोरात, सूरज बडत्या, *भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर*, पृ. ८९.

४ वही, पृ. ९८.

सवर्ण वर्ग दलितों के खून चूसकर अपने पैरो में सिर उठाकर खड़ा है। कवि कहते हैं कि सदियों से तुम हमें शोषण करते रहे अब तुम उस भगवान के हाथ पर भी सुरक्षित नहीं है-

"पत्थर के/भगवान के/गले में झूल/मत इतरा
मत समझ कि/तू वहाँ पर सुरक्षित रहेगा,
मेरे खून पसीने की/कीमत चुका"[१]

कवि असंगघोष 'रोको ब्राह्मण' कविता में ब्राह्मणों से अपना विद्रोह प्रकट करते हैं। अगर तुम्हें हिम्मत है तो प्रकृति की हवा, जल, रोशनी आदि को तुम रोको। वे लिखते हैं-

"उस प्रकाश किरण को
जो तुम तक पहुँचने से पहले ही
मुझे छूकर गई है/ तुमहें अपवित्र करने"[२]

अब दलितों का समय आ गया है कि अपनी जिजिविषा पर खुद लिखें। क्योंकि हमारी यातना देखने वाला और अनुभव करनेवाला कोई नहीं। कवि विद्रोह करते हैं कि हमारे लेखन पढने से तुम (सवर्ण वर्ग) ज़रूर हिलेगा- देख! हमारा चमत्कार। सूरजपाल चौहान ने 'पीड़ा' नामक कविता में लिखा है-

"उठा ली है उसने कलम/अपने हाथों में
खोदने लगे हैं पैनी नोक से
हवाई साहित्य की कब्र

---

१ ईश कुमार गंगानिया, *हार नहीं मानूँगा,* पृ. ३१.

२ असंगघोष, *खामोश नहीं हूँ मैं,* पृ. ४५.

तो क्यों हिलने लगा है
तुम्हारे पेट का पानी''।[१]

रजनी तिलक 'करोड़ों पदचाप हूँ' नामक कविता में ज्वालामुखी बनकर विद्रोही स्वर में कहती हैं कि मैं अब अबला नहीं, आशाओं का तूफान है। सारे गुलाम को तोड़कर नई आवाज़ में गूँज रही हूँ । वे लिखती हैं-

''इकाई नहीं मैं/करोड़ों पदचाप हूँ/मूक नहीं मैं
आधी दुनिया की आवाज़ हूँ/नए युग का सूत्रधार हूँ''।[२]

शोषण करने की भी एक सीमा होती है। शोषक वर्ग ये नहीं जानते हैं कि जब शोषण करने की सीमा समाप्त हो जाएगी तब उन्हें शोषित वर्ग मसल दिया जाएगा। विद्रोह होगा और विद्रोह में कोई भी शोषक नहीं बचेगा। डॉ. सी. बी भारती 'जोंक' कविता में लिखते हैं -

''मगर जोंक नहीं जानती कि एक दिन
उसका शिकार जरूर बिलबिलाएगा/दर्द जब सहा न जाएगा''।[३]

सामाजिक व्यवस्था के नाम पर एक मानव समुदाय को पशुओं से भी बुरी स्थिति में पहुँचा दिया गया है। इस पीड़ा को जिसने भोगा है वही इसकी निर्ममता जान सकता है। इस भोगी जा रही दासता के प्रति विद्रोह और उलाहना 'मूक माटी की मुखरता' में पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी ने इस तरह व्यक्त किया है-

---

१ सूरजपाल चौहान, *कब होगी वह भोर,* पृ. ४५.

२ रजनी तिलक, *पदचाप,* पृ. ३३.

३ डॉ. सी. बी. भारती, *आक्रोश,* पृ. २५.

''यह कहाँ का हक है किसी को भी
कि वह अपने स्वार्थ संस्कृति के लिए दूसरों की आंख में आँसू
भर दे/और उसका नाम/भाग्य, भगवान, और भय रख दे''।[१]

सूरजपाल चौहान जन्म से जाति और जाति से कर्म (पेशा) निर्धारित करने वाली भारत की अवैज्ञानिक सामाजिक व्यवस्था से मुक्त होकर इस व्यवस्था के पोषकों से अपना खुला विद्रोह प्रकट करते हैं। 'तेरे धर्म ऐसी की तैसी' शीर्षक कविता में वे लिखते हैं-

''पर मैं/करने लगा हूँ अधर्म/तू रोक सके तो रोक।
देख/ मैं लिखकर/आज कर रहा हूँ
नेतृत्व देश का/तेरे धर्म की ऐसी की तैसी''।[२]

नवेन्दु महर्षि 'शूद्रों के श्यामवर्णी कबूतर' नामक कविता में वर्ण व्यवस्था के विरुद्ध खुला विद्रोह प्रकट करते हैं। उन्होंने हिन्दू वर्ग और वर्ण व्यवस्था के प्रति घृणा व्यक्त करने केलिए विद्रोहात्मक दृष्टिकोण अपनाया है-

''लेकिन दलितों के/वे हाथ/जो अब तक/बंधे हुए थे
खुल चुके हैं/ उँगलियाँ उठ चुकी हैं/अब वे
यह वर्णवादी पिंजरा/खोले बगैर/दम नहीं लेगें
शब्दों के/श्यामवर्णी/कबूतरों का/मुक्त होना/अब तय हैं''।[३]

उपर्युक्त पंक्तियों के विश्लेषण एवं अध्ययन से यह पता चलता है कि दलित कविता अपने विद्रोही स्वर के माध्यम से समाज में सकारात्मक सामाजिक परिवर्तन

---

१ सं. प्रणव कुमार बद्योपाध्याय, दलित प्रसंग, पृ. ८३.

२ सूरजपाल चौहान, *कब होगी वह भोर,* पृ. ६८.

३ नवेन्दु महर्षि, संसद तो सवर्ण है, पृ. ७७.

लाना चाहती हैं। दलित कविता में विद्रोह दलितों के अनुभव और वेदना से पैदा हुआ है। यह वेदना उनकी शक्ति का प्रमाण है। उस वेदना में अनुभवजन्य ज्ञान का आधार है; प्रकृति जन्य ज्ञान का आधार है। अतः वेदना उनकेलिए शक्ति है। अगर उनके पास इस तरह के ज्ञान और शक्ति है तो फिर विद्रोह अपने आप में आ जायेंगे और उसे कभी पराजित नहीं कर सकता। शक्ति संपन्न बनने केलिए सबको एकजुड होकर विद्रोह करना है। यह विद्रोही स्वर शक्ति का स्वर है; समूह का स्वर है। यह स्वर अमानवीय व्यवहारों का परिणाम है। अब तक के सामाजिक व्यवस्थाओं के कुकर्मों का परिणाम है अतः यह स्वर मूलतः सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन करना चाहते हैं।

४.१.२.३ दलित कविता में सवाल- जवाब

हिन्दी दलित कविता समाज की हर एक बुराईओं तथा अमानुषिक प्रवृत्तियों पर तीखा सवाल करती है। जब मनुष्य चिंतन करने लगता है तो उनके सामने अनेक सवाल उठेंगे। सवाल के माध्यम से 'बहस' केलिए 'जगह' (Space) मिलता है। सवाल सही है या गलत है; जवाब सही है या गलत है ये काल और जगह के आधार पर बदलता है। दलित कविता के संदर्भ में सवाल हमेशा व्यवस्था के खिलाफ है। आज के दलित कवि सवालों के माध्यम से सच्चाई का उद्‌घाटन करना चाहते हैं। अतः सवाल- जवाब की प्रक्रिया को दलित कविता के शिल्प पक्ष का एक तत्व के रूप में ले सकते हैं।

सूरजपाल चौहान 'मेरा क्या है' शीर्षक कविता में, भारत में दलितों के साथ हो रहे बेईमान व्यवहार की सच्चाई पर सवाल करते हैं-

"गाँव-शहर को मारे/हल और बैल को मारे
फिर मेरा क्या?/कुँआ को मारा
डोल को मारा
महल तुम्हारे आलीशन

राज तुम्हारा/तंत्र तुम्हारा
राम तुम्हारे भगवान/फिर मेरा क्या''?[१]

आम जन के सरोकारों के विपरीत व्यवस्था को प्रश्नों के माध्यम से कवि 'बेचैन' ने शोषितों को उनके अधिकारों के प्रति सचेत करने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। 'आज़ादी अधूरी है' शीर्षक अपनी कविता में आप रोटी, कपड़ा और मकान के मोहताजों से ही सवाल करते हैं कि-

''बलिदानों का अपमान है क्यों?
भूखे- नंगे भिखमंगों से
भर रहा ये हिन्दुस्थान है क्यों?/ कर स्वयं समस्याएँ हल प्यारे''।[२]

दलित साहित्यिक आन्दोलन की प्रमुख विशेषता यह है कि इस आन्दोलन से सत्य को तीव्र अनुभूति एवं प्रखर प्रामाणिकता के साथ कविता में अभिव्यक्त किया गया है। इसी प्रकार की एक कविता है 'पिपरा जनसंहार'। पिपरा के जनसंहार के भयानक रूप को सामने रखते हुए डॉ. प्रेमशंकर देश की आज़ादी पर सवाल उठाते हैं-

''.....पिपरा की होली से पूछो
गरीब दलितों का ज़िन्दा नरसंहार
.....दलित जिन्दा जलते रहे/बालक गोलियों से भून दिए गए''।[३]

बाबूलाल मधुकर ने अभिजातों द्वारा श्रमिकों के श्रम के दोहन पर सवाल उठाते हुए कहा है-

---

१ सूरजपाल चौहान, *प्रयास,* पृ. ६३.

२ श्यौराज सिंह बेचैन, *नई फसल,* पृ. २२.

३ डॉ. प्रेमशंकर, *दर्द के दस्तावेज़,* पृ. २०.

''हमारे श्रम के पुण्य फल पर/कुण्डली मार कर बैठने के
सिवा और क्या किया है तुमने''[१]?

सुदेश तनवर 'मै हैरान हूँ' नामक कविता में भगवान को श्रद्धेय मानकर पूजा करने वाली स्त्रियों पर सवाल करते हुए लिखते हैं-

''इतना कुछ होने पर भी/क्यों अपना 'श्रद्धेय' मानकर
पूजती है ये औरतें/उन्हें देवता और भगवान बनाकर''।[२]

आज़ादी के बाद भी दलितों को सामाजिक न्याय नहीं मिला। डॉ. कालीचरण स्नेही 'कौन बड़ा है' ? नामक कविता में महत्वपूर्ण सवाल करते हैं-

''मगर, अभी खाली नहीं किया-/गाँव का छोटा सा जीर्ण -शीर्ण
राम जानकी मंदिर?/दोनों में कौन बडा है''।[३]

दलितों में अस्मिता, अधिकार की भावना और चेतना बढ़ने लगी। उनके पुरखों ने जो भोगा, सहा अब वे बर्दाश्त नहीं करना चाहते। ओमप्रकाश मेहरा 'आकाश' नामक कविता के माध्यम से यही सवाल उठाते हुए और सत्य का साक्षात्कार करते हैं-

''आज तुम सबसे जवाब माँगता हूँ
ओ प्रकाश, ओ धरती, ओ नदी, ओ तितली
जरूरत पर भी/छत, जमीन का टुकडा, सांस भरा हवा,
प्यास भर पानी/और बस जरा से रंग/तमाम उम्र क्यों न मिले''।[४]

---

१ रमणिका गुप्ता, *दलित चेतना*, पृ. ४०

२ विमल थोरात, सूरज बडत्या, भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर, पृ. ६४.

३ डॉ. कालीचरण स्नेही, *दलित साहित्य में दलित अस्मिता,* पृ. १११.

४ वी.डी. सगारे, इक्कीसवीं सदी का दलित साहित्य, पृ. ४१.

आज़ादी मिली और संविधान व्यवस्था प्राप्त हो गयी। परंतु दलितों का आत्मसम्मान और उनकी आत्मरक्षा का क्या हुआ? यह सवाल उठाते हुए डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी विवश होकर कहते हैं-

''और स्वाधीनता के पाँचवें दशक के समाप्त होने
पर भी/ सत्ता-संपत्ति-सम्मान की भागीदारी से
प्रवंचित/अपनी बेबसी पर चुप रह जाती हैं''[१]।

कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि सवर्णों से सवाल करते हैं कि यदि तुम से नीच काम करने के लिए कहा तो तुम क्या करोगे?-

''यदि तुम्हें/मरे जानवर खींचकर और
कहा जाये ढोने को/ पूरे परिवार का मैला
पहनने को दी जाए उतरन/तब तुम क्या करोगे''।[२]

अ. ल. उके ईश्वर पर सवाल उठाता है कि यदी ईश्वर का अंश प्रत्येक जीव में है तो फिर असमानता क्यों? 'इतनी घृणा क्यों' नामक कविता में वे लिखते हैं-

''यदि घट-घट में/ब्रह्म विराजमान है
तो एक उच्च/एक नीच क्यों''?[३]

लक्ष्मीनारायण सुधाकर 'स्वराज' नामक कविता में दलित वर्ग को शोषण से मुक्ति के लिए आवाज़ उठाते हुए सवाल करते हैं कि देश तो स्वतन्त्र हो गया परन्तु शोषित पता नहीं कब स्वतन्त्र होंगे? वे लिखते हैं-

---

१ वी.डी. सगारे, इक्कीसवीं सदी का दलित साहित्य, पृ. ४१.

२ ओमप्रकाश वाल्मीकि, *सदियों का संताप,* पृ. ४९.

३ अ. ल. उके, *पत्थर उठाते हाथ,* पृ. १३.

''सुधाकर स्वतंत्र भले भारत हुआ है बंधु
शोषित स्वतंत्र जाने होंगे किस काल में ?''।[१]

दलित महिलाओं पर होते अत्याचार को लेकर लिखी गयी एन.आर.सागर की कविता 'तब तुम्हारी निष्ठा क्या होगी' में कवि सवर्णों से सवाल करते हैं-

''तुम्हारी बहन बेटियों को/सर्वथा निर्वस्त्र कर घुमाया जाए
गली-गली नचाया जाए/कसे जाए गन्दे फिकरे
किया जाए बलात्कार /सड़कों-चौराहों पर
सामने तुम्हारे/तब तुम्हें कैसा लगेगा ?''[२]

भगीरथ मेघवाल 'खिडकियाँ खोल दो' नामक कविता में हमें राजस्थान के उच्च न्यायालय में घटित एक घटना के बारे में बताते हैं कि काफी विरोध के बावजूद भी मनु की मूर्ति स्थापित की, इसके स्थापकों को सवाल करते हैं-

''इन्सान को इन्सानियत से/बेदखल करने वाला मनु
आज भी तुम्हारे लिये/पूजित क्यों हैं?[३]

राजेश कुमार बौद्ध ने 'बलात्कार' नामक कविता में वर्तमान समाज एवं राजनीतिक व्यवस्था पर सवाल करते हुए सच्चाई का चित्रण किया है-

''हमारी माँ, बहनों के साथ
जब होता है
बलात्कार और हत्या

---

१ लक्ष्मीनारायण सुधाकर, *उत्पीडन की यात्रा,* पृ. ६१.

२ रमणिका गुप्ता, *दलित चेतना*, पृ. २६.

३ डॉ. एन. सिंह, *चेतना के स्वर*, पृ. ५७.

तब क्यों नहीं चिल्लाते हो

भारत के लोकप्रिय संसद।''[१]

उपर्युक्त पंक्तियों के अध्ययन से यह पता चलता है कि समाज दलितों के प्रति हो रहे इस तरह के अत्याचारों को अनदेखा करते हैं। ईश्वर/भगवान/ राम/सीता, आज़ादी, पुरखों का अनुभव, अभिजातों द्वारा श्रमिकों के श्रम का दोहन, दलितों का नरसंहार, दलितों के बलिदानों का अपमान, असमानता, दलित स्त्रियों को निर्वस्त्र कर घुमाए जाना, बलात्कार करना तब भारत के लोकप्रिय संसद मौन क्यों? इन्सान को इन्सानियत से बेदखल करने वाला मनु आज भी पूजित क्यों है? आदि सामाजिक सवाल दलित कवि अपनी कविताओं के द्वारा करते हैं, या उस समाज से सवाल पूछते हैं, जिसके सामाजिक नियम के कारण यह स्थिति है साथ में उसका उत्तर खोजने की कोशिश भी कर रहे हैं। कोई संदेह नहीं कि इस स्थिति का कारण अभिजातों से बनायी गयी सामाजिक व्यवस्था ही है। सवाल- जवाब की प्रक्रिया से दलित कवि इस सच्चाई को सामने लाना चाहते हैं।

४.१.२.४ दलित कविता में प्रतीक

सामान्यतः प्रतीक साहित्यकार की अनुभूति की स्पष्ट अभिव्यक्ति का माध्यम है। काव्य के भावसौन्दर्य एवं कलात्मक सौन्दर्य की वृद्धि कराने में प्रतीकों की भूमिका है। इसी तत्व के आधार पर अनेक विद्वानों ने प्रतीक को परिभाषित करने का प्रयास किया है। इसके सांकेतिक अर्थ के द्वारा काव्य में प्रभावोत्पादकता बढ़ जाती है। सौन्दर्य की वृद्धि कराने में प्रतीक की भूमिका है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की मान्यता है कि ''भावनाओं के मूर्त रूप में रखने की आवश्यकता के कारण कविता की भाषा में दूसरी विशेषता यह रहती है कि उसमें जाति संकेत वाले शब्दों की अपेक्षा विशेष-रूप व्यापार के शब्द अधिक रहते हैं। बहुत से ऐसे शब्द होते हैं जिनसे किसी एक का नहीं बल्कि

---

१ मोहनदस नैमिशराय (सं.), बयान, अक्तूबर, २००९, पृ. ४६.

बहुत से रूपों या व्यापारों का एक साथ चलता अर्थ ग्रहण हो जाता है''।[१] ''प्रतीक वस्तुतः अप्रस्तुत की समस्त आत्मा या धर्म या गुम का समन्वित रूप लेकर आनेवाले प्रस्तुत का नाम है। प्रतीक अप्रस्तुत का अवतार ही है।''[२] ''प्रतीक एक प्रकार का अचल बिम्ब है जिसके आयाम सिमटकर अपने भीतर बन्द हो जाते हैं।''[३] उपर्युक्त परिभाषाओं से यह व्यक्त होता है कि 'प्रतीक' कविता को भावात्मकता प्रदान करने केलिए है। दलित कविता का प्रतीक, मुख्यधारा कविता के प्रतीकों से बिलकुल भिन्न हैं। अपने जीवन परिवेश से ही दलित कविता के प्रतीक उभरे हैं। दलित कविता में प्रतीक प्रतीक केलिए न होकर, जीवन की सच्चाई से जुड़े हैं। दलित कविता का प्रतीक कल्पना की रंगीनियाँ लिये हुए नहीं, बल्कि सच्चाई से पैदा होते हैं।

हरपाल सिंह अरुष कहते हैं कि ''दलित साहित्य में प्रतीक अपने नये वैभव के साथ आकर मानव मुक्ति की चिंता करने में चिन्ताशील रहने लगे हैं। इस मुक्तिकामी संघर्ष में जो प्रतीक शिथिल दिखाई देते हैं उनको दलित साहित्य कैसे अपना सकता है। समस्यामूलक संदर्भों को व्याख्यायित करनेवाला प्रतीकों को ही इस संघर्ष में स्थान मिल सकता है''।[४] उनके कथन से यह स्पष्ट है कि दलित कविता में आये प्रतीक मानव मुक्ति की अपेक्षा करती है। साथ में समस्यामूलक संदर्भों को उद्‌घाटित करनेवाला तथा प्रगतिशील चेतना से युक्त भी है। इस संदर्भ में रमणिका गुप्ता का कथन उल्लेखनीय है- ''दलित साहित्य के प्रतीक भिन्न हैं, जो यथार्थ की कोख से उपजे हैं। ये प्रतीक इनके दैनिक कार्य से जुड़े हैं। वे नफीस और नाजुक नहीं बल्कि खुरदेर है। मैले, कुचैले हैं, भौडे हैं, पर मज़बूत हैं। वे नये नहीं पुराने टूटे-फूटे समान से टेठे-मेढे, मुटे-तुडे होते है

---

१ डॉ. शंकर वसंत मुदगाल, *मुक्तिबोध का काव्य सौष्ठव,* पृ. १९२.

२ डॉ. सुधीशचन्द्र, हिन्दी कविता में युगांतर, पृ.

३ रमेश कुमार, *ओमप्रकाश वाल्मीकि कृत, बस्स बहुत हो चुका, संवेदना एवं शिल्प*, पृ. ९६

४ हरपाल सिंह अरुष, दलित साहित्य की भूमिका, पृ. १५४.

और जो उनकी अन्त्यज दशा और अकिंचनता के प्रतीक होते हैं। वे कल्पना की रंगीनियाँ लिए हुए नहीं बल्कि तथ्यों, तार्किक निष्कर्षों तथा सत्य से पैदा होते हैं''।[१]

दलित कविता का प्रतीक जीवन यथार्थ को व्यक्त करनेवाला है। इस तरह के प्रतीक परंपराशील दलित गीतों में भी मिलते हैं। यह उनके ही जीवन के दैनिक कार्यों, रहन-सहन से जुड़े रहते हैं। कंवल भारती ने 'चिडिया जो मारी गई' नामक कविता में चिड़िया को जातिगत दलित का प्रतीक माना है-

''वह चिडिया भूख से नहीं
चिडिया होने से पीडित थी/वह चिडिया थी
इसीलिए गुनहगार थी/चिडिया जो मारी गई''।[२]

यहाँ गुनहगार एक व्यक्ति के रूप में नहीं एक विचारधारा का प्रतीक है। प्रगतिवादी विचारधारा और दलित विचारधारा के भेद को 'चिडिया' स्पष्ट कर देती है।

सी. बी. भारती ने 'तितली' नामक कविता में स्त्री की जागरूकता को स्पष्ट करते हुए तितली को प्रतीक के रूप में अपनाया है-

''किन्तु आज तितली उदास नहीं है/अब तितली बेजुबान नहीं है
षड़यन्त्रों से अनजान भी नहीं है वह''।[३]

'पतंग और चरखड़ी' नामक कविता में मुकेश मानस बच्चों को पतंग और चरखड़ी का प्रतीक मानते हुए लिखते हैं-

---

१ रमणिका गुप्ता, *दलित हस्तक्षेप*, पृ. २०.

२ कवंल भारती, *तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती ?*पृ. २९.

३ सी. बी. भारती, *आक्रोश,* पृ. २९.

''जिन बच्चों के पास/चरखड़ी और पतंग नहीं थी
उन बच्चों ने खुद को / चरखड़ी बना लिया
और खुद को ही पतंग/ वो बच्चे अभी तक
खुशियों के अम्बर को/छूने की कोशिश में लगे हैं''[१]

दलित कवि लालचन्द राही दलितों की क्षत- विक्षत स्थिति को 'वृक्ष' के माध्यम से अभिव्यक्ति देते हैं-

''अब वृक्ष की कटी-छँटी टहनियाँ/ पुनः प्रस्फुटित होने लगी हैं
द्रुत गति से/बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में''[२]

कवि राज वाल्मीकि 'मुक्ति की आवाज़' नामक कविता में स्वयं को मुक्ति का प्रतीक मानते हुए कहते हैं-

''मुक्ति की आवाज़ हूँ मैं/लेखनी हूँ मैं
संघर्षरत आम आदमी की जीत का/उसके सिर पर ताज हूँ मैं''।[३]

हरपाल सिंह अरुष जी कविता की अर्थ व्याप्ति बताने के लिए पानी, आग, चाँद आदि प्रतीकों को अपनाते हुए लिखते हैं-

''कविता !तुम पानी की तरह शीतल होकर भी
आग की तरह दहक सकती हो/घोर अंधेरे में
चाँदी के सफेद सूरज-सी/चमक सकती हो''।[४]

---

१ मुकेश मानस, *पतंग और चरखडी*, पृ. १२.

२ लालचन्द राही, 'चेतना के स्वर' (सं. डॉ. एन. सिंह) पृ. १६.

३ विमल थोरात, सूरज बडत्या, *भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर*, पृ. ७४

४ हरपाल सिंह अरुष, *कविता अबोध बच्ची नहीं,* पृ.८.

श्यौराज सिंह बेचैन अन्धेरा और उजियाले के प्रतीक को लेकर सामाजिक न्याय दिलाना चाहते हैं। 'घोर अंधकार है' नामक कविता में दीपक को सामाजिक न्याय का प्रतीक बनाया है। आपने लिखा है कि-

''बडी उदास रात है/न मेल है न प्यार है।
जलाओ दीप साथियों/कि घोर अंधकार हैं।''[१]

डॉ. शत्रुघ्न कुमार 'सुबह-सुबह' शीर्षक कविता में 'चील' को ब्राह्मणों का प्रतीक तथा 'तोते' को दलित का प्रतीक मानते हुए लिखते हैं -

''तोते को किन्तु भागना नहीं चाहिए/ डर यूँ
पास उसके भी नाखून और / चोंच कठोर
इस्तेमाल करना चाहिए उसे भी/तीक्षण नाखून और कठोर चोंच
लेना चाहिए नोच/कर आक्रमण/ मुँह चील का
चलेगा पता तभी, उस चील को
लगता कैसा है मुँह नूचने पर
तभी तोता भी बना पायेगा अपना/ सुरक्षित स्थान''।[२]

समाज में जो आंतक फैलाते हैं उन्हें कवि 'शैतान' के नाम से संबोधित करते हैं शैतान बुरे लोगों का प्रतीक है, जो हमारे बीच में रहकर हमें सताते हैं, और शैतानी काम करते हैं। कवि असंगघोष 'शैतान' नामक कविता में कहते हैं-

''शैतान का/ x x x x
मानव को जाति धर्म में/विभाजित करता है

---

१ श्यौराज सिंह बेचैन, *नई फसल,* पृ. १४.

२ डॉ. शत्रुघ्न कुमार, *अग्निशिखा,* पृ. ५२.

भले ही वह हमारे जैसा ही/दिखता हो
मनुष्य नहीं होता।''[१]

जयप्रकाश कर्दम ने 'लालटेन' शीर्षक कविता में ऐसा प्रतीक रचा है जो समूचे दलित माँ की स्थिति का दयनीय चित्रण करता है-

''अन्धेरी ज़िन्दगियों को/रोशन करने के लिए
वह खुद बन गई थी एक लालटेन''।[२]

कवि दामोदर मोरे अपने आपको कटी पतंग का प्रतीक मानकर कहते हैं-

''जातिवाद के माँझे से कटी
अस्पृश्यता की आँधी में हड़बडाती
नीली-नीली सी
मैं एक कटी पतंग हूँ''।[३]

हिन्दू धर्म में जितना ढोंग और दिखावा है उतना शायद और कहीं नहीं होगा, यहाँ गाय को माता मानकर उसकी पूजा की जाती है लेकिन आदमी का तो शोषण किया जाता है। यहाँ गाय प्रतीक है- सहनशीलता का, नीरीहता का, भोला-भाला बेजुबान प्राणी है। भारतीय हिन्दु धर्म में गाय 'गोमाता' है। उसकी सुरक्षा समाज करता है। लेकिन दलित की स्थीति उससे भी नीचा है और उसका शोषण करता है। श्यौराज सिंह बेचैन, 'क्रौंच हूँ मैं' नामक कविता में लिखते हैं-

---

१ असंगघोष, *हम गवाही देंगे,* पृ. ४९.

२ कंवल भारती, दलित निर्वोचित कविताएँ, पृ. ८२.

३ प्रो. दामोदर मोरे, *सदियों के बहते जख्म,* पृ. ६७.

''तुम उदार थे/गाय के प्रति/और हम थे
आदमी की/शक्ल में निरे गाय''।[१]

'सैंसर जिंदगी' नामक कविता में कुंती औरतों को सैंसर अर्थात एक 'उपकरण' का प्रतीक मानते हुए लिखती हैं-

''जन्म से लेकर मृत्यु तक/महिलाओं की जिंदगी
होती है सैंसर जिंदगी''।[२]

सच में समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखें तो नारी एक आजीवन उपकरण ही है, जो हमारे सामने अलग अलग रूपों में काम करती है।

उमराव जाटव 'कैक्टस बनो' नामक कविता में लिखते हैं-

''सघन हरित लताएँ बन कर
सुकुमार कोंपले उगाने की चाह मत करो
मनुशास्त्रों की सीढ़ियों पर खडे/उच्चवर्गीय हिंसक जिराफ
तुम्हें फलने नहीं देंगे
इसलिए अपने बल पर उगकर/ बाहुबल के कांटों से सुसज्जित
श्रम की खाद से पोषित/आकाश की ऊँचाईयाँ प्राप्त
कैक्टस बनो/कोमलता, कमनीयता, तथा सुगंध
सब बकवास है/हिंसक जिराफों से लड़ना है तो''[३]

---

१ श्यौराज सिंह बेचैन, *क्रौंच हुँ मैं,* पृ. ३०.

२ प्र. सं. रजनी तिलक, *समकालीन भारतीय दलित महिला लेखन,* पृ. २५५.

३ प्र. रजनी तिलक (सं.), *समकालीन भारतीय दलित महिला लेखन,* पृ. ७७.

कवि यहाँ 'कैक्टस' को दलित का प्रतीक तथा 'जिराफ' को उच्च वर्ग का प्रतीक मानकर दलितों को जगाया है। प्रकृति से नये प्रतीकों को लेने में दलित कवि सफल निकले हैं।

कवि सुखवीर सिंह पुराने प्रतीकों को नया अर्थ दिया है। उनकी 'सूर्यांश' नामक कविता संग्रह की एक कविता है 'धुआँ' उन्होंने धुए को बिलकुल नये अर्थ में प्रयोग किया है। यहाँ धुआँ दलित वर्ग के जीवन-संघर्ष का प्रतीक है। धुआँ वहाँ होता है, जहाँ आग है। धुआँ आग से पहले आता है। धुएँ और आग का संघर्ष पुराना है। धुआँ संघर्ष का प्रतीक है जो दलित वर्ग के जीवन को उसके संघर्ष को राख होने से बचाता है।

"तुम अग्नि हो/तो हम धुएँ की तरह
ज़िन्दगी को राख होने से/बचाने के लिए /प्रयत्नरत/ धुआँ"[१]

दलित कविता के प्रतीक यथार्थता से उपजे हैं। ये प्रतीक दलित जीवन की गहराई से जुडी है। दलित कवि अपने अर्थ के प्रभावी सम्प्रेषण के लिए नए नए प्रतीकों का प्रयोग करते हैं।

४.१.२.५ दलित कविता में बिंब

'बिम्ब-विधान' काव्य-कला का सृजनात्मक पक्ष है जो कविता की सर्जना में कवि की कल्पना और सौन्दर्यानुभूति से उद्‌भूत होता है। काव्य में प्रयुक्त आलंकारिकता से युक्त बिम्ब को ही सामान्यतः काव्य बिम्ब कहते हैं। कल्पना से ही काव्य बिंब का निर्माण होता है। काव्य बिंब वास्तव में बीते हुए जीवनानुभव का प्रस्तुतीकरण है। सादृश्य कल्पनाएँ ही काव्य बिंबों का आधार है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'चिन्तामणी' में लिखा है- "काव्य में अर्थ ग्रहण मात्र से काम नहीं चलता बिंब ग्रहण भी अपेक्षित होता है, जहाँ

---

१ डॉ. तेज सिंह, *आज का दलित साहित्य*, पृ. ९७.

कवि अपने सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा वस्तुओं के अंग-प्रत्यंग, वर्ण, आकृति तथा उसके आसपास की परिस्थिति का संश्लिष्ट विवरण देता है''।[१] डॉ. मिशकान्त आविंदी बिंब का आशय स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि - ''बिंब का शाब्दिक अर्थ छाया अथवा चित्र है। कलाकार की कल्पना अथवा चिन्तन से जन्मी गंभीर अमूर्त आकृतियाँ बिंब के माध्यम से आकार ग्रहण करती हैं।''[२] डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ बिंब के महत्व को रेखांकित करते हुए कहते हैं- ''काव्य बिंब का महत्व पर्याप्त है क्योंकि यह कवि की संवेदना की गहराई से उत्पन्न मात्र काव्य भाषा की प्रतीति नहीं, अपितु काव्य की अर्थव्याप्ति के लिए प्रयुक्त एक संश्लिष्ट एवं तीव्र ग्राह्य चित्र है''[३] अतः बिंब वह शब्द चित्र है जो भाव को पूर्ण रूप से हमारे सामने प्रस्तुत करता है। इससे स्पष्ट है कि बिंब का संबन्ध कवि की कल्पना, एवं स्मृति तथा जीवन और जगत की विविध अनुभूति से है। बिंब विविध प्रकार के है जैसे दृश्य बिंब, श्रव्य बिंब, स्पर्श बिंब, घ्रातव्य बिंब (जंगल, गाँव और नगर परिवेश से संबन्धित गंध संवेदना की झलक) आस्वाद्य बिंब आदि।

दलित कविता का बिंब उपर्युक्त अभिजन कविता के बिंब संबन्धी विचार से बिलकुल अलग है। इसकी बिंब योजना दलित वर्ग की यथास्थिति का बयान करती है। दलितों का यथार्थ, त्रासदी और उनके संघर्ष के विभिन्न चित्र दलित कविता के बिंब में दिखाई पड़ते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं- ''दलित कविता के बिबं दलित जीवन की त्रासदी और इसके यथार्थ को व्यक्त करते हैं। दलित कविता में अंधेरा, आसपास के परिवेश में गंदगी की सड़ाध, सीलन भरे तंग मकानों में सिसकती ज़िन्दगी दलित जीवन का यथार्थ है जो उनके जीवन का अविभाज्य घटक बन गए हैं। उन वस्तुओं को दृश्य बिंब के स्थान पर रखकर दलित कवि इन्हीं वस्तुओं में अपने जीवन का प्रतिबिंब ढूँढता

---

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, *चिंतामणी,* पृ. ९७.

२ मिशकान्त आविंदि, सौन्दर्यशास्त्रीय आलोचना के नये आयाम, पृ. २०.

३ राम अवतार यादव, दलित साहित्य का सौन्दर्य बोध, पृ. १०४.

है''।[१] अतः हम कह सकते हैं कि दलित कविता पुराने अभिजात बिंब-प्रतिबिंबों को तोड़कर नये बिंबों का पुनर्निर्माण करती है। दलित कविता के बिंब में कल्पना, रोचकता, अलंकार योजना, शब्द चयन आदि दलित जीवन के आधार पर रूपायित होती हैं। यह जीवन का यथार्थ, भोगा हुआ सच को ही प्रतिपादित करती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'झाड़ूवाली' कविता की पंक्तियाँ बीते हुए जीवनानुभव का प्रस्तुतीकरण है-

''रामेसरी के हाथ में/थमीं बाँस की मोटी झाड़ू
सड़क के ऊबड़-खाबड़ सीने पर
श्च-श्च की ध्वनि तैरती है/उड़ाती है धूल का गुब्बार
धूलर जो सैकड़ों वर्षों से/जम रही है परत-दर-परत
फेफड़ों में रामेसरी के/रंग रही है श्वासनली को
कारखाने से उठते धुएँ सी''।[२]

इन पंक्तियों में आए झाड़ू, धूल, धुआँ आदि के बिंब दलितों के जीवन-सन्दर्भ से जुडे हुए हैं-

अनिता भारती की 'मासूम' शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियां निम्नांकित हैं-

''रोएँगे, लडेंगे, कटोरदान में रोटी ढूँढेंगी
दूसरों को स्कूल जाते देख बिसुरेगे
चन्द्रों करेगी गालियाँ झाड़ू से साफ/बहाएगी बदबूदार पेशाब''।[३]

इन पंक्तियों में आए रोटी, गालियाँ, झाड़ू, बदबूदार पेशाब आदि बिंब दलितों के जीवन की वास्तविकता से जुडे हुए हैं। ऐसी परिस्थिति को भूखे, शिक्षा से वंचित दलित

---

१ डॉ. हरिनारायण ठाकूर, *दलित साहित्य का समाजशास्त्र*, पृ. १३६.

२ ओमप्रकाश वाल्मीकि, *सदियों का संताप,* पृ. ५३.

३ डॉ. रजतरानी मीनु, *हिन्दी दलित कविता,* पृ. १३८.

बच्चों को ही झेलनी पड़ती है। बदबूदार पेशाब दलितों के काम काज को सूचित करता है। ऐसी सामाजिक स्थिति दलित और उनके बच्चों को ही क्यों झेलना पड़ता है? सवर्ण क्यों ऐसा कामों से बच जाता है? आदि सवालों का जवाब दलित कविता ही दे सकती हैं, जो मुख्य धारा कविता नहीं दे पाये। यही इसका समाजशास्त्रीय पहलू है।

भारतीय समाज में हर पिता अपनी पुत्री से कहते हैं कि बेटी! टोपी की/पगडी की लाड रखना। मानो बाप की टोपी कपड़े की नहीं बेटी के जिस्म की बनी होती है। टोपी का संबंध सिर्फ बेटी से है, बेटे से नहीं। शांति यादव 'बाप की बेटी' नामक कविता में बाप की टोपी पराया जानेवाली बेटी का बिंब खींचते हुए लिखती हैं-

''टोपी कभी नहीं फटती है/
बेटियाँ मिटती हैं
क्यों कि टोपी की सुरक्षा को/हज़ारों बेटियाँ /कम पड़ती हैं''।[१]

सूरज बडत्या का 'इतिहासः एक ' नामक कविता की कुछ पंक्तियाँ हैं-

''इतिहास कभी भी/बेजुबां नहीं होता
बंधुआ हो सकता है कभी/ या ये हो सकता है कि
इतिहास की 'दासता'/ अंधेरे कोने में पडी रहे बेबस''।[२]

यहाँ 'दासता' शब्द दलितों को सूचित करने वाला बिंब है, जो सदियों से इतिहास का गुलाम है।

डॉ. भूपसिंह 'जंगल' नामक कविता में जंगल के ज़रिए दलित समाज का बिंब खींचते हुए लिखते हैं, जैसे फलहीन जंगल को कटाया जाता है, फिर से उसमें विभिन्न

---

१ कवंल भारती, *दलित निर्वोचित कविताएँ,* पृ. २०१.

२ विमल थोरात, सूरज बडत्या, भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर, पृ. ६९.

टहनियाँ निकल आती है, उसी प्रकार दलितों पर अत्याचार करने से वे एकत्रित होकर संघर्ष करने केलिए आ जाऐंगे। वे लिखते हैं-

''तब से आज तक/आदमी जंगल काट रहा है।
एक शाखा कटाती है/हज़ार टहनियाँ निकल आती है''।[१]

सी.बी. भारती की कविता 'सिसकता आत्मसम्मान' में जो बिंब है, अपनी आक्रोशपूर्ण अभिव्यक्ति को प्रभावित करता है-

''तुमने जी है गुलामी/कीडे-मकोडे से बदतर ज़िन्दगी
छीजती इज्जत/बिखरते सम्मान''।[२]

यहाँ गुलामी, कीडे-कमोडे आदि बिंब दलितों के जीवन का प्रमाण है। इस तरह चन्द्रकुमार वरठे ने भी अपने नये बिंब के माध्यम से दलितों की ज़िन्दगी का कटु अनुभव व्यक्त करते हुए लिखा है-

''इन अनाम बस्तियों की/बदबूदार छत के नीचे
मैं ने भी उम्र की किताब/यूँ फाड डाली
जैसे/फडता है कोई बलात्कारी
नव योवना के वस्त्र''।[३]

इन पंक्तियों की बदबूदार छत, उम्र की किताब, नव यौवन के वस्त्र आदि बिंब दलित जीवन की त्रासदी को व्यक्त करते हैं।

---

१ डॉ. रजतरानी मीनु, *हिन्दी दलित कविता*, पृ. १२५.

२ रमणिका गुप्ता, *दलित चेतना,* पृ. ८३.

३ एन. सिंह, *दर्द के दस्तावेज़,* पृ,. ५७.

शब्दों को सामाजिक क्रांति के हथियार बनानेवाला कवि जयप्रकाश लीलावान 'क्रांति की ज़रूरत' नामक कविता में आक्रोश के स्वर में क्रांति का ऐलान करते हैं, क्योंकि उसकी दृष्टि में बिना क्रांति के परिवर्तन संभव नहीं है- वे लिखते हैं-

''क्रांति की ज़रूरत/ निर्लज्जता जहाँ
सहजता के आधार ले चुकी हो,
जहाँ शास्त्र और साहित्यकारों
के जिन्दा शव चेतना की''।[१]

मलखान सिंह की 'सफेद हाथी' नामक कविता में 'सफेद हाथी' अत्याचारी सवर्णों का प्रतीक है। जो दलितों को सताकर उसका जान ले सकता है। अत्याचारी सवर्ण सब कुछ करने पर भी बच जाता है और पूजनीय भी है। कवि ने दलितों की वास्तविक स्थिति व्यक्त किया है-

''ज़िन्दा रहने की भीख मांग रहे हैं/और हाथी
अपने खम्भे जैसे पैरों से
हमारे पसलियाँ कुचल रहा है''।[२]

सुखवीर सिंह की 'बयान बाहर' नामक कविता की कुछ पंक्तियाँ हैं-

''एक गाँव है/जो मेरे कन्धे पर बैठा है
गिद्ध की तरह/बार-बार अपने नुकीले पंजो से
कन्धों को दबाता है''।[३]

---

१ डॉ. जयप्रकाश कर्दा, *दलित साहित्य वार्षिकी*, २००४, पृ. २१४

२ विमल थोरात, सूरज बडत्या, *भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर*, पृ. २५.

३ कवंल भारती, *दलित निर्वाचित कविताएँ,* पृ, १६७.

इसमें गिद्ध, नुकीले पंजो आदि बिंबों के माध्यम से गाँव के टूटता-फूटता जीवन का दृश्य प्रत्यक्ष होकर सामने खडा होता है।

मोहनदास नैमिशराय की 'रात में डूबा हुआ लोकतन्त्र ओर वे' नामक कविता की कुछ पंक्तियाँ नीचे दिया है-

''उनका शोर सुनकर/माताओं के स्तन मुँह में डाले
बच्चों चौंक उठते हैं/
पिता खिड़की पकड़ते/सांकल, सिटकनी को देखते
कमज़ोर दरवाज़ों को छूकर/उनकी ताकत का अहसास करते
उनके आने पर जाग हो जाती/कुत्ते सतर्क हो उठते
और आदमी/अपने-अपने कटघरों में
अपनी-अपनी धड़कनों को ही/सुनने का प्रयास करते ''।[१]

यहाँ सांकन, सिटकनी, कमजोर दरवाजे, कुत्ते, कटघरा आदि बिंबों के माध्यम से कवि दलितों को दूसरी आज़ादी का सपना दिखाती है। इन पंक्तियों की सशक्त बिंबात्मक अभिव्यक्ति दलित कविता को नया आयाम देती है। दलित कविता में प्रयुक्त बिंब आक्रोश एवं विद्रोह की सशक्त अभिव्यक्ति बनते हैं।

डॉ. सुशीला टाकभौरे की कविता की कुछ पंक्तियाँ हैं-

''तुम्हें क्यों शर्म नहीं आई?
गल चूकी मोमबत्तियाँ
आज वह जंगल की आग है/बुझाए न बुझेगी''।[२]

---

१ मोहनदास नैमिशराय, *आग और आंदोलन,* पृ. ४२-४३.

२ ओमप्रकाश वाल्मीकि, *दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र,* पृ. ८६.

यहाँ मोमबत्ती, जंगल की आग ये दो विलोम बिंबों के द्वारा नारी विद्रोही स्वर को मुखरित किया है।

डॉ. ए. अच्युतन की 'हाथी का मर्म' नामक कविता की कुछ पंक्तियाँ नीचे दिया है-

''कल मैं ने एक सपना देखा
एक छोटी-सी नन्ही -सी चींटी ने/हाथी को मारा।
अपने से बडे जीवियों के पैरों से
हमेशा कुचल-कुचलकर, हारने वाली/मरने वाली, दलित पीडित
छोटी-सी नन्ही-सी चींटी ने
आज पहली बार हाथी को मारा।
x x x x x
लेकिन सोच विचार कर/चाणक्य हाथी ने कहा
यह खतरनाक है/चींटी ने हाथी का मर्म पहचान लिया है''।[१]

इस कविता में हाथी (सवर्णों) चींटी (दलित) आदि बिंबों को सामने रखकर दलित कविता को नयी दिशा प्रदान किया है, साथ में दलित संघर्ष और मुक्ति को उभारा है।

'कचरा रथवाली' नामक कविता में सदाशिव कौतुक ने कचरा समेटने वाली दलित महिला के जीवन का जीता-जागता चित्रण प्रस्तुत किया है-

''कचरा रथवाली
बेकार समझ फेंकी गई वस्तु को

---

[१] डॉ. ए. अच्युतन (सं.), *मलयालम दलित साहित्य दृष्टि और सृष्टि*, पृ. १५०.

सम्हालकर रख लेती खोले में
शायद मिल जाए कुछ दाम
या घर पर आ जाए किसी काम''।[१]

अपनी दरिद्रता या अभाव के संदर्भ में भी वे भीख नहीं माँगती। दूसरों के लिए कचरा समेटना हीन कर्म है, लेकिन और कोई अच्छे काम न मिलने के कारण अपने परिवार को भूख से बचाने के लिए स्वाभिमानी बनकर वह काम करती है।

गणेश राय बोले की 'आतंकी और विकासी' नामक कविता की कुछ पंक्तियाँ हैं-

''आतंकी के पास/बम है
विकासी के पास बुलडोजर
कुछ नहीं जिनके पास/उन्हें है, चिथड़ा-चिथड़ा होना
या बुलडोजर के नीचे
पिचली-पिचली होना''।[२]

यहाँ बम, और बुलडोजर, क्रमशः आतंकी और विकासी का पर्याय है। चिथड़ा, पिचली ये दो शब्द दलित वर्ग के लिए है जिनके पास न विकास है, न कोई रास्ता। कवि ने हर एक वर्ग के लिए नये बिंब को अपनाते हुए सच्चाई का चित्रण किया है। व्यवस्था परिवर्तन की मानसिक स्थिति को व्यक्त करने वाले बिंब दलित कविता में विद्यमान है।

दलित जीवन संस्कृति का परिणाम है। उसके मूल में मानवीयता काम करती है। बिंब की जो चित्रात्मकता है उसमें मानवीय और अमानवीय के बीच के संघर्ष का बिंबात्मक प्रस्तुतीकरण मिलता है।

---

१ मोहनदास नैमिशराय (सं), बयान अक्तूबर, २००९, पृ. २५.

२ मोहनदास नैमिशराय (सं), बयान, अक्तूबर २००९, पृ. ३७.

४.१.२.६ दलित कविता की मिथकीय आयाम

मिथक का आरंभ मानव के साथ हुआ है। पृथ्वी, आकाश, समुद्र, जल, अग्नि, वायु, तूफान, सूर्य, चन्द्र, गुफाएँ आदि मिथक को जन्म देती है। मिथक के अर्थ का आयाम विस्तार वैश्विक है। ''उनका विश्व 'वसुधा का कुटुम्ब' है। उनकी अधिभाषाएँ विश्वभर में गुफाओं के शैलचित्रों, ईजिप्ट-मेक्सिको के पिरमिडों की चित्र -शिल्प-लिपियों, मेसोपोटामिया - बेबीलॉन के महाकाव्य- रूपकों, फूजी-पर्वत ओलिंपस-पर्वत-अमेज़न के सघन कांतार, अफ्रीका के कबीलों, पीली नदी, अंगकोर वाट, वैदिक आर्यों की ऋचाओं-रामायण- महाभारत में आज तक गूँजती चली आ रही हैं। ग्राफ (आरेख) में वे इतिहास के OX-अक्ष, OY- अक्ष पर पूर्वेतिहास को गढ़ती हैं। सो वे अन्तर्बद्ध भी हैं। उनकी यात्रा अनन्त से अनादि तक अनवरत हो रही है। मिथकीय कल्पना, तर्कपूर्व, संस्कृतिपूर्व, नैतिकतापूर्व रही है। यह कालबोध एवं देश बोध का अतिक्रमण करती है। उसमें इतिहास और समाज भी तिल-तंडुलवत् आन मिलते हैं। उनका काल 'शाश्वत वर्तमान' है''[१]। विश्वमानव प्रारम्भ में एक रहा था। मिथक एवं भाषा का विकास एक साथ हुआ था। मिथक का संबन्ध आदि मानव की मौखिक परंपरा के साथ भी है। मिथक विश्वास एवं व्याख्या पर केंद्रित है।

मिथक शब्द का प्रयोग अंग्रेज़ी के 'मिथ' (myth) से विकसित हुआ है। आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने मिथ के स्थान पर सर्वप्रथम 'मिथक' शब्द का प्रयोग किया है, जिसका अर्थ है 'रहस्यात्मक पौराणिक' अथवा 'धार्मिक गाथा'। ''मिथक पंरपरा की पूरी शक्ति से यथार्थ को उभारने और यथार्थ आधुनिकता की पूरी शक्ति से मिथक को नया स्तर देने में द्वंद्वात्मक रूप से सन्नद्ध हो जाते हैं, जिसकी परिणति कला, साहित्य, और

---

१ रमेश कुंतल मेघ, विश्वमिथकसरित्सागर, पृ. २४७.

संस्कृति के विकास में होती हैं''[१] मिथक के मूल में मनुष्य की वैश्विक अवधारणा की ओर लोरन्स भी संकेत देते हैं।[२]

मिथक की अनेक विशेषताएँ है, जिसकी सार्वकालिकता की ओर रमेश कुंतल मेघ भी संकेत करते हैं।[३]

अतः दलित कविता के समाजशास्त्रीय अध्ययन में मिथकीय आयाम का महत्व स्वयं सिद्ध होता है।

---

१ शंभूनाथ, *मिथक और आधुनिक कविता,* पृ. १२.

२ Laurence coupe, *myth,* The work of myth is to explain, to reconcile, too guide action or to legitimate. We can add that myth-making is evidently a primal and universal function of the human mind as it seeks a more-or less unified vision of the cosmic order, the social order and the meaning of the individuals life. Both for society at large for the individuals this story-genrating function seems irreplaceable. The individual finds meaning in his life by making of his life a story set within a large social and cosmic story. p. 5-6

३ रमेश कुंतल मेघ, *विश्वमिथकसरित्सागर,* (i) मिथक के भव्यवृत्तान्त साहित्य के भव्यवृत्तान्तों से भिन्न होते हैं, मिथक में शब्द का साहचर्य अर्थ की अपेक्षा कर्मकांड अथवा साम्यरूपक से होता है, (ii) मिथक का रिश्ता सपना, दिवास्वप्न, फांतासी से अधिकाधिक होता है। जिससे अतिप्राकृतिकता और अतियथार्थता भी अनुचिन्तन बन जाती है जबकी साहित्य में ये प्रोक्ति विधियाँ है; (iii) मिथक के नानीविध पाठों में-से हम चयन तथा आग्रही ग्रहण कर सकते हैं जबकि साहित्यिक कृति स्वयं पूर्ण तथा स्वायत्त होती है; (iv) मिथक देशकाल से उत्तीर्ण होती है जबकि साहित्यिक कृति देशकाल में परिपाक पाकर ही कालजयी होती है; (v) मिथक की हम व्याख्या कर सकते हैं, निष्कर्ष दे सकते हैं। निर्णय नहीं दे सकते। साहित्यिक कृति का हम मूल्यांकन, तथा नानाविध विश्लेषण, आलोचिन्तना कर सकते हैं; (vi) मिथक का संबन्ध तार्किकता तथा प्रामाणिकता तथा वास्तविकता से नहीं हुआ करता जबकि साहित्यिक आलोचिन्तन में यथार्थता, तार्किकता तथा प्रामाणिकता अनिवार्य है; (vii) मिथक- अभिग्रहण की धुरी विश्वास है, जबकि साहित्य की रस तथा आलोचिन्तना की चिन्तनात्मकता, तथा (viii) मिथक के 'भव्यवृतान्त' साहित्य के 'श्रेष्ठ ,सुन्दर वृत्तान्त' से भिन्न होते हैं। इसलिए मिथक एवं (साहित्यिक) कृति की रिश्तेदारी में हम पाते हैं कि मिथकें गल्पकृतियों तथा कलाकृतियों का तो आधार रही है। अतः मिथक की व्यापकता कृति से कई गुना अधिक है''। पृ. xiii.

मिथक का सीधा संबन्ध लोक से है, लोक संस्कृति से है, साहित्य और कला से है। दूसरे शब्दों में लोक-जीवन का पुनर्निर्माण की प्रक्रिया में मिथक का महत्वपूर्ण स्थान है जो सबसे प्राचीन है।[१]

दलित कविता के विश्लेषण से यह सिद्ध हो जाता है कि यह पुराने मिथकों को नयी परिभाषाएँ देने में उत्सुक हैं। साथ में नये मिथकों को ढूँढते हैं। नये मिथक के द्वारा दलित कविता में छिपी हुई सच्चाई को वाणी दे रहे हैं। हम जानते हैं कि अभिजात कविता के मिथक सामन्ती व्यवस्था या ब्राह्मण तंत्र से ओत प्रोत है। उन्होंने सच के स्थान पर झूठ को ही महिमामण्डित किया है। इसके विपरीत दलित कविता इस झूठ को तोड़कर सच्चाई को सामने लाती है। समाज जिसे अछूत या बहिष्कृत समझी जानेवाली मानव जातियाँ ही दलित कविता का नायक है।

अभिजात वर्ग ने अपना एक मिथक बनाया है। जिसके मूल में चातुर्वर्ण्य व्यवस्था है। इस समाज में ब्राह्मण सबसे ऊपर है और उससे संबन्धित मिथक भी उसी तरह का होता है। स्वाभाविक है अभिजातों की कविता में अपने अलग मिथक का निर्माण या व्याख्या देखने को मिलता है। वहाँ शूद्र का स्थान सबसे नीचे हैं। वे दास ही है। उसे ज्ञानर्जन का, चलने का, धन कमाने का, शिक्षित होने आदि केलिए हक नहीं है। अतः राम द्वारा शम्बूक की हत्या का मिथक सारगर्भित हो जाता है। मनु के द्वारा बनाये गये नियम मनुस्मृति से मनु अपने-आप में एक मिथक बन जाता है। इस मनु के मिथक को मिटाने केलिए या शूद्रों को दासता से मुक्ति पाने केलिए 'स्पार्टकस' जैसे रोमन मिथक का उपयोग करते हैं।

---

१ रमेश कुंतल मेघ, *विश्वमिथकसरित्सागर,* पीछे जाने पर यह लोक ही पूर्वेतिहास के अन्तर्गत ईजिप्ट, मोहेनजोदारो की सभ्यताओं में लोकजीवन का पुनर्निमण करता है तो आगे बढ़ने पर संस्कृति एवं कला के समाजशास्त्र का समावेश करता है। पृ. xviii.

पुष्पा भारती 'दासता से मुक्ति' नामक कविता में इस स्पार्टकस से और एक बार जन्म लेने को कहती हैं। जिस तरह रोमन साम्राज्य के खिलाफ एक व्यापक दास विद्रोह में जिसे तीसरा दास युद्ध कहा जाता है, वे दासों के सबसे उल्लेखनीय नेता थे, उसी तरह दलितों को दासता से बचाने के लिए कहती हैं-

''किंतु इस बार स्पार्टकस के सभी रूप/ अनेकों रूप लेकर
जन्मे हैं घर घर के/हर आंगन में
दासता और क्रूर मालिको/शोषकों और शोषण
सावधान मुट्ठियां भिंच रही हैं''।[१]

रमणिका गुप्ता 'स्पार्टकस' नामक कविता में शोषण एवं दासता से मुक्ति पाने के लिए 'स्पार्टक्स' के मिथक को लेकर पूछती हैं-

''क्या तुम बनोगे स्पार्टकस?
मिटाने मनु का मिथक/रचोगे खुद ही चक्रव्यूह''?[२]

'अछूत-दान' नामक कविता में मुकेश मानस ने मिथक के माध्यम से ब्राह्मणों के व्यवहार पर व्यंग्य करते हुए लिखा है-

''मगर एकलव्य कैसे करता इंकार
मांग रहा था कोई ब्राह्मण
हाथ फैलाकर शिक्षा/किसी अछूत से पहली बार''।[३]

---

१ प्र. सं. रजनी तिलक, *समकालीन भारतीय दलित महिला लेखन*, पृ. १८५.

२ रमणिका गुप्ता, *प्रतिनिधि कविताएँ*, पृ. ६३.

३ मुकेश मानस, *पतंग और चरखडी,* पृ. ६६.

दलित कवियों ने मनुष्य की स्वतंत्रता, समता और बन्धुता केलिए आवाज़ उठायी है। लेकिन दलितों के प्रतिरोध को ब्राह्मणशाही शक्तियाँ सत्ता की ताकत से हमेशा कुचलती रही है। स्वामी अछूतानन्द जी ने इसे यों व्यक्त किया है-

''अगर हम करवटें लेकर कहें, हमको मनुज समझो।
तो उनका धर्म जाता है, गजब की धर्म माया है।
कही बेमानी अत्याचार की इनकी कहानी जब।
जुबाँ काटी व सीसा कान में तब ही पिलाया है।
तपस्वी सन्त श्री शम्बूक का सिर भी गया काटा।
महा अपराध तप करना, गया उनका बताया है
गया काटा अंगूठा श्री धनुर्धर एकलव्य जी का।
कहा क्यों बाण विद्या में आर्य क्षत्री लजाया है।।''[१]

हमारे समाज का दुखद पहलू है कि आज भी द्रोणाचार्य और तुलसी की अतार्किक सोच इसमें प्रभावी है। यह सोच समता मूलक समाज के निर्माण में सबसे बडी बाधा है। प्रोफेसर शत्रुघ्न कुमार ने अपने काव्य में इस बाधा को दूर करने का आह्वान किया है। समतावादी क्रान्ति को स्वर देते हुए आपने द्राणाचार्य का अँगूठा काट लेने की सीख अपनी 'मेरिट' कविता के माध्यम से निम्नांकित प्रकार दी है-

''काट लेना अब तो/बढ़ अँगूठा द्रोणाचार्य का
बचाना है मेरिट को/समाज देश के उत्थान के लिए''।[२]

---

१ कवंल भारती, दलित कविता का संघर्ष, पृ. ४५.

२ डॉ. शत्रुघ्न कुमार, अग्निशिखा, पृ. ५५.

सवर्णों को चेतावनी देते हुए कवि असंगघोष 'तुम्हारा दाँव' नामक कविता में कहते हैं कि हम जो एकलव्य और कर्ण नहीं जो तुम्हारे इतिहास ने उन्हें छल से मारा था। अब हम से तुम सावधान रहो!

"न एकलव्य /न हम वो कर्ण रहे
अब हम भी/सीख चुके हैं/तुम्हारी चौसरी चाले।"[१]

रामायण, महाभारत काल से शूद्र उपेक्षित हैं। सुशीला टाकभौरे 'भील एकलव्य' कविता में गुरुदक्षिणा के नाम से पीड़ित एकलव्य की बात कहती है, हे! वीर योद्धा स्वार्थी, परंपरावादी व्यवस्था के साथ क्यों दिया? क्यों अंगूठे के साथ पूरी जाति का हाथ कटवाया? पार्थ को श्रेष्ठ होने का सम्मान क्यों दिया? वे कहती हैं-

"किसकी प्रशंसा करे इतिहास?
अंधी गुरु भक्ति की
या नपुंसक वीरता की"।[२]

पौराणिक मिथक को लेते हुए रमणिका गुप्ता द्रोपदी के माध्यम से संपूर्ण स्त्री समाज के आक्रोश व्यक्त करती हुई पूछती हैं-

"जिस पर/मोहरा बनी खड़ी
नंगी द्रोपदी पूछती/सवाल.....
मुझे दाव पर लगाने का तुम्हें
किसने दिया अधिकार...../दो जवाब?"।[३]

---

१ असंगघोष, *हम गवाही, देगे,*पृ. ६३.

२ सुशीला टाकभौरे, *यह तुम भी जानो,* पृ. २६.

३ रमणिका गुप्ता, *अब मूरख नहीं बनेंगे,* पृ. ११.

सी.बी. भारती का मानना है कि सवर्णों ने सारी सुविधाएँ, सारा ज्ञान और सारी विद्याएँ सीखने की कला, मात्र अपने और अपने कुल की पीढियों के लिए ही सुरक्षित कर रखी थी। इसी आरक्षण के चलते सुयोग्य प्रतिभाशाली एकलव्यों की प्रतिभा को नष्ट किया गया.... उसी आरक्षण का परिणाम तथा विश्वासघाती तथा बनावटी लोगों के पास सत्ता सुख का भोग है। 'सियासत' नामक कविता में वे लिखते हैं।

''द्रोणाचार्य जैसे विश्वासघाती गुरु, अर्जुन जैसे बनावटी धनुर्धारी
जिसके लिए तुम्हारी कुत्सित व्यवस्थाओं के
षड्यन्त्र में/कटते रहे है अँगूठे
सुयोग्य, प्रतिभाशाली व दक्ष एकलव्यों के''।[१]

गाँधारी को लक्ष्य बनाकर सी. बी. भारती 'गाँधारी' नामक कविता में समाज में महिलाओं के अंधविश्वास को तोड़ना चाहता है कि पति परमेश्वर है-

.....''तुम पर तो छाया था अंधविश्वास, व धर्म का जुनून
नेत्रहीन पति की खातिर
आँखों में पट्टी बाँध लेना था कहाँ का कानून''।[२]

पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह 'शशि' एकल्व्य कविता में अपनी व्यथा को कलात्मक अभिव्यक्ति देते हुए कहते हैं-

''एकलव्य?/ तुम्हें भोला भण्डारी कहूँ या ज्ञानी मूर्ख
जो अँगूठा काटकर
दे बैठे एक ऐसे गुरु को दक्षिणा में

---

१ सी. बी. भारती, आक्रोश, पृ. २१.

२ कालिचरण स्नेही, *हिन्दी साहित्य में दलित अस्मिता*, पृ. १०९.

जिसने तुम्हें नहीं सिखाया था,
क, ख, ग, भी/धनुर्विद्या का''।[१]

डॉ. दयानंद बटोही की कविता 'द्रोणाचार्य सुनें:उनकी परम्पराएँ सुने' में एकलव्य की पीड़ा को अतीत से लाकर वर्तमान में जोड़ा है। जहाँ आज भी शिक्षा संस्थानों में द्रोणाचार्य की परंपरा के वाहक अनेकों एकलव्यों की प्रतिभाओं को नष्ट कर रहे हैं।

''द्रोण तुम्हारे रास्ते पर चले गुरु से कहता हूँ
अब दान में अंगूठा माँगने का साहस
कोई नहीं करता/प्राक्टिकल में फेल करता है
जाति गंध टाइटिल में खोजता हैं''।[२]

माता प्रसाद जी भी घटिया गुरु के बारे में यूँ कहते हैं-

''एकलव्य को शूद्र कहि, दिये द्रोण न ज्ञान
ले अँगूठा गुरु दक्षिणा मित्र झूठ गुरु ज्ञान''।[३]

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविता की पंक्तियों में शम्बूक के मिथक के माध्यम से कवि ने दलित क्रान्ति को वाणी दी है-

''शम्बूक, तुम्हारा रक्त ज़मीन के अंदर
समा गया है,/ जो किसी भी दिन
फूटकर बाहर आएगा/ज्वालामुखी बनकर''।[४]

---

१ कालिचरण स्नेही, *हिन्दी साहित्य में दलित अस्मिता*, पृ. १०९.

२ रमणिका गुप्ता, *दलित चेतना,* पृ. ९३.

३ सं. डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन, *सामाजिक न्याय और दलित साहित्य*, पृ. २४०.

४ ओमप्रकाश वाल्मीकि, *सदियों का संताप,* पृ.

धर्म, दर्शन, पौराणिक मिथकों की पुनर्व्याख्या दलित कविताओं की विशेषता है। हिन्दू दर्शन समस्त मानव की ही नहीं जीव मात्र की आत्मा को एक ही ब्रह्मा का अंश मानता है। लेकिन दलितों के प्रति अमानवीय व्यवहार करते हैं।

''चूहडे या डोम की आत्मा/ब्रह्मा का अंश क्यों नहीं है
मैं नहीं जानता/शायद आप जानते हैं।''[१]

दलित कवियों ने एक नयी इतिहास दृष्टि विकसित की है। कंवल भारती ने 'शम्बूक' नामक कविता में शम्बूक की हत्या पूरी दलित चेतना की हत्या घोषित किया है-

''क्योंकि तुम्हारी हत्या/दलित चेतना की हत्या थी,
स्वतंत्रता, समानता और न्याय बोध की हत्या थी
किन्तु, शम्बूक/तुम आज भी सच हो''।[२]

आज फूलन देवी दस्यू नहीं बल्कि बलात्कारियों को खुद दंडित करने वाली वीरांगना है। बंदूकधारी फूलन है जो बलात्कारियों को दंड देना चाहती है। फूलन देवी का नया मिथक हमारे सामने आते हैं। लेखक सुमनाक्षर कहते हैं-

''फूलन दलित, शोषित समाज का प्रतीक है
वह हमारी ही नहीं नारी जाति की शौर्य-गाथा है।''[३]

मलखान सिंह की 'आखिरी जंग' नामक कविता में शिवलिंग के गिर्द रचे मिथकीय प्रभामंडल को ही ध्वस्त कर एक रक्तरंजित परिभाषा देते हुए कहते हैं-

''हम जब भी/तेरे कदमों में सर रखने की सोचते हैं

---

१ ओमप्रकाश वाल्मीकि, *सदियों का संताप,* पृ.

२ रमणिका गुप्ता, *दलित चेतना,* पृ. २०.

३ सं. पुन्नी सिंह, *भारीत दलित साहित्य परिप्रेक्ष्य*, पृ. ३३१.

तेरा धरती में गड़ा स्थूल लिंग
अग्रज एकलव्य का कटा अंगूठा
प्रतीत होता है हमें.....।''[१]

डॉ. धीरज भाई वणकर 'गुरुद्रोण' नामक कविता में आज के समाज के बारे में हमें चेतावनी देकर अपना विद्रोह प्रकट करता है। वे लिखते हैं-

''धन्य है एकलव्य तुझे गुरु दक्षिणा देने
और है दिक्कार द्रोण तुम्हें विद्यादान न देने।
आज भी द्रोण कहीं न कहीं नज़र आते हैं
जो दलित छात्रों से छल-कपट करते हैं।''[२]

सुरेश चन्द्र कठेरिया 'कितना दयालू थी' नामक कविता में और एक बार फूलन का मिथक हमारे सामने लाते हैं-

''फूलन! तू कितनी दयालू थी,
कितनी थी भली!/प्रतिशोध की ज्वाला में
तेरी मनुष्यता न जली''।[३]

इस कविता का समाजशास्त्रीय पहलू फूलन के प्रतिशोध की भावना है।

'कर्ण ने सोचा होगा' नामक कविता में विजयचक्रवर्ती पूरे महाभारत के पात्रों जैसे, कर्ण, अर्जुन, इंद्र, एकलव्य, द्रोण, युद्धिष्ठर, दुर्योदन, द्रौपदी, कृष्ण आदि पात्रों के माध्यम से सवर्णों के चरित्रहीन कुटिलताओं का मिथक खींचते हुए लिखते हैं-

---

१ कंबल भारती, *दलित निर्वोचित कविताएँ,* पृ. ४२.

२ तारा परमाल (सं) आश्वस्त, जुलाई २०११, पृ. ११.

३ विमल थोरात, सूरज बडत्या, *भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर*, पृ. ९६.

''जीतेगा अब तो अर्जुन ही
मुझे तो पराजित ही होना है, /क्यों कि युद्ध का स्तर
बहुत घटिया हो गया है/ और जीतने केलिए मैं अब भी
चरित्रहीन नहीं हो सकता ''।[१]

कवि किसी भी परिस्थिति में अपना अस्तित्व एवं व्यक्तित्व खोने केलिए तैयार नहीं है। कवयित्री लीना 'चीरहरण' नामक कविता में, आज महिलाओं के सामने जो विंडम्बनाएँ हैं उसे गंभीर पंक्तियों से प्रस्तुत किया है। वे उदाहरण के लिए पौराणिक कथापात्र 'पाचाली' के मिथक को लिया है। जो रानी होते हुए भी भरे दरबार में अपमानित कि गयी थी। उनका चीरहरण आज भी नये परिवर्तित रूप में हमारी समझ में चीखता रहता है।

''आज भी गाहे-बेगाहे
कारण-बिना कारण/सरे राह
निर्वस्त्र कर दी जाती है कोई स्त्री!
दरबार तब भी सजा था
आज भी सज जाता है
तमाशा देखने को आतुर
निर्ल्लज समाज जुड़ जाता है''।![२]

दलित कविता पुराने मिथक के स्थान पर मिथक का पुनर्निर्माण कर रहा है। अभिजनों ने जिन मिथक को साहित्य से हटाया है, उन मिथक को दलित कविता केन्द्र में

---

१ डॉ. एन. सिंह, *चेतना के स्वर,* पृ. ३७.

२ मोहनदास नैमिशराय (सं), बयान, अक्तूबर, २००९, पृ. ५१.

लाते हैं। दलित कवि अपनी अस्मिता को बनाये रखने केलिए मिथक की पुनर्व्याख्या समाजशास्त्रीय दृष्टि से करते हैं।

४.१.३ दलित कविता में व्यंग्य

आज प्रमुख साहित्यिक विधाओं में व्यंग्य की प्रखर एवं समर्थ उपस्थिति अनुभव की जा रही है। व्यंग्य की अभिव्यक्ति मानव जाति की एक अद्वितीय उपलब्धि है। व्यंग्य के द्वारा श्रोताओं को सच्चाई की जानकारी मिलती है। लोक साहित्य परंपरा में व्यंग्य का महत्वपूर्ण स्थान है, इसलिए लोक साहित्य विशेषकर लोक गीतों में व्यंग्य का सठीक प्रयोग देखने को मिलता है। आज भी लोक परंपरा में विदूषक और विदूषकीय 'पाठ' चलता रहता है। जिसमें सत्ताधारी या अभिजात के खिलाफ व्यंग्य बाण का प्रयोग करने में विदूषक सफल रहता है। इसी परंपरा दलित कविता में भी मिलता है। जहाँ लोक की ही आवाज़ प्रतिध्वनित हो जाती हैं। सत्ताधारियों की कमज़ोरियों को हास्य-व्यंग्य के रूप में दलित कविता प्रकट करती है। हिन्दी शब्द सागर में व्यंग्य का अर्थ इस प्रकार दिये हैं। ''शब्द का गूढ़ अर्थ जो उसकी व्यंजना वृत्ति द्वारा प्रकट हो। ताना, बोली, चुटकी''।[१]

जीवन को मानवोन्मुख दृष्टिकोण से देखने की प्रवृत्ति व्यंग्य में दृष्टिगत होती है। व्यंग्य पाठकों के मन में हलचल की सृष्टि करने की क्षमता रखती है। अमृतराय व्यंग्य रचना के उद्देश्य को इस तरह प्रस्तुत करते हैं- ''व्यंग्य पाठक के क्षोभ या क्रोध को जगाकर प्रकारांतर से उसे अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए सन्नद्ध करता है''।[२] मानव की कमज़ोरियों का सूक्ष्म विश्लेषण इसमें किया जाता है।

---

१ रामचन्द्र वर्मा (सं) संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर, पृ. १३९.

२ अमृतराय, *मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, भूमिका,* पृ. ७.

'आधी दुनिया की आवाज़' नामक कविता में जयप्रकाश कर्दम ने महिलाओं की पीड़ा तथा वेदना और भारतीय कथाओं में उन्हें दैवीय रूप में चित्रित करने के संकल्प पर व्यंग्य करते हुए लिखा है-

"वह भी देवी है/किन्तु दीन/ वह भी जननी है
किन्तु हीन/वह भी पूजनीय है। किन्तु उपेक्षित
वह भी शक्ति है/किन्तु अधीन"।[१]

यहाँ भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति का वास्तविक चित्रण है।

संविधान-प्रदत्त कुछ राजनेता अपने समाज की सेवा न करके उच्च वर्ग की सेवा में लगे हुए हैं। इसलिए उन्होंने इन भ्रष्ट और पतित दलित नेताओं पर तीखा व्यग्यांत्मक टिप्पणी की है। डॉ. सुखवीर सिंह की 'सूर्यांश' नामक कविता की कुछ पंक्तियाँ हैं-

"संविधान प्रदत्त अधिकार के बल पर भर रहे है
तिजोरियाँ/ कर रहे है कालाबाजी उच्च वर्ग
की सेवा/गरीब अछूतों से मारामारी"।[२]

कवि शेखर अपनी कविता में धर्म के नाम पर चल रहे पाखंड को व्यंग्यात्मक स्वर में बताते हैं-

"वे बहुत डाल चुके हैं/निर्ममता का फंदा
हम नहीं देगे मुक्तखोरों के
मंदिरों में चन्दा/हम है नाखुदा
हम है बन्दे/हम है चंगे

---

१ रामचन्द्र गौतम (सं), *दलित अभिव्यक्ति संवाद और प्रतिवाद*, पृ. १६६.

२ डॉ. तेज सिंह, *आज का दलित साहित्य*, पृ. ९४.

अब बन्ध करो धर्म के धन्धे
क्यों काम करते हो गन्दे''।[१]

डॉ. सुखवीर सिंह ने पूँजीवादी समाज के बहुमुखी चरित्र पर व्यंगात्मक भाषा का प्रयोग किया है-

''एक ही क्षण में वह/कैसे हो सकता है दयालू और क्रूर
.....कैसे हो सकता है द्विमुखी त्रिमुखी
या सहस्त्रमुखी एक साथ एक ही क्षण में
कैसे हो सकता है धनी और कंगाल''।[२]

विपिन बिहारी 'प्रयोगशालाओं के गाँव' नामक कविता में आज की अपसंस्कृति पर व्यंग्य करते हैं, जो विज्ञापन के पीछे भागकर गाँव को प्रयोगशाला बना दिया है। वे लिखते हैं-

''उगली जा रही है सब/व्यवसायिक फसलें
जिसका सिर्फ और सिर्फ /हो सके नगरीकरण''[३]

सभी प्रयोगशालाओं का पहला शिकार गाँव ही है चाहे वह, विज्ञापन से हो, फसल से हो, फाक्टरी से हो।

'लाखन राम तूफानी' राजनैतिक व्यवस्था पर व्यंग्य करते हुए समाजिक घटना का वर्णन करके लिखा है -

---

१ सं. प्रणव कुमार वद्योपाध्याय, *दलति प्रसंग*, पृ. ७.

२ डॉ. तेजसिंह, *आज का दलित साहित्य, पृ. ९३.*

३ कंवल भारती, दलित निर्वाचित कविताएँ, पृ. १५०.

''ओ बूढी अम्मा कांग्रेस बापू का नाम डुबाती है।
हम भूखे-नंगे चिल्लाते सेठों को दूध पिलाती है।
गंदी गलियों में तड़प-तडप हम रोवें दाने-दाने को
हमको अमरिकी पाउडर का, सपरेटा दूध पिलाती है''।[१]

भीमराव गणवीर 'भूपेश कुमार' 'स्वरलिपि' नामक कविता में सामाजिक यथार्थता पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं-

''हम बच्चे पाठशाला में/'अ' से अनार पढ़ते
मगर बीच की छुट्टी में/पानी-पीते हुए
'अ' से अस्पृश्यता होती यह समझा''।[२]

इस कविता में कवि समाज में फैली अस्पृश्यता की ओर इशारा करते हैं, इसका असर दलित बच्चों को भी झेलना पडता है।

शूद्र को गुलाम, दास माना है। डॉ. टाकभौरे ने इस प्रवृत्ति पर करारा व्यंग्य किया है। 'हम दलित' 'जागरण के बाद', 'ज्योति दूत बन जाओ', 'जल प्लवन करना है' आदि कविताएं इसका प्रमाण है। वे ताटुकारी, चापलूसी प्रवृत्ति पर 'बदलेगा कुंठित मानस' नामक कविता में कहती हैं-

''होते रहे जेवनार/प्रतीक्षा में सुख होते।
टूट पड़ते थे जूठन पर/ भूख से मजबूर तब''।[३]

---

१ डॉ. रजर रानी मीनू, *हिन्दी दलित कविता,* पृ. १२८.

२ मोहनदास नैमिशराय (सं), बयान, अगस्त, २००८, पृ. २९.

३ सुशीला टाकभौरे, *हमारे हिस्से का सूरज,* पृ. २८.

कवि श्री जयपाल सिंह ने 'कफन' शीर्षक कविता लिखकर थोथी सामाजिक सेवा करने वालों पर व्यंग्य किया, वे अग्रलिखित पंक्तियों में कहते हैं-

''एक कफन विक्रेता की हाट पर
टंगा था एक बड़ा सा बैतर/लिखा था जिस पर
अखिल भारतीय हितकारी क्लब की ओर से
एक सूत्रीय कार्यक्रम के अन्तर्गत
गरीबी हटाओ अभियान''।[१]

डॉ. सुखवीर सिंह ने यह दर्शाया है कि निम्न बनाई गई जातियों के लोग आपस में भी प्रतिस्पर्धा और ईर्ष्या रखते हैं और इसका फायदा उच्च जाति के लोग उठाते हैं। कवि हिन्दुओं की गर्बीली संस्कृति पर करारा व्यंग्य करते हैं-

''गैर-बराबरी के साथ भौंकती है अपनी ही नस्ल पर
और दूसरों की नस्लों के तलुए चाटती है।''[२]

कुत्ता मंदिर में प्रवेश कर सकता है अछूत नहीं। ऐसी है समाज की धर्मव्यवस्था। कुत्ते में भगवान की आत्मा आ सकती है या कुत्ते भी पूर्वजन्म का पूजारी हो सकता है। 'कुत्ता और पूजारी' शीर्षक व्यंग्य कविता में श्यौराज सिंह बेचैन ने प्रभावी व्यंजना की है-

''इस शक्स/को शायद पूरी तरह विश्वास है/इसलिए
वह अपने अगले जन्म की तैयारी में
भौंकने, काटने, दुत्कारने का और तेजी से अभ्यास /कर रहा है''।[३]

---

१ ड़. एन. सिंह (सं.), *पीड़ा जो चीख उठी,* पृ. ४६.

२ डॉ. सुखवीर सिंह, *बयान बाहर,* पृ. २१.

३ रजतरानी मीनु, *हिन्दी दलित कविता,* पृ. ९५.

समाज में स्त्री अस्तित्वहीन सी है। ऊपर चमक-दमक में बदलाव भले ही नज़र आते हो परन्तु सच तो ये हैं। अ. ल. उके 'नारी तुम क्या हो' कविता में नारी के प्रति नर का क्या दृष्टिकोण है? इस पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं-

"यह तो नर है/जो तुम्हें गढ़ता है
कभी देवी तो कभी/पैर की जूती बताता है?"[१]

भारतीय संस्कृति में गुरु को ईश्वर के समान देखा जाता है या उससे भी अधिक। वह गुरु/शिक्षक प्रगति, समता और आपस में भाईचारा बढाने का पाठ पढाता है किन्तु इस रास्ते पर खुद नहीं चल पाता। दलित विद्यार्थियों के प्रति उनके देखने की दृष्टि भिन्न होती है। ऐसे शिक्षक पर जयप्रकाश कर्दम अपनी 'वर्णवाद का पहाड़ा' शीर्षक कविता में व्यंग्य करते हैं।

"मास्टर जी! हम शुक्रगुज़ार हैं कि तुमने
हमें पढाया/प्रगति का रास्ता दिखाया
लेकिन समता के मार्ग पर तुम
खुद नहीं चल पाए"।[२]

डॉ. एन. सिंह अपनी कविता में संविधान और व्यवस्था द्वारा अधिकारों से वंचित दलित समाज का आक्रोश व्यंगात्मक रूप से इस प्रकार व्यक्त करते हैं-

"धरती पर कोई नींव खोदने से पहले
कब्र खोदेगी/उस व्यवस्था की
जिसके संविधान में लिखा है-

---

१ अ. ल. उके, *पत्थर उठाते हाथ,* पृ. ५७.

२ कबंल भारती, *दलित निर्वाचित कविताएँ*, पृ. ७६.

तेरा अधिकार सिर्फ कर्म में है?
श्रम में है/फल तेरा अधिकार नहीं.....''।[१]

भिखाराम गडरिया ने 'मैं पंडित जी कहलाता हूँ' कहकर समाजिक धार्मिक व्यवस्था पर प्रहार किया है। मानव-मानव में बराबरी की अपेक्षा भेदभाव रहा है, धर्म, वर्ण के कारण मानव का शोषण हो रहा है। धर्म की परिभाषा पंडित करता है। इस पर व्यंग्य करते हुए वे कहते हैं-

''मैं पूरा अवसरवादी हूँ/ अगुवा बनने का आदि हूँ
मैं खूब पहनता खादी हूँ/दुनिया को ठगकर खाता हूँ
मैं पंडित भी कहलाता हूँ''।[२]

ओमप्रकाश वाल्मीकि 'तनी हुई मुट्ठियाँ' कविता के ज़रिए सवर्ण हिन्दू के प्रति दलित वर्ग की मानसिकता को व्यंग्य पूर्ण लहजे में लिखते हैं-

''देवी-देवताओं के वंशज तुम
हो जाओगे लूले-लंगड़े और अपाहिज
जो जीना पड़ जाए युगों -युगों तक
मेरी तरह/तब तुम क्या करोगे''?[३]

ग्रामीण परिवेश में दलितों का स्थान बिलकुल हाशिए पर है। अब दलित वर्ग हाशिए पर रहना नहीं चाहता वे भी गाँव के बीच बसना चाहता है। लेकिन इससे पहले सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन होना आवश्यक है। पेशे को जाति से जोड़कर वर्ण-

---

१ सं. प्रणव कुमार वद्योपाध्याय, *दलित प्रसंग*, पृ. ८०.

२ इक्कसवीं सदी का दलित साहित्य, पृ. ४२.

३ ओमप्रकाश वाल्मीकि, *सदियों का संताप,* पृ. ३०.

व्यवस्था के अन्तर्गत जो शोषण दलित वर्ग से किया गया, उस पर व्यंग्य करते हुए डॉ. देवेन्द्र दीपक 'अतिरेक' कविता में लिखते हैं-

''मुकुट-स्वर्ण मुकुट या मोरमुकुट/पगड़ी टोपी.....
ये सब तुम्हारे शीश की शोभा/लेकिन
मेरे शीशा की शोभा है/तुम्हारा दिया
मैले का यह टोकरा''।[१]

ठाकूर दास सिद्ध ने 'नमक' नामक कविता में समाज के ऊँचे लोगों पर व्यंग्य किया है। हमारी भूख मिटाने में श्रमिकों का बहुत बड़ा हाथ है। जिस हाथों ने हमें अन्मोल नमक रोटी में डालकर खिलाया था, उन्हीं हाथों को हम स्वार्थता के लिए गुलाम बनाया, वे लिखते हैं-

''नमक भी था या नहीं समुद्र के गर्भ से निकला
यह वह अन्मोल रत्न है रोटी में डालकर''
जिसे खिलाया जाता है नमक हलाली का
हवाना देकर गुलाम बनाया जाता है''।[२]

इस तरह हम देख सकते हैं कि दलित कविता में व्यंग्य को एक हथियार के रूप में प्रयोग किया है। दलित साहित्य के संदर्भ में व्यंग्य की अनेक सम्भावनाएँ है। प्रतिरोध और प्रतिशोध के संदर्भ में भी व्यंग्य का प्रयोग सामाजिक समस्याओं को नये आयाम देने में समर्थ है।

---

१ डॉ. देवेन्द्र दीपक, *हम बौने नहीं,* पृ. २५.

२ रमणिका गुप्ता, *दलित चेतना,* पृ. १०९.

४.१.९ निष्कर्ष

दलित कविता सीधे-सीधे अपने पाठकों को जगाने और सामंती-वर्णवादी मानसिकता को झकझोर देने वाली भाषा में बात करने वाली कविता है। दलित कविता के शिल्प का आधार भाषा और उसका प्रयोग है। वर्ण, जाति विहीन समाज की स्थापना ही दलित कविता का उद्देश्य है। उसको प्रेरणा देनेवाले साहित्य में दलित भाषा का सौंदर्य देख सकते हैं। दलित कविता की भाषा दलित संस्कृति की उपज है। इसकी भाषा अन्य कविता की भाषा से भिन्न, भाषा का पुनर्पाठ या पुनर्निर्माण ही है। साहित्य के पारम्परिक सौन्दर्यशास्त्र और सामाजिकता का आधार 'रस' है जो भरत मुनि के नाट्यशास्त्र से चलकर पंडितराज जगन्नाथ के 'वाक्यं रसात्मकं काव्य्' तक स्थापित हो चुका है। किन्तु भारतीय समाज का रसवादी सौन्दर्यबोध दलित समाज और साहित्य पर लागू नहीं होता। अतः यहाँ जीवन की समस्याएँ और मानवीय प्रेम, स्नेह, सौहार्द और श्रम ही समाज की रुचि और सौन्दर्य बोध है। दलित कविता की सामाजिकता समाज-व्यवस्था, वर्ण-व्यवस्था, जाति-भेद, आर्थिक-सामाजिक शोषण, अत्याचार, असमानता आदि का विरोध कर समतावादी समाज के निर्माण में लक्षित होती है।

दलित कविता में व्यक्त हो रहे अनुभव मानवीय यातनाओं का भीषण अनुभव है। ऐसे अनुभवों को व्यक्त करने केलिए जिस भाषा का प्रयोग दलित कवियों ने किया है वह दलित जीवन की जिजिविषा से ही उपजी है। दलित कविता का प्रतिरोधी स्वर समाज में मानवीय मूल्यों को प्रतिष्ठित करना चाहता है। इसका विद्रोही स्वर भी अब तक की सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन लाना चाहता है। दलित कविता सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ सवाल-जवाब करती है। अतः सवाल-जवाब की प्रक्रिया को दलित कविता के शिल्प पक्ष का एक तत्व के रूप में ले सकता है। दलित कविता का प्रतीक जीवन यथार्थ को व्यक्त करनेवाला है। वह अपनी बात को व्यक्त करने केलिए नये प्रतीकों को अपनाया है। दलित कविता का बिंब भी अभिजन कविता के बिबं सम्बन्धी विचार से

बिलकुल अलग है। बिंब की जो चित्रात्मकता है उसमें मानवीय और अमानवीय के बीच में जो संघर्ष है, उसका बिंबात्मक प्रस्तुतीकरण मिलता है। दलित कविता पुराने मिथकों को नयी परिभाषाएँ दे रही हैं। साथ में नये मिथकों को ढूँढ़ता भी है, जो दलित कविता में छिपी हुई सच्चाई को वाणी दे सकें। मिथक के केंद्र में मानव की वैश्विक अवधारणा है, जो विश्वास एवं व्याख्या के ध्रुवांतों में है। दलित कविता व्यंग्य को समाजिक व्यवस्था और सत्ताधारियों की कमज़ोरियों के खिलाफ एक हथियार के रूप में प्रयोग करते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि दलित कविता का शिल्प पक्ष अत्यंत प्रबल है।

भाषागत परिवर्तन और नये प्रतिमानों की खोज करके दलित कविता अपनी इसी अंतः शक्ति के आधार पर खड़ी है, जिसमें एक परंपरा को नकारकर दूसरी परंपरा का निर्माण करने की शक्ति है। दलित कविता सर्वग्राही भाषा को अपनायी है, जिसके माध्यम से दलितों की पीड़ा, अपमान, व्यथा की सही और यथार्थवादी अभिव्यक्ति कर सकें। दलित कविता की भाषा परिवर्तन की मांग करती है। दलित कविता में विद्रोह, सवाल-जवाब, बिम्ब, प्रतीक, मिथक आदि दलित जीवन की त्रासदी और उसके यथार्थ को व्यक्त करते हैं। दलित कविता की भाषा दलित जीवन की सच्चाई से बनती है। परिस्थितियों के अनुसार उनके साहित्य का स्वरूप रूपायित होती है।

उपसंहार

उपसंहार

साहित्य जीवन का निरूपण है। समाज पर साहित्य के व्यापक एवं गंभीर प्रभाव के कारण उसके अध्ययन का समाजशास्त्रीय महत्व है। समाजशास्त्र का सीधा संबंध समाज से है। उसमें समाज के विभिन्न अंगों का अध्ययन विश्लेषण होता है। भारतीय साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन में भारतीय परंपराओं, रूढियों एवं विश्वासों के वैज्ञानिक विश्लेषण की प्रवृत्ति है। जहाँ समाजशास्त्र मानवीय संबंधों, उनकी परिस्थितियों और परिणामों का अध्ययन माना जाता है वहाँ साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन समाज के सदस्य के रूप में मनुष्य के क्रिया-कलापों, क्षमताओं आदि का साहित्य के आधार पर विश्लेषण है। समाजशास्त्रीय अध्ययन में समाज के सिर्फ एक पहलू पर विचार करना नहीं, अपितु समाज की हर समस्या का समुचित अध्ययन करना है। समाजशास्त्र का उद्देश्य समाज की वास्तविकता को जानना है। साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन के अन्तर्गत साहित्य, समाज एवं समाजशास्त्र, सामाजिक संरचना, सामाजिक परिवर्तन, समाजशास्त्र की धाराएँ, पद्धतियाँ, उत्तर आधुनिकता और उत्तर संरचनावाद आदि का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। साहित्य का समाजशास्त्र स्वयं अपने आप में एक पद्धति है। एक सार्वभौमिक पद्धति के रूप में यह अनुसंधान को प्रेरित करती है। वह उन परंपराओं, मूल्यों और आदर्शों को खोजने का प्रयास करते हैं जिसमें किसी कृति का सृजन हुआ है। साहित्य में लेखक, पाठक, आलोचक, व प्रकाशक एवं उनकी अन्तः क्रियाएँ विशेष महत्व रखती है, जिनका समाजशास्त्रीय पद्धति द्वारा विवेचन कृति के मूल्यांकन में सहायक होता है।

जिसे साहित्य कहा जाता है उसके हाशिए पर ऐसा साहित्य भी है जिसको अभिजनों ने साहित्य की कोटि में नहीं रखा है। लेकिन साहित्य के समाजशास्त्र ने उसे स्वीकार किया है। उत्तर आधुनिक संदर्भ में ही सभी समूहों को खुलकर बोलने का अधिकार प्राप्त हुआ था। इसके केन्द्र में दलित, महिला, अश्वेत आदि लोग रहते हैं।

भारतीय समाज और संस्कृति के इतिहास में दलितों और स्त्रियों की स्थिति का विश्लेषण करते हुए भारतीय साहित्य में उनकी अनुपस्थिति और उपस्थिति के कारणों को खोजने परखने में साहित्य का समाजशाशास्त्रीय अध्ययन की आवश्यकता है।

दलित कविता के अध्ययन में दलित कविता की परंपरा को ढूँढना या समझना हमारा दायित्व बनता है। गीतात्मकता, ताल-लयात्मकता आदि किसी भी साहित्याभिव्यक्ति परंपरा के मूल में रहते हैं। मनुष्य की अभिव्यक्ति प्रक्रिया में भाव का महत्व है। इसी भावभूमि के कारण कविता में गीत का महत्व है। हर भाषा में ऐसे बहुत सारे गीत मिलते हैं, जिसमें दलित समाज के विविध आयामों का स्वरूप देखने को मिलता है। लोकगीतों का विश्लेषण करने पर हमें यह ज्ञान हो जाता है कि लोकगीतों में दलितों के गीत और अभिव्यक्ति की पहचान अलग ही है। इसलिए इसे दलित गीत ही कहना चाहिए। यह दलित गीत ही दलित कविता का मूल आधार है। जहाँ तक दलित गीत का सवाल है, दक्षिण भारत की संघकालीन कृतियाँ पूरे के पूरे गीत में ही रचे गये हैं। ऐसे भी कई गीत हैं, जो दलितों की मृत्यु के साथ लुप्त हो जाते हैं। वर्तमान समय में दलित कविता का क्षेत्र इतना विशाल है कि ये भारत एवं विश्व की कई भाषाओं में देखने को मिलते हैं। इस प्रकार दलित कविता मानव संवेदना से ओत-प्रोत कविता है। दलितों में अस्मिता का एहसास, चेतना, विद्रोह, दलित जन जीवन का यथार्थ चित्रण करने वाली दलित कविता दलित जीवन का प्रतिबिम्ब है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में नज़र डालें तो हमें पता चलेगा कि नाथ, सिद्ध एवं संत साहित्य में भी दलित कविता के मूल स्वर सुन सकते हैं।

यद्यपि हिन्दी में दलित कविता का आंरभ पहले ही हुआ है, लेकिन संगठित एवं व्यवस्थित स्वरूप मध्यकाल में देखने को मिलता है। भक्ति आंदोलन के समय संत रैदास, कबीरदास, गुरु नानक जैसे संतों नें दलितों पर किये गए अत्याचारों के खिलाफ आवाज़ उठायी है। उनके साहित्य में भी उस समय की सामाजिक स्थिति के अत्याचारों का चित्रण मिलता हैं। मनुष्य और मनुष्य के बीच समता का समर्थन करके उन्होंने 'ईश्वर

की दृष्टि मे सब बराबर है' इस विचार का प्रचार किया। दलित कविता का आंरभ परंपरागत दलित गीत से माना जा सकता है। इसी परंपरा को सिद्ध-नाथ-संत साहित्य ने आगे बढ़ाया। यही दलित कविता का आधुनिक काल की पृष्ठभूमि है।

दलित कविता के आधुनिक काल में हीरा डोम, स्वामी अछूतानन्द हरिहर, बिहारीलाल हरित आदि कवियों का महत्वपूर्ण स्थान है। इनके अलावा ओमप्रकाश वाल्मीकि (सदियों का संताप, बस्स! बहुत हो चुका), कंवल भारती (दलित निर्वाचित कविताएँ), जयप्रकाश कर्दम (गूँगा नहीं था मैं, तिनका तिनका आग), डॉ. एन. सिंह (चेतना के स्वर), सूरजपाल चौहान (क्यों विश्वास करूँ), रजनी तिलक (पदचाप), सुशीला टाकभौरे (तुमने उसे कब पहचाना, हमारे हिस्से का सूरज) आदि लेखक एवं लेखिकाएँ भी दलित कविता को आगे बढ़ाने में सशक्त भूमिका निभा रही हैं। दलित कविता को पृष्ठभूमि प्रदान करने में गैर दलित साहित्यकारों का योगदान भी रहा है।

हम जानते हैं कि हज़ारों सालों तक दलित समाज अपने सामाजिक सांस्कृतिक अभिव्यक्ति से वंचित रहा इसका मूल कारण भारत के वर्ण एवं जाति व्यवस्था थी। स्वतंत्रता आंदोलन तथा समाज सुधार आंदोलन के संदर्भ में गाँधीवाद से प्रभावित होकर अनेक गैर दलित कवियों ने समाज-सुधार तथा अछूतों के प्रति सहानुभूति पूर्ण कविताएँ लिखने लगी। मैथिली शरण गुप्त की 'अछूत', अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध की 'छूत-छात के चौपदे', निराला की 'दलित जनों पर करो करुणा' आदि प्रमुख हैं। प्रगतिशील साहित्य की जनवादी धारा ने भी दलितों के सामाजिक और आर्थिक पहलुओं पर कविताएँ लिखीं । धूमिल की 'मोचीराम', नागार्जुन की 'हरिजन गाथा', डॉ. रामविलाश शर्मा की 'कार्यक्षेत्र', जगदीश गुप्त की 'शंबूक' आदि भी प्रमुख हैं।

दलित कविता को वैचारिक आधार प्रदान करने में मराठी दलित साहित्य, दलित पैंथर, दलित आंदोलनों का प्रमुख स्थान है। ब्लैक साहित्य ने दलित कविता को वैश्विक आधार-प्रदान किया है। बौद्ध दर्शन की पृष्ठभूमि में विकसित दलित साहित्य समता दर्शन

को अपना लक्ष्य मानता है। प्रमुख रूप से दलित कविता की प्रेरणा महात्मा जोतिबा फुले और डॉ. बाबा साहब अंबेडकर के विचार एवं दर्शन से प्राप्त है। डॉ. बाबा अंबेडकर ने दलितों को तीन मूल मंत्र दिए 'शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष' करो।

आज भी वर्ण तथा जाति के आधार पर समाज के कुछ विशेष वर्ग के लोग तिरस्कृत एवं पिछड़े रह गये हैं। समाज के इन दलितों के जीवन का चित्रण आधुनिक दलित कविता का एक आंदोलन बन रहा है। साहित्य की सारी विधाओं में दलित-चेतना को केंद्र में रखकर कृतियाँ रची जाती हैं। दलित कविता भारतीय समाज में उसी समय से अस्तित्व में है जिस समय से दलित स्वयं को व्यक्त करता हुआ अस्तित्व में आया, अर्थात जब से दलित है तभी से उसकी अभिव्यक्ति है। यह अभिव्यक्ति समय और परिस्थिति के अनुसार अपने स्वरूप में बदलती और विकसित होती रही है। नब्बे के दशक तक आते-आते उसकी सृजनात्मकता इतनी व्यापक व प्रबल हो गई है कि अब इसे दबाया, छिपाया या मिटाया नहीं जा सकता। उल्लेखनीय है कि दलित साहित्य के अन्य विधाओं के साथ-साथ दलित कविता का विशद अध्ययन नब्बे के बाद के दलित साहित्य की विशेष उपलब्धि है।

'सर्वे भवन्तु, सुखिनः' 'वसुधैव कुटुम्बकमं','बहुजन हिताय', 'अप्पो दीपो भवः सोहम' आदि दलित संस्कृति के उद्घोषित मूलमंत्र हैं। 'निर्बल को न सताइए' और 'अहिंसा परमो धर्मः' दलित संस्कृति की संहिता के शीर्षस्थ वाक्य है। दलित कविता ने अपने समय और समाज को जिस सच्चाई के साथ प्रस्तुत किया है, जो किसी साहित्य ने नहीं। दलित विचारकों, चिंतकों और लेखकों को संबोधित करते हुए डॉ. अंबेडकर का विचार उल्लेखनीय है 'हमारे देश में उपेक्षितों और दलितों की बहुत बड़ी दुनिया है। इसे भूलना नहीं चाहिए। उनके दुःखों को, उनकी व्यथाओं को पहचानना ज़रूरी है और अपने साहित्य के द्वारा उनके जीवन को उन्नत करने का प्रयत्न करना चाहिए। इसी में सच्ची मानवता है'। अतः दलित कविता मनुष्य के सामाजिक अस्तित्व की धारणा, समता,

स्वतंत्रता एवं विश्व बन्धुत्व की भावना को उजागर करती है। अब दलित कविता भारतीय साहित्य में नई और विशिष्ट साहित्य धारा है। इसे विभिन्न प्रवृत्तियों के आधार पर 'समानांतर साहित्य', 'विद्रोही साहित्य', 'क्रांतिकारी साहित्य', अंबेडकरवादी साहित्य' आदि नाम से भी पुकारा जाता है।

दलित कविता का विषय भारतीय एवं वैश्विक संदर्भ में अलग अलग होते हैं। दलितों का अपना एक इतिहास है, संस्कृति है, उसकी अपनी एक प्रतिरोधी संस्कार है। लेकिन आधुनिक सामाजिक संदर्भ में अशिक्षित होने के कारण वह अपने इतिहास एवं संस्कृति को पहचानने में असमर्थ होते हैं। इस प्रतिरोधी स्वर का एक ऐतिहासिक क्रम है। उसकी ओर आचार्य अच्युतन का विचार उल्लेखनीय है 'वर्चस्ववादी परंपरा के साथ सांस्कृतिक प्रतिरोध देश के लघु परंपराओं के वाहक हमेशा करते आ रहे हैं। ऋग्वेद की ऋचाओं में आर्य तथा आर्य पूर्व लोगों के संघर्ष, इन्द्र तथा नागाधिपति शंबर के बीच के संघर्ष से लेकर भक्तिकालीन अंडाल, कबीर, रैदास आदि संतों में तथा स्वतंत्रता आन्दोलन के समय के चुहार विद्रोह, चान्नार आन्दोलन, महार आन्दोलन आदि को इन लघु पंरपराओं के सांस्कृतिक प्रतिरोध ही मान सकते हैं'।

वर्ण, जन्म, जात और कर्म के आधार पर समाज को बाँटना या इन तत्वों के आधार पर सामाजिक संरचना की निर्मिति वास्तव में ब्राह्मणवादी सोच या वर्चस्ववादी राजनीति का प्रतिफलन है। क्योंकि पुरुष सूक्त या मनुस्मृति के पहले भारत में ऐसा भी एक समाज था जहाँ वर्ण, जात और कर्म के आधार पर कोई असमानता का वर्णन नहीं मिलता है। बल्कि एक समता-दर्शन केलिए पर्याप्त विवरण मिलता है। उस समय के समाज का विभाजन वैज्ञानिक एवं भौगोलिक दृष्टि से हुआ करता था। दक्षिण के संघकालीन कृतियों में इस प्रकार के समाज की ओर संकेत है। 'चिलपतिकारम में पंचग्रामी नामक महाब्राह्मणों तथा तिरुत्तंगाल नामक उनके गाँव का उल्लेख मिलता है। इस गाँव में दूसरों केलिए प्रवेश मना किया था। सामाजिक संरचना के संदर्भ में पूरे

इतिहास में 'मना है' ऐसा एक शब्द हम इस गाँव के आसपास से सुना है। ऐसा माना जाता है कि पंचमहाब्राह्मणों से छुआछूत की शुरुआत हुई होगी।' यद्यपि हमने कानून बनाया है फिर भी अछूतापन पूर्ण रूप से भारतीय समाज से हटाया नहीं है।

दलित कविता अपने सामाजिक स्वर के माध्यम से दलितों के ऊपर किए हुए अत्याचारों को वाणी दे रही है। यह आर्थिक स्वतंत्रता एवं राजनीतिक हक केलिए संघर्ष कर रही है। दलित कविता के सांस्कृतिक स्वर अधिक प्रबल है। क्योंकि दलितों का जीवन, संस्कृति एवं परंपरा से जुड़ा हुआ है। वे सदियों से इस धरती के रक्षक हैं। समाज के वर्चस्ववादी चिंतकों ने ही संस्कृति को जीवन की समग्र पद्धति के रूप में माना है। इस संदर्भ में ग्राम्शी का मत प्रासंगिक हो जाता है कि साहित्य के इतिहास को संस्कृति के इतिहास के अंग के रूप में अध्ययन करना होगा। तभी हम मानव की आदिम संस्कृति या लोक संस्कृति को समझेंगे; लोक मानस को समझेंगे, क्योंकि संस्कृति जनसमूह की उपज है। इसमें ही उस जनमानस की भाषा मौजूद है। इसी प्रकार इतिहास में परंपरा को खोजते हुए उसकी पुनर्रचना भी करना है; क्योंकि परंपरा का आधार लोक भी है; शास्त्र भी है। परंपरा की खोज इसलिए है कि भारतीय परंपरा वेद-पुराण और शास्त्रों से जुड़ी हुई हैं। भारत में ये वेद पुराण की परंपरा ही नहीं; जन-जाति या क्षेत्रीय परंपराएँ भी हैं। इस तरह की लघु परंपरा को समाज से हटाया या मिटाया गया है। इस तरह की जन-जातियों की अलग पहचान, अलग इतिहास, अलग संस्कृति तथा अलग भाषा भी है, जो दलित कविता का प्रमुख आधार है। इस संदर्भ में आचार्य अच्युतन जी का मत यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि 'ग्राम्शी के इस विचार का मूल दार्शनिक स्वरूप 'पदार्थ ही परमसत्य वाले' भारत के पुराने 'लोकायती दर्शन' में ढूँढा जा सकता है जो भारत के दलित या आदिवासी समूह के सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक दृष्टि की ओर प्रकाश डालता है। वास्तव में इस तरह की जन संस्कृति के कारण ही ऐसे दार्शनिक सिद्धान्त का जन्म तथा प्रचार प्रसार अधिक मात्रा में हुआ जिसका आधार वैज्ञानिक है।

भारत में राजाओं, ब्राह्मणों या वर्चस्ववादियों की परंपराएँ हैं तो दलित -आदिवासियों की परंपराएँ भी हैं।' इस प्रकार हमारी आस्थाएँ, विश्वास, मान्यताएँ वे चाहे अध्यात्मिक हो या अन्य जो पीढ़ी दर पीढ़ी संस्कारों से बनती रहती हैं। इन्हीं को हम संस्कृति कहते हैं। परंपरा, संस्कृति, मूल्य, जातीय भावना एक तरह से मानसिक पुनर्रचनाएँ होती है। इस पुनर्रचना की प्रक्रिया ज्ञान, सामाजिक तथ्यों और ऐतिहासिक यथार्थ से कटकर नये मिथक, बिंब तथा प्रतीकों को अपना लेती है। विशेषकर आधुनिक संदर्भ में ऐसी एक दृष्टि दलित कविता की विषय वस्तु और शिल्प के समाजशास्त्रीय अध्ययन के परिणाम स्वरूप देख सकते हैं।

दलित कविता क्रांति की भावना को लेकर व्यक्त होती है। ये सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक अन्याय की विषमता को तोड़कर समाज में परिवर्तन लाना चाहती है। हिन्दू धर्म में दलितों को मनुष्य न मानकर उसे पशु से भी हीन माना गया है। ऐसी झूठी व्यवस्थिति के खिलाफ दलित कविता आवाज़ उठा रही है। दलित कविता ने स्त्री का आत्मसम्मान, आत्माभिमान के लिए भी लडाई शुरु किया है। सवर्ण स्त्री एवं दलित स्त्री में बड़ा अंतर है। एक स्त्री होने से पीडित है, दूसरा स्त्री एवं दलित होने से पीडित है। ऐसी स्थिति में दलित कविता मूक नहीं रहती। आज अनेक दलित कवयित्री भी नारी की हालत एवं मानसिकता पर अपना कलम चलाती है।

दलित कविता समय की ज़रूरत है और समय के अनुरूप ही अपने आकार, प्रकार और संवेदना में परिवर्तित होती रहती है। दलित कविता के शिल्प का आधार भाषा और उसका प्रयोग है। इसकी भाषा अन्य कविता की भाषा से भिन्न, भाषा का पुनर्पाठ या पुनर्निर्माण है। दलित कविता की भाषा दलित संस्कृति की उपज है। यह इसलिए है कि दलितों केलिए संस्कृति संघर्ष की समग्र पद्धति है। इनकी भाषा का मौखिक एवं परंपरागत रूप दलित गीतों में देखा जा सकता है। इसी मौखिक भाषा की पुनरभिव्यक्ति दलित कविता की भाषा में भी देखनो को मिलती है। अपने भावों और

विचारों को सशक्त बनाने केलिए दलितों की भाषा में लोकोक्ति एवं मुहावरों की प्रधानता है। वर्ण-जाति विहीन समाज की स्थापना ही दलित कविता का उद्देश्य है। उसको प्रेरणा देने वाले साहित्य में दलित भाषा का सौन्दर्य है।

दलित कविता का सौन्दर्यशास्त्र जीवन मूल्य, सामाजिक प्रतिबद्धता, समता, स्वतंत्रता, भाईचारा, न्याय और चेतना जैसे मूल तत्वों पर आधारित हैं। दलित कविता का सौंदर्य प्रतिरोध, नकार और विद्रोही प्रवृत्ति में है। ये प्रतिरोध वर्णव्यवस्था, जातिभेद, ऊँच-नीच, सामंती सोच, सामाजिक- आर्थिक विषमताओं के प्रति है। दलित कविता सामाजिक परिवर्तन की कविता है, इसलिए इसके सौन्दर्यशास्त्र में भी बदलाव है। दलित कविता का सौन्दर्य प्रतिरोध, नकार और विद्रोही प्रवृत्ति में है। क्योंकि वह तथाकथित 'सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्' में विश्वास नहीं करते हैं। उनके लिए 'मनुष्य सर्वप्रथम मनुष्य है, यही सत्य है, मनुष्य की स्वतंत्रता शिव है, मनुष्य की मनुष्यता ही सौन्दर्य है'। स्पष्ट है कि दलित कविता के सौन्दर्य की अवधारणा के मूल में आदमी और आदमियत है। इसका सौन्दर्यशास्त्र अपने आप बन जाते हैं। दलित कविता में जो बिम्ब, प्रतीक, मिथक, व भाषा का संस्कार है वह विद्रोहात्मक, आक्रोश एवं यथार्थवादी है, जो मुख्य धारा से बिलकुल भिन्न है। जैसा भोगा वैसा लिखा इसलिए इसमें कुछ ऐसे शब्दों का भी प्रयोग हो जाता है, जो मुख्यधारा के लिए अश्लील और वर्जित रहे हैं, बल्कि दलित कविता के लिए श्लील है। जिससे दलितों की अस्मिता एवं चेतना बन रही है वही उसकी भाषा है। दलित कवि अपनी बोली को अपनी रचना का उपयुक्त माध्यम समझते हैं। इसलिए दलित कविता दलित जीवन को विशिष्ट शब्दावली में चित्रित करती है। दलित कविता में विद्रोह दलितों के अनुभव और वेदना से पैदा हुआ है। यह वेदना उनकी शक्ति का प्रमाण है। उस वेदना में अनुभवजन्य ज्ञान का आधार है; प्रकृति जन्य ज्ञान का आधार है। अतः वेदना उनकेलिए शक्ति है। अगर उनके पास इस तरह के ज्ञान और शक्ति है तो फिर विद्रोह अपने आप में आ जायेंगे और उसे कभी पराजित नहीं कर सकता।

हिन्दी दलित कविता के समाजशास्त्रीय अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह कविता समाज की हर एक बुराईयों तथा अमानुषिक प्रवृत्तियों पर तीखा सवाल करती है। सवाल के माध्यम से 'बहस' केलिए 'जगह' (Space) मिलता है। दलित कविता के संदर्भ में सवाल हमेशा व्यवस्था के खिलाफ है। आज के दलित कवि सवालों के माध्यम से सच्चाई का उद्‌घाटन करना चाहते हैं। अतः सवाल- जवाब की प्रक्रिया को दलित कविता का शिल्प पक्ष के एक तत्व के रूप में लिया है। दलित कविता का प्रतीक जीवन यथार्थ को व्यक्त करनेवाला है। इस तरह के प्रतीक परंपराशील दलित गीतों में भी मिलते हैं। यह उनके ही जीवन के दैनिक कार्यों; रहन-सहन से जुड़े रहते हैं। दलित कविता, पुराने अभिजात बिंब-प्रतिबिंबों को तोड़कर नये बिंबों का पुनर्निर्माण किया है। दलित कविता के बिंब में कल्पना, रोचकता, अलंकार योजना, शब्द चयन आदि दलित जीवन के आधार पर रूपायित होती हैं। यह पुराने मिथकों को नयी परिभाषाएँ देने में उत्सुक हैं। साथ में नये मिथकों को ढूँढते हैं। नये मिथक के द्वारा दलित कविता में छिपी हुई सच्चाई को वाणी दे रही हैं। दलित कविता में व्यंग्य की प्रधानता है। सत्ताधारियों की कमज़ोरियों को हास्य - व्यंग्य के रूप में दलित कविता प्रकट करती है।

दलित कविता गतिशील है। इसमें दलित व दमित समाज के जीवन का यथार्थ चित्रण हैं, अस्मिता का दर्शन है। प्रस्तुत अध्ययन से दलित समाज को सामाजिक गुलामी से अवगत कराकर अपने स्वत्व बोध का निर्माण कर, दलित मुक्ति कर, मानव-मानव के बीच सच्चे 'आदमियत' की उद्‌घोषणा करने में सहायक सिद्ध होंगे। भारत के इतिहास में दलित, आदिवासी और पिछडे लोगों के साथ न्याय करने की कोशिश किया है, लेकिन अब तक पूर्ण रूप से मुक्ति नहीं हुई है। अतः इन लोगों की पीड़ा, वेदना, प्रतिक्रिया और अंतः सामाजिक न्याय दिलाने के लिए जो साहित्य निर्माण करता है उसका गौरवपूर्ण अध्ययन-विश्लेषण, विचार-मंथन प्रस्तुत करना आज के समय की माँग है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

आधार ग्रन्थ सूची

१. अ. ल. उके - पत्थर उठाते हाथ - नवलेखन प्रकाशन, हजारीबाग, १९९८.

२. असंगघोष - खामोश नहीं हूँ मैं - तीसरा पक्ष प्रकाशन, जबलपुर, २००१.

३. असंगघोष - मैं दूँगा माकुल जवाब - शिल्पायन दिल्ली २०१०.

४. असंगघोष - हम गवाही देंगे - शिल्पायन, दिल्ली, द्वितीय सं. १०१०.

५. ईशा कुमार गंगानिया - हार नहीं मानूँगा - सूरज प्रकाशन, दिल्ली द्वितीय सं. २०११.

६. ओमप्रकाश वाल्मीकि - सदियों का संताप - फिलहाल प्रकाशन, देहरादून, १९८९.

७. ओमप्रकाश वाल्मीकि - बस्स! बहुत हो चुका - वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. १९९७

८. ओमप्रकाश वाल्मीकि - अब और नहीं - राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. २००९.

९. कर्मशील भारती - कलम को दर्द कहने दो - दलित साहित्य प्रकाशन संस्था।

१०. कर्मशील भारती - दलित मंजरी - पंचशील लोकोपकारी, संस्था, दिल्ली, १९८८

११. डॉ. कुसुम वियोगी - टुकड़े-टुकड़े दंश - मुहिम प्रकाशन, हापुड़, १९९८

१२. डॉ. कुसुम वियोगी - पीड़ा जो चीख उठी - भारतीय दलित साहित्य मंच, १९९८.

१३. कंवल भारती - तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती? - बोधिसत्व प्रकाशन, रामपुर, १९९६.

१४. कंवल भारती (सं) - दलित निर्वाचित कविताएँ - इतिहास बोध प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. २००६.

१५. चिरंजी कटारिया - शब्द थके ज़रूर हैं - सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, २००२.

१६. जयप्रकाश कर्दम - गूंगा नहीं था मैं - सागर प्रकाशन, दिल्ली, तृतीय सं. २०११.

१७. जयप्रकाश कर्दम - तिनका तिनका आग - सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, २००४.

१८. जयप्रकाश कर्दम - बस्तियों से बाहर - अमन प्रकाशन, उत्तरप्रदेश, २०१३.

१९. जयप्रकाश 'नवेन्दु' - कविताएँ - जयश्री प्रकाशन, विश्वास नगर दिल्ली, १९९१.

२०. जयप्रकाश लीलावान - समय की आदमखोरधुन - भारतीय दलित अध्ययन संस्थान, नई दिल्ली, २००९.

२१. जयप्रकाश लीलावान - ओ भारत माँ! हमारा इंतज़ार करना - अनामिका, नई दिल्ली, २०१३.

२२. जसराम हरनोटिया - माटी के पूत - लता साहित्य सदन गांजियावाद, २०१०

२३. डॉ. तेज़ सिंह - आज का समय - संगीता प्रकाशन, दिल्ली, पृ.सं. २००६।

२४. डॉ. देवेन्द्र दीपक - हम बौने नहीं - इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, १९९४.

२५. नवेन्दु महर्षि - दलित पताका -प्रखर प्रकाशन, दिल्ली, २०१३.

२६. नवेन्दु महर्षि - संसद तो सवर्ण है - मेधा बुक्स, दिल्ली, २००३.

२७. डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी - दखल देती कविता - आवशस्त प्रकाशन, उज्जैन, १९९०.

२८. डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी - मूक माटी की मुखरता - अतिश प्रकाशन, दिल्ली, १९९४

२९. डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी - सवालों के सूरज - आस्वस्त प्रकाशन, उज्जैन, १९९०.

३०. भगीरथ मेघवाल - उजाले की अगवानी - दलित साहित्य अकादमी, उदयपूर, १९९१.

३१. डॉ. सी.बी. भारती - आक्रोश - लोक सूचक प्रकाशन फरुखाबाद, १९९६.

३२. मुकेश मानस - पतंग और चरखडी - अतिश प्रकाशन, दिल्ली, २००१.

३३. डॉ. मेघसिंह बादल - सैलाब - गुंजन प्रकाशन, मुरादाबाद, उ.प्र. २००३.

३४. मोहनदास नैमिशराय - आग और आंदोलन - श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली द्वितीय सं, २०१३.

३५. मंसाराम विद्रोही - दलित पचासा - दलित साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९०.

३६. रमणिका गुप्ता (सं)- दलित चेतना - नवलेखन प्रकाशन, हज़ारीबाग, १९९६.

३७. लक्ष्मीनारायण सुधाकर - उत्पीडन की यात्रा - कंचन प्रकाशन, १९९६.

३८. विमल थोरात, सूरज बडत्या - भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर - रावल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, २००८.

३९. डॉ. शत्रुघ्न कुमार - अग्निशिखा - नवभारत, दिल्ली, २००५.

४०. शेखर - मायावती के गाँव मे - ज्योतिबा फूले प्रकाशन, २००६.

४१. शेखर - मेरे कुनबे के लोग - वलंगकर विचार, मंच, प्रकाशन, नागपूर, २००७.

४२. शेखर - 'उजालो' के कछार पर - ज्योतिबा प्रकाशन, नागपूर, २००८.

४३. श्यौराज सिंह बेचैन - क्रौंच हूँ मैं - सहयोग प्रकाशन, १९९५.

४४. डॉ. श्यामसिंह शशि - एकलव्य और अन्य कविताएँ - अग्निधारा प्रकाशन, १९९०.

४५. डॉ. एन. सिंह - चेतना के स्वर - साहित्य संस्थान, लोनी, १९९८.

४६. डॉ. एन. सिंह - दर्द के दस्तावेज़ - आनन्द सदन, अलिगढ़, १९९३.

४७. डॉ. एन. सिंह - सतह से उठते हुए - राज पब्लिकेशिंङ हाउस, दिल्ली, १९९१.

४८. एन. आर. सागर - आज़ाद है हम - संगीता प्रकाशन, दिल्ली, १९९६.

४९. सुदेश तनवर - नियति नहीं ये मेरी - सबसा फउण्डेशन

५०. डॉ. सुशीला टाकभौरे - तुमने उस कब पहचाना - स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय सं. २०१३.

५१. डॉ. सुशीला टाकभौरे - यह तुम भी जानो - शरद प्रकाशन, नागपुर।

५२. डॉ. सुशीला टाकभौरे - स्वति बूंद और खारे मोती - शरद प्रकाशन, नागपुर, १९९३.

५३. डॉ. सुशीला टाकभौरे - हमारे हिस्से का सूरज - शरद प्रकाशन, नागपुर, २००४.

५४. सूरजपाल चौहान - क्यों विश्वास करूँ - वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, २००४

५५. सूरजपाल चौहान - कब होगी वह भोर - वाणी, २००७.

५६. सूरजपाल चौहान - प्रयास - जागृति प्रकाशन, उत्तरप्रदेश, १९९४.

५७. सूरजपाल चौहान - वह दिन ज़रूर आएगा - वाणी, २०१५.

५८. डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर - अंधा समाज और बहरे लोग - भारतीय साहित्य अकादमी, दिल्ली, द्वितीय सं, २००२.

५९. डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर - सिन्धुघाटी बोल उठी - रा. प्र. समिति दिल्ली, १९९०.

६०. हरकिशन सन्तोषी - वीणा के नूपुर - नव साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, १९९१.

संदर्भ ग्रन्थ सूची

१. डॉ. ए अच्युतन - लोक नाट्य एवं संस्कृति - शब्द संसार प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. २००४।

२. डॉ. ए. अच्युतन (सं) - मलयालम में दलित साहित्य : दृष्टि और सृष्टि - प्रकाशन विभाग, कालिकट विश्वविद्यालय, केरल, २००७।

३. अजयकुमार - दलित पैंथर आन्दोलन - गौतम बुक सेन्टर, दिल्ली, २००६

४. अमृतराय - मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ - ज्ञानभारती दिल्ली, प्र.सं. १९७७।

५. आचार्य रामचन्द्रशुक्ल - 'चिन्तामणी' - इंडियन प्रेस प्रईवेट लिमिटेड प्रं.सं. १९६९।

६. आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी - कबीर - राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९०

७. आन्द्रे बेतेई - समाजशास्त्र उपागम और विधि - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपूर, प्र.सं, २००५.

८. डॉ. आरसु - भारतीय साहित्यः ऊर्जा और उन्मेष, - जवहार पुस्तकालय, मथुरा, सं. २००९।

९. ओमप्रकाश वाल्मीकि - दलित साहित्य अनुभव संघर्ष एवं यथार्थ - राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. २०१३।

१०. ओमप्रकाश वाल्मीकि - दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र - राधाकृष्ण प्रकाशन, २००१।

११. ओमप्रकाश वाल्मीकि - मुख्यधारा और दलित साहित्य - सामायिक प्रकाशन, प्र.सं. २००९, नई दिल्ली।

१२. डॉ. कन्हैयालाल अवस्थी, डॉ. अमित अवस्थी - काव्यशास्त्र : भारतीय एवं पाश्चात्य - आशीश प्रकाश, कानपूर, प्र.सं. २००९.

१३. कन्हैया लाल चंचरीक - भारत में दलित आन्दोलन खण्ड- १ - सृष्टि बुक, दिल्ली, २००६.

१४. डॉ. कालीचरण 'स्नेही' - दलित विमर्श और हिन्दी दलित काव्य - न्यू सॉयल बुक कम्पनी लखनऊ, २००८।

१५. डॉ. कालीचरण स्नेही - हिन्दी साहित्य में दलित अस्मिता - कानपूर, प्र.सं. २००४.

१६. डॉ. कुन्दनलाल अप्रेती - लोक साहित्य के प्रतिमान - भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़।

१७. डॉ. कुलदीप - लोकगीतों का विकासात्मक अध्ययन - प्रगति प्रकाशन, आगर

१८. कृष्णदत्त पालीवाल - उत्तर आधुनिकतावाद और दलित साहित्य - वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, २००८।

१९. कृष्णदत्त पालीवाल - दलित साहित्य बुनियादी सरोकार - वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण, २००९।

२०. कंवल भारती - दलित कविता का संघर्ष - स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१२।

२१. कंवल भारती - दलित विमर्श की भूमिका - इतिहास बोध प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. २००२।

२२. कांति मोहन - प्रेमचंद और अछूत समस्या - विट्ठलभाई पटेल हाउस, नई दिल्ली, प्र.सं. १९८२.

२३. डॉ. गणेश खरे - आधुनिक प्रगीत काव्य - अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर, १९६५

२४. गणेश मंत्री - गाँधी और अंबेडकर - प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९९.

२५. गुलाब राय - काव्य के रूप - आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, १९६७

२६. चमन लाल (सं)- भारतीय साहित्य में दलित एवं स्त्री - साराशं प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, प्र.सं. २००१।

२७. डॉ. चन्द्रशेखर भट्ट - हडौती लोकगीत - कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर, प्र.सं. १९६६

२८. डॉ. छोटेलाल बहरदार - लोकगीतों का शास्त्रीय अध्ययन - शास्त्री प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.से, २०००।

२९. डॉ. जयप्रकाश कर्दम - इक्कीसवीं सदी में दलित आंदोलन - पंकज पुस्तक मंदिर, २००७.

३०. डी.आर. जाटव - विश्व धर्म और अंबेडकर - सबलाइम पब्लिकेशन्स, जयपुर, प्र.सं. २००१।

३१. पी.सी. जैन - सामाजिक आन्दोलन का समाजशास्त्र - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, द्वितीय संस्करण, २००९.

३२. डॉ. तेज सिंह - आज का दलित साहित्य - अतिश प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण, २०००.

३३. देवेन्द्र चौबे (सं) - साहित्य का नया सौंन्दर्यशास्त्र - किताबघर प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. २००६।

३४. डॉ. दोड्डा शेषु बाबु - दलित कविता का यथार्थवादी परिदृश्य - क्वालिटी बुक्स, पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स कानपुर, प्र. २०१३।

३५. एम. एल. दोषी - आधुनिकता उत्तर आधुनिकता एवं नव समाजशास्त्रीय सिद्धान्त - रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली, २०१२ (Reprinted)

३६. एस.एल. दोषी, और पी.सी. जैन - समाजशास्त्र : नई दिशाएँ - नेशनल पब्लिशिंग, हाऊस, जयपुर प्रथम संग्रह, १९९८.

३७. डॉ. धर्मवीर - दलित चिंतन का विकास अभिशप्त चिन्तन से इतिहास चिन्तन की ओर - वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. २००८.

३८. डॉ. धीरजभाई वणकर - दलित विमर्श - ज्ञान प्रकाशन, कानपूर, प्र.सं. २०१२..

३९. डॉ. नगेन्द्र - भारतीय सौंदर्यशास्त्र की भूमिका - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, द्वि. सं. १९७८।

४०. सं. डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, दूसरा सं. २०११.

४१. नरेन्द्र मोहन - भारतीय संस्कृति - प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण, १९९९.

४२. डॉ. नरेन्द्रकुमार सिंधी - वसुधाकर गोस्वामी समाजशास्त्रा विवेचन (संशोधित संस्करण) - राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, द्वितीय संस्करण, १९७८।

४३. डॉ. नामदेव उत्कर - साहित्य शास्त्र - शैलजा प्रकाशन, कानपुर, प्र. सं. २०१०।

४४. नितीन गायकवाड, (सं) प्रवीण कुमार - दलित जीवन संघर्ष और स्वप्न - अमन प्रकाशन, उ.प्र. प्र. २०१३।

४५. निरंजन कुमार - दलित साहित्य का समाजशास्त्र - अनामिका, नई दिल्ली, २०१०।

४६. नेमिचन्द्र (सं)- मुक्तिबोध रचनावली - राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. १९८०।

४७. डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी (सं) - दलित साहित्य सृजन के संदर्भ - कामना प्रकाशन, दिल्ली, १९९९।

४८. डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी (सं) - दलित साहित्य रचना और विचार - अतिश प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. २००१.

४९. पुन्नी सिंह (सं) (अनु.), कमलाप्रसाद, राजेन्द्र शर्म - भारतीय दलित साहित्य परिप्रेक्ष्य - वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, २००३।

५०. पुष्पेन्द्रकुमार - भरतमुनिप्रणीतं नाट्यशास्त्र Vol.II - न्यूभारतीय बुक कांपेस्शन, दिल्ली, प्र.सं. २००६.

५१. डॉ. पूरनचन्द टण्डन - सौन्दर्य विमर्श - संजय प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. २०१०।

५२. पूरण मल - अस्पृश्यता एवं दलित चेतना - पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, प्र.सं.

५३. डॉ. पूरण मल - दलित संघर्ष और सामाजिक न्याय - आविष्कार पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर, प्र.सं. २००२

५४. प्रणव कुमार वंद्योपाध्याय (सं) - दलित प्रसंग - एस केजी पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

५५. प्रेमचन्द - कुछ विचार - सरस्वती प्रकाशन, इलहाबाद, प्र.सं. १९६१।

५६. डॉ. प्रमोद कोव्वप्रत - समकालीन हिन्दी कविता का ताप-मान - जवहार पुस्तकालय, मथुरा (उ.प्र) संस्करण, २०११

५७. बच्चन सिंह - साहित्य का समाजशास्त्र - लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, १९९८।

५८. बद्री नारायण (सं) - दलित वैचारिकी की दिशाएँ - राधाकृष्णन प्रकाशन, नई दिल्ली, २००८।

५९. डॉ. बलबंत साधु जाधव - प्रेमचन्द साहित्य में दलित चेतना - अलका प्रकाशन, कानपुर, १९९२.

६०. डॉ. बापुराम देसाई - दलित साहित्य विधा शास्त्र और इतिहास - विकास प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. २०१२।

६१. टी.बी. बॉटमोर, (अनु.) गोपाल प्रधान - समाजशास्त्र, (समस्याओं और साहित्य का अध्ययन) - ग्रंथ शिल्पी, प्राईवेट लिमिटेड़ दिल्ली, प्रं.सं. २००४.

६२. डॉ. भीमराव अंबेडकर (अनुवादक, भदन्त आनन्द कौसल्यायन) - अछूत कौन और कैसे - आनन्द साहित्य सदन अलीगढ़, प्रसं, १९४७, द्वितीय, १९९७, तृतीय, २००८।

६३. डॉ. महेश गुप्त - लोक साहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन - शिल्पायन, दिल्ली, संस्करण, १९९९।

६४. डॉ. माताप्रसाद - हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा - वि. वि. प्रकाशन, वारणसी, १९९३.

६५. डॉ. माताप्रसाद - दलित साहित्य दशा और दिशा - भारतीय दलित साहित्य अकादमी, दिल्ली, २००३.

६६. महीप सिंह - साहित्य और दलित चेतना - अभिव्यंजना प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. १९८२।

६७. डॉ. मीरा गौतम - संत रैदास की निर्गुण भक्ति - निर्मल पब्लिकेशन, दिल्ली, १९९८।

६८. टी.मीना कुमारी - शिवप्रसाद सिंह के कथा-साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन - अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, प्रं.सं. २००७।

६९. मैनेजर पाण्डेय - भारतीय समाज में प्रतिरोध की परम्परा - वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रं.सं. २०१३.

७०. मैनेजर पाण्डेय - साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका - हरियाना साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़, प्र.सं. १९८९।

७१. मैनेजर पाण्डेय - आलोचना की सामाजिकता - वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. २००५।

७२. डॉ. रजतरानी मीनू - हिन्दी दलित कविता - नवभारत प्रकाशन, दिल्ली, २००९।

७३. रजनी तिलक, (सं.) सुशील टाकभौरे - समकालीन भारतीय दलित महिला लेखन - स्वराज प्रकाशन, नयी दिल्ली, २०१५।

७४. रमणिका गुप्ता (सं) - हिन्दी साहित्य में दलित संघर्ष के उन्नायक - डॉ. एन. सिंह, आकाश पब्लिशर्शस एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स लोनी, गजियाबाद, सं. २००१।

७५. रमणिका गुप्ता - दलित चेतना साहित्य एवं सामाजिक सरोकार - समीक्षा, पब्लिकेशन्स, दिल्ली, सं. २००४।

७६. रमणिका गुप्ता - दूसरी दुनिया का यथार्थ - नव लेखन प्रकाशन, बिहार, प्र.सं. १९७७।

७७. रमेश कुमार - ओमप्रकाश वाल्मीकि कृत बस्स! बहुत हो चुका संवेदना एवं शिल्प - गौतम बुक सेन्टर, दिल्ली, २००७।

७८. रमेश कुंतल मेघ - विश्वमिथकसरित्सागर - वाणी प्रकाशन, २०१५

७९. रमेशचन्द्र चतुर्वेदी - बीसवीं सदी की हिन्दी दलित कविता - साहित्य संस्थान, गाजियाबाद, २००८।

८०. रवीन्द्रनाथ श्री वास्तव - साहित्य का भाषिक चिंतन - राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. २००४।

८१. डॉ. रश्मि चतुर्वेदी - हिन्दी दलित साहित्य विमर्श के विविध आयाम - सरस्वती प्रकाशन, बौद्ध नगर, कानपुर प्रथम संस्करण, २०१३.

८२. डॉ. रश्मि चतुर्वेदी - हिन्दी साहित्य में दलित चेतना अवधारणा एवं स्वरूप - सरस्वती प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं, २०१४।

८३. डॉ. रश्मि चतुर्वेदी - साक्षात्कार दलित विमर्श के आलोक में - सरस्वती प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. २०१३।

८४. डॉ. रश्मि चतुर्वेदी - हिन्दी दलित साहित्य की विविध विधाएँ - सरस्वती प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. २०१४।

८५. रश्मि चतुर्वेदी - हिन्दी साहित्य में दलित चेतना अवधारणा एवं स्वरूप - सरस्वती प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. २०१४।

८६. रामअवतार यादव - दलित साहित्य का सौंदर्य बोध - अमन प्रकाशन, उ.प्र. २०११।

८७. डॉ. रामनिवास गुप्त - काव्यशास्त्र के मानद्ण्ड वाणी प्रकाशन - नई दिल्ली, प्र.सं, २००१।

८८. राम आहुजा, मुकेश आहूजा - समाजशास्त्र विवेचना एव परिप्रेक्ष्य - रावत पब्लिकेशन, २०१५, (Reprinted) नई दिल्ली।

८९. रामविलास भारती - बीसवीं सदी में दलित समाज - अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्र.) लिमिटेड, प्रथम संस्करण:२०११.

९०. डॉ. रामलाल वर्मा - संक्षिप्त काव्य शास्त्र - सूर्य भारती प्रकाशन, दिल्ली संस्करण, १९९९।

९१. राम गोपाल सिंह - वैश्वीकरण मीडिया और समाज - नेशनल पब्लिशिंग, हाउस, जयपुर, प्र.सं. २०११।

९२. राजराम भादू - धर्मसत्ता और प्रतिरोध की संस्कृति - राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. २००३।

९३. डॉ. रामचन्द्र माली - हिन्दी उपन्यासों में दलित चेतना - विद्या प्रकाशन, कानपुर, संस्करण, २०१२।

९४. रामदारी सिंह दिनकर - संस्कृति के चार अध्याय लोक - भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. १९५६।

९५. डॉ. राजेश कुमार तिवारी - हिन्दी और मराठी के दलित साहित्य का तुलनात्मक अनुशीलन - अमन प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. २०१४।

९६. डॉ. रामकली रर्रफ (सं) - दलित लेखन का अन्तर्विरोध - शिल्पायन, दिल्ली, सं. २००९.

९७. राजमल सिंह राज - अम्बेडकर बनाम सामाजिक परिवर्तन - भारतीय दलित साहित्य अकादमी, दिल्ली, २००३.

९८. राकेश पाण्डेय - आधुनिक भारत और दलित चेतना - वाणी प्रकाशन, २००६.

९९. राज किशोर - जाति कौन तोडेगा? - प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, प्र.सं. १९९८.

१००. राजकिशोर - हरिजन से दलित - वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, २००४.

१०१. डॉ. रामचन्द्र वर्मा शास्त्री (टीकाकार)- मनुस्मृति (भारतीय आचार संहिता का विश्वकोश) - विद्या विहार, नई दिल्ली, २०००।

१०२. डॉ. राजपाल सिंह 'राज' - स्वामी अछूतानन्द हरिहर - राजलक्ष्मी प्रकाशन, दिल्ली.

१०३. डॉ. रेनू दीक्षित - नयी कविता का सौन्दर्य बोध - सरस्वती प्रकाशन, बौद्धनगर, कानपूर, प्र.सं. २०१०।

१०४. एम. आर. विद्रोह - दलित दस्तावेज़ - दलित साहित्य प्रकाशन, वारणासी, १९९३.

१०५. विद्या चौहान - लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि - प्रगति प्रकाशन, आगरा, प्र.सं. १६७२

१०६. डॉ. विश्वंभर दयाल गुप्ता - साहित्य का समाजशास्त्र अवधारण सिद्धान्त एवं पद्धति - सीतापुर प्रकाशन, (उ.प्र) प्र.सं. १९८२।

१०७. डॉ. विश्वंभर दयाल गुप्ता - कविता का समाजशास्त्र - जवाहर पुस्तकालय, दिल्ली, सं. २०१०।

१०८. डॉ. विजयपाल सिंह - भारतीय काव्यशास्त्र - जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९९८।

१०९. विमल थोरात - मराठी दलित कविता और साठोत्तरी हिन्दी कविता में सामाजिक और राजनीतिक चेतना - हिन्दी बुक सेन्टर, नई दिल्ली, १९९६।

११०. डॉ. शरणकुमार लिंबाले - दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र - वाणी प्रकाशन, दिल्ली, २०००।

१११. श्यौराज सिंह बेचैन (सं), डॉ. देवेन्द्र चौबे - चिंतन की परंपरा और दलित साहित्य - नवलेखन प्रकाशन, बिहार, २०००।

११२. श्यौराज सिंह बेचैन (सं) - सामाजिक न्याय और दलित साहित्य - वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. २०१४।

११३. शर्म रामविलास, मार्क्स और पिछडे हुए समाज, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. १९८६.

११४. शर्मा रामशरण - शूद्रों का प्राचीन इतिहास - राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. १९९२.

११५. डॉ. शिवकुमार शर्मा - हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ - अशोक प्रकाशन, दिल्ली, १९७०.

११६. डॉ. शंकर वसंत मुदगल - मुक्तिबोध का काव्य सौष्ठव - चन्द्रलोक प्रकाशन, कानपूर, प्र.सं. २००५।

११७. शंभूनाथ - मिथक और आधुनिक कविता - नैशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, प्र.सं. १९८५।

११८. शंभुनाथ - सामाजिक क्रांति के दस्तावेज़ : भाग २ - वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली सं. २००४ ।

११९. डॉ. श्याम सिंह शशि (सं) - बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाड्मय, खंड ५,६, १,९, १४ - कल्याण मंत्रालयस भारत सरकार की ओर से प्रकाशन विभाग, १९९३

१२०. पु. श्री. सदार - सिंधु घाटी सभ्यता का इतिहास - सम्दक प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. २००७.

१२१. डॉ. सत्येन्द्र - लोक साहित्य विज्ञान - शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा

१२२. सच्चितानन्द सिन्हा - जाति व्यवस्था मिथक वास्तविकता और चुनौतियाँ - राजकमल प्रकाशन, प्र.सं. २००६.

१२३. सत्यप्रकाश मिलल (सं) - भारतीय समाज एवं संस्कृतिः परिवर्तन की चुनोती - विश्वविद्यालय प्रकाशन, वारणासी, प्र. सं. २००३.

१२४. सामुवल कोनेंग - समाजशास्त्र (अनुवाद, डॉ. एस पी. जैन) - हिमालय प्रकाशन, राजा मंडी, आगरा।

१२५. साक्षान्त मस्के - परम्परागत वर्ण व्यवस्था और दलित साहित्य - वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, २००९, द्वितीय, २०१०

१२६. सिंह महोप - साहित्य और दलित चेतना - अभिव्यंजन प्रकाशन, दिल्ली, १९८२.

१२७. सिंह नरेन्द्र - दलितों के रूपांतरण प्रक्रिया - राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. १९९३.

१२८. सं. डॉ. एन. सिंह - रैदास ग्रन्थावली - साहित्य संस्थान, गाजियाबाद, २००३.

१२९. सुधीश पचौरी - उत्तर-आधुनिक साहित्य विमर्श - वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. १९९६।

१३०. डॉ. सुरेश चन्द्र - दलित चिंतन की दिशाएँ - क्वालिटी बुक्स पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स कानपुर, (उ.प्र). प्र.सं. २०१३।

१३१. डॉ. सुतीना साखरे - हिन्दी और मराठी दलित साहित्यः एक मूल्यांकन - अमन प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. २००८.

१३२. डॉ. सुरेश गौतम - भारतीय लोकगीत सांस्कृतिक अस्मिता Vol. 1, 2 - शब्दसेतु, शाहदरा, दिल्ली, संस्करण, २००२।

१३३. सूरज बड़त्या - सत्ता संस्कृति और दलित सौंदर्यशास्त्र - अनामिका पब्लिशर्स, दिल्ली, प्र.सं. २०१०।

१३४. डॉ. सुनील बनसोडे - श्री सचिन कांबले - कवि जयप्रकाश कर्दम एक अध्ययन, विनय प्रकाशन, कानपूर, प्र.सं. २०१४.

१३५. डॉ. संजय मुनेश्वर - हिन्दी का दलित आत्मकथा साहित्य - चन्द्रलोक प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. २०११।

१३६. डॉ. संतोष कुमार चतुर्वेदी - भारतीय संस्कृति - लोकभारती प्रकाशन, इलहाबाद, प्र.सं. २०११।

१३७. डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर - दलित साहित्य की हुंकार - सात समुद्र पार भारतीय दलित साहित्य अकादमी, दिल्ली, प्रं.सं. २००३।

१३८. संपूर्णानन्द - समाजवाद - अनुपम प्रकाशन, पटना, संस्करण.१

१३९. हरपाल सिंह अरुष - दलित साहित्य की भूमिका - जवाहर पुस्तकालय, उ.प्र.

१४०. डॉ. हरिनारायण ठाकुर - दलित साहित्य का समाजशात्र - भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्रं.स. २००९.

१४१. डॉ. हरिनारायण ठाकुर - भारत में पिछडा वर्ग आंदोलन और परिवर्तन का नया समाजशास्त्र - कल्पज़ पब्लिक्केशन, दिल्ली, २००९.

१४२. डॉ. हरिसिंह पाल - लोक काव्य के क्षितिज - अंनग प्रकाशन, दिल्ली, २००५।

१४३. श्रीनिवास एम. एन - आधुनिक भारत में जातिवाद तथा अन्य निबंध - ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, प्र.सं. १९८१.

अंग्रेज़ी

Coroll D. Wright - Outline of practical Sociology - Adament media corporation, Cliboron, classics, 1911.

Cuddon, J.A. Dictionary of Literary Terms, Penguin Books India, 2004

Ghanashyam Shah (ed.) Sage publications, New Delhi, 2001.

Gidding F.H - Principles of Sociology Oxford University - Press New York, 1898.

Jawharlal Nehru - The discovery of India - John Day (US) Meridian Books, 1946

Joseph Francese (ed.) - Perpectives on Gramsci, Political cultural and social theory - F.P. 2009 by Routledge, Zpark Square, Milton park, Abingohn.

Ken Browne - Introduction to Sociology - Cambridge, 2007

Laurence Coupe - Myth - (F.P.) 1997, London

Lucies Gold Man - Towards a sociology of the Novel - Tavistock Publishers ltd. 1975.

Mac Iver RM and Page - Society - Macmillion and Co.Ltd., London, 1950.

Morris Gin Sberg - Sociology - Oxford Univeristy Press, London 1963.

Rajendra K. Sharma - Fundamentals of Sociology - Atlantic publishers and distributors (p) Ltd. 1996.

Raymond Williams - Culture and materialism - (F.Ed.) Published by Verso 2005, London

Sanjay Paswan (Ed.) - Encyclopedia of Dalits in India- Vol. 3 - Paramansi jaideva, Kalpaz publications, New Delhi, 2001.

Thomas Mathew - Ambedkar: Reform or Revolution - Segment Books, New Delhi, 1991.

MALAYALAM BOOKS

१. कवियूर मुरली - पुरनानूर ओरु पठनम्स - डि. सि. बुक्, कोट्टयम, १९९९।

२. डॉ. प्रदीपन पांम्पिरिकुन्न - दलित पठनम् सत्वम् संस्कारम् साहित्यम् - केरल भाषा इन्स्टिटूयूट, तिरुवनन्दपुरम।

३. डॉ. वि. लिसी मात्यु - पोट्टन तैय्यम - बियोण्ड पब्लिशषेर्स, तिरुवनन्दपुरम, २०१३

४. डॉ. विष्णु नंबूतिरी एम. वि - पुल्लुवापाट्टुम् नागाराधनयुम् - एन. बि. एस, कोटयम, १९७७।

शब्दकोश

१. कैलाशचंद्र भाटिया - हिन्दी- अंग्रेज़ी, मुहावरा- लोकोक्ति कोश, प्रभात प्रकाशन, १९९७.

२. डॉ. एस. पी. भरतद्वाज - संस्कृत- अंग्रेज़ी/हिन्दी शब्द कोश।

३. सं. रामचन्द्र वर्मा - प्रामाणिक हिन्दी कोश - चोकभारती, प्रकाशन,स इलाहाबाद, तृतीय, १९९६

४. सं. रामचन्द्र वर्मा - संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर - सातवाँ संस्करण, १९७९

५. विल्यम्स मोनीर- संस्कृत- अंग्रेज़ी शब्दकोश - ऑक्सफोर्ड, प्र.सं. १८९९, इन्टोलोजिकल पब्लिषेर्स।

६. डॉ. हरदेव बहरी - बृहत् शिक्षार्थों हिन्दी - अंग्रेज़ी शब्द कोश, Vo. 1 - राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, २००७।

७. हिन्दी - तमिल- अंग्रेज़ी त्रिभाषा कोशः जिल्द १ प्र.सं. १९८६

हिन्दी - तमिल - अंग्रेज़ी त्रिभाषा कोशः जिल्द १, प्र.सं. १९८९ -

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, शिक्षा विभाग, नई दिल्ली।

पत्र

१. साप्ताहिक अनुसूचित, वर्ष १, अंक ३०, अक्तूबर, २००३

२. नागसेन- वर्ष ३३, २०१०, २०११

३. गरिमा भारती- वर्ष २६, अंक ४, जनवरी, २०१०

४. गरिमा भारती- वर्ष २८, अंक २५-२६, जुलाई, २०११

५. बहुजन प्रभात- वर्ष २, अंक १९, अक्तूबर, २००३

६. Express India Daily

पत्रिकाएँ

१. रमणिका गुप्ता (सं), युद्धरत आम आदमी त्रैमासिक, नवलेखन प्रकाशन, बिहार, वर्ष, १९९६।

२. ईश कुमार गंगानिया, आजीवक विज़न (मासिक) वर्ष- १, अंक, १, जून २००८।

३. महिपाल सिंह, दलित टुडे, वर्ष- ८, अंक, ६-७, अप्रैल- मई, २००९।

४. जयप्रकाश कर्दम (सं), दलित साहित्य वार्षिकी, २००४- २०११

५. मोनदास नैमिशराय (सं), बयान, २००९-२०१०।

६. बिजय राय (सं), उत्तर प्रदेश (दलित साहित्य विशेषांक) सितम्बर- अक्तूबर, २००२, लखनऊ।

७. तारा परमाल (सं), आश्वस्त - २००४-२०१३

मधुमति : अप्रैल - मई २०१०

समकालीन भारतीय साहित्य, जनवरी - फरवरी १९९७, जुलाई- आगस्त २००९

हंस - अप्रैल १९९९ -२००८

वर्तमान साहित्य- नवम्बर, २००९

विवरण पत्रिका- अप्रैल, १९९८

आलोचना- अप्रैल- जून - २०१०।

संग्रथन- अप्रैल, २०१०

नव निकष, वर्ष ४, अंक २, अगस्त २०१०

संकल्प त्रैमासिक, २००१- २०१६।

पंचशील शोध समीक्षा, जनवरी- मार्च, २०११, वर्ष ३, अंक-११।

WEBSITES

1. en.wikipedia.org/wiki/dalit/literature.....
2. www.indiannetzone.com/...../dalit literary.....
3. en.wikipedia.org/...../omprakashvalmiki
4. www.merination.com/discuss/.....
5. vocabulary.com/dictionary
6. www.internationalgramscisociety.org